



उपस्थासकार

# प्रेमचन्द और उनका गोदान :

एक नया प्रस्तुतिकृत



डा० कृष्णदेव शारी



१

भारतेन्दु भवन, श्यामीगढ़-२

प्रकाशक

मुद्रक

प्रथम संस्करण

मूल्य

भारतेशु मदन चण्डीमुख २

साहित्य-प्रेश साहित्य-कुञ्ज भायरा ।

मार्च १९६२

छ रुपये पचास पैसे ।

*Uplascar Prem Chand Aur 'Godan'*

*by Dr Krishan Dev Jhari*

*Price Rupees Six & Fifty Paise*

## प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक मुझे पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता अनुभव हो रहा है। अग्रतिम साहित्यकार प्रेमचन्द और उनकी रचनाओं का मयन-आसोचन पिछले समय हीस वर्षों से मूल हुआ है जो रहा है। इस प्रेम पर अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थ एवं शोध-ग्रन्थ भी लिखे जा चुके हैं। किन्तु जब किसी भी समीक्षक ने धामवीर संवेदनाओं के चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द का एक नहीं समझा है। वर्तमान युग में कुछ तो पाश्चात्य ठाण्डिक दृष्टिकोण के प्रभाव तथा कुछ रस-विज्ञान विरोधी वर्तमान सामान्य प्रवृत्ति की वजह से कथा-साहित्य समीक्षा रसवादी पद्धति पर करना हम प्रायः भूल ही बैठे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में ज्ञानू मेखक ने प्रेमचन्द की औपन्यासिक चेतना के क्रमिक विकास तथा उनकी सर्वत्र रचना 'गोदान' का अध्ययन रसवादी दृष्टि से एक नए ढङ्ग पर किया है। कुछ पुस्तक यद्यपि हिन्दी की रसातलोर उच्च कलाओं के छात्रों के लिए भी ध्वनि में परमोपयोगी महत्वपूर्ण पुस्तक है तथापि इसे तथाकथित 'आलोपयोगी' पुस्तक मानने की भूल नहीं होनी चाहिए। इसमें विज्ञान मेखक का गम्भीर मौलिक चिन्तन रसवादी नवीन अध्ययन प्रकट हुआ है। डॉ॰ शारी के नवीन दृष्टिकोण की सतक के लिए हम पुस्तक के कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं—

'रस-आव साहित्य का प्राण-रूप सत्य है। बहुत-से आधुनिक आलोचक हित-समीक्षा—विशेषकर आधुनिक साहित्य की समीक्षा में रस-सत्य की अवहेलना में लगे हैं।' रस की अवहेलना से काम न चलेगा। रस-सत्य में जीवन की सम्पूर्णता को समाहित करने की शक्ति है। जीवन के विषय पर धृष्ट कदमात्र या से प्रभावित हुए बिना अर्थात् उदात्त सावानुभूति या रसानुभूति के बिना कोई चर्चाहीन या वैयर्थहीन समाज के निर्माण में प्रवृत्त हो ही नहीं सकता। जब कहा जाता है कि 'गोदान' कृषक-जीवन की दृष्टि है तो क्या इससे यह अर्थ है कि उसमें कृषक-जीवन की समस्याएँ प्रस्तुत की गई हैं? इतने निश्चित ही न की कथा अभिप्रेत है जो कदम रस ही है। इसी प्रकार जब हम कहते हैं कि 'दान' में शोषकों के अनेक रूप हैं तो इसका सीधा मतलब यह है कि 'गोदान' में रस बीभत्स रस के अनेक आत्मज्ञान हैं। समाज की कुरादियों कुरीतियों अत्याचार, अत्याचार, अत्याचार सब को चित्रित होते हैं वे शृणा या बीभत्स रस के विषय तो हैं।'

'उपन्यास-नहानी आदि आधुनिक साहित्य विधाओं के सत्य-निकषण में हम प्रायः समीक्षकों के अनुकरण पर भूल सत्य को भुला रहे हैं। प्रेमचन्द के उप

स्माँ की समीक्षा करने वाले समीक्षकों ने भाष-संवेदनाओं की दृष्टि से मुख्यतः लोभ ही दिया है। क्या प्रेमचन्द की महानता केवल इस बात में है कि उन्होंने समाज की विविध समस्याओं का बोध कराया जो कार्य कि एक समाज-शास्त्री भी कर सकता था ? मैं समझता हूँ प्रेमचन्द इसलिए महान् हैं कि उन्होंने जीवन के विभिन्न पक्ष सुझों पर हमारी भाष-संवेदनाएँ जगाई जो युग के महान् सांस्कृतिक निर्माण से सम्बन्ध रखती हैं। अनुसूति-बोध के रागात्मक तत्त्वों के माध्यम से ही प्रेमचन्द के प्रपत्तिहीन तत्त्वों का अध्ययन करना समीचीन है। इसके बिना उनकी समीक्षा अधूरी ही कही जा सकती है। प्रेमचन्द के उपन्यासों की सबसे बड़ी शक्ति उनमें व्यक्त उदात्त भाव और रस ही है।

डा० कृष्णदेव हारी ने अपनी अम्य पुस्तक 'रस-शास्त्र और साहित्य-समीक्षा' में उदात्त रस को काव्य-साहित्य-समीक्षा का सर्वमान्य काव्य मानक कोवित किया है। रस-शास्त्र या रस-विज्ञान तथा रसवादी समीक्षा का उन्होंने शान्तिकारी नव प्रवर्तन किया है। अपनी अनेक मौलिक स्थापनाओं से वे हिन्दी के समस्त रसवादी समीक्षक विद्य होते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में व्यक्त उनकी कुछ मौलिक स्थापनाएँ हैं—

● प्रेमचन्द के उपन्यासों का बीज भाव बुना है। यह बीज उदात्त रस या उदात्त धृवा भाव ही है जो प्रेमचन्द के उपन्यासों की सबसे और सशक्त रचनाएँ सिद्ध करता है। इसी के माध्यम अनेक सामाजिक कुराहियों के मूलोन्मूलन की चेष्टा हमें प्राप्त होती है।

● 'कथ और बीमस्त रस का आधोनाम सह-बंचार एवं प्रसार ही 'मोक्षान' की सबसे बड़ी शक्ति है।"

● "प्रेमचन्द ने धृवा के संचारी-रूप में धर्म का प्रवेश अस्त-त्रयों करके धर्म तथा समाज का लोचलापन कुरेद डाला है।

● " 'मोक्षान' में बग विषमता एवं वन-वेगता तो खूब है धर्म-सर्व विवेक नहीं मिल सका।"

● " 'मोक्षान' में एक ओर हानोन्मुख मानवतावाद का मथा चित्रण है दूसरी ओर उसके स्थान पर विधायनीय वृ जीवाद तथा महाकवी संस्कृति का व्यापक प्रसार बिछाते हुए, उनके भी समाज घोषी एवं मानव मोपी रूप का विस्तृत चित्रण हुआ है।"

● "प्रेमचन्द का आदि मनो ही माधीवाद रहा ज्ञान अन्त न साम्बवाद है न माधीवाद, पूर्ण मानवतावाद है। इत्यादि।

भागा है लेखक का यह सर्वांगीण अध्ययन प्रेमचन्द के अध्येताओं को उा मोपी प्रतीत होगा।

—प्रकाशक

## विषय-सूची

पूर्व-शीठिका—प्रेरण-स्रोत	१
(क) व्यक्तिगत जीवन-परिस्थितियाँ और प्रभाव ।	१
(ख) युग की परिस्थितियाँ और प्रभाव ।	६
(ग) साहित्यिक पृष्ठभूमि ।	१३
उद्गू-उपन्यास	
प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास की यति-विधि ।	१४
प्रेमचन्द का आगमन ।	
हिन्दी-उपन्यास का प्रारम्भ-विकास और प्रेमचन्द की भूमिका	२०
सांस्कृतिक विकास हिन्दी उपन्यासों की सामाजिक मनोभूमि ।	
उपन्यासों का कोटिकर्म और प्रेमचन्द के उपन्यास	३२
प्रेमचन्द की औपन्यासिक श्रेयता का क्रमिक विकास	४०
‘गोदान’-पूर्व के उपन्यास चरदान प्रतिज्ञा संवासदन प्रेमचन्द निर्मला रङ्गभूमि कायाकल्प यवन कर्मभूमि ।	
गोदान में नया मोड़—कला का चरमोत्कर्ष	६८
पिछले शोषों का परिहार	
गोदान की सांस्कृतिक समीक्षा	७३
(१) भाव और रस—रसवादी समीक्षा	७३
हीनस्त रस का प्रसार गुणा के आगम समाज की कुपराय ।	७७
(i) शोषक शोषण के विविध रूप—जमींदारी शोषण	७८
महजनी शोषण वृद्धीवादी तथा पुनित विटित नौकरसाही का शोषण सामिक-सामाजिक शोषण ।	
(ii) हासोमुख सामस्तबाह विकासमान वृद्धीवादी, महजनी सत्कृति	८६
(iii) गोदान में यम का इकोसला :	८२
गुणा के संवारी-रूप में व्यय का प्रबल सत्त्व-अप्रयोग ।	
(iv) गोदान तथा अन्य उपन्यासों में वैवाहिक पद्धति के शोष	८७
अन्य सामाजिक कुपराय के मिला-मिला रूप । अन्य सामाजिक कुपराय	

कष्ट रस कृष्ण-जीवन की कष्ट कहानी	१०१
कष्ट और बीमत्तर रस का सह-संचार-प्रसार ।	
कष्ट और बीमत्तर रस के आश्रय वर्ण-विषमता, वर्ण-वैतना और वर्ण-सङ्घर्ष ।	१०१
भृङ्गार रस प्रेम के विविध रूप	११८
अन्य रस-भाव	
विचार-तत्त्व दृश्य-साम्यता समस्याएँ	१२७
सामाजिक सद्देश्य सामाजिक समस्याएँ ।	
गोदान तथा अन्य उपन्यासों में कृष्ण-समस्याएँ	११२
प्रेमचन्द का व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन	
मिहता का जीवन-दर्शन	१४०
प्रेमचन्द की नारी भावना ✓	१४७
कथा-तत्त्व	१४८
कथा	१४८
कथावस्तु-समीक्षा ✓	१५०
चरित्र-चित्रण	१५१
(i) पात्र-परिचय पुरुष-प्राज्ञ नारी-प्राज्ञ	१५१
(ii) चरित्र-चित्रण की विधेयताएँ	२०१
पात्रों में दुः और गुँ	२०१
वर्णन और व्यक्तित्व चरित्र-सुद्धि	२०४
मनोविज्ञान अन्य विधेयताएँ	
(१) देशकाल-वातावरण	२०१
✓ घास-जीवन का वर्णन	२१०
✓ ग्रामी-जीवन-वातावरण	२१४
(५) संवाद शक्ती	२१७
(७) माया-शक्ती	२२२
(८) धार्मिकवाद : धर्मवाद	२२८
✓ (९) वैज्ञानिकवाद साम्यवाद	२३४
(१०) गोदान : नामकरण	२३८
(११) 'गोदान' का हीरो और 'संन्यासी' का नयनचिह्न	२४१

## पूर्व-घोठिका—प्रेरणा स्रोत

१ व्यक्तिगत जीवन-परिस्थितियाँ और प्रभाव



मुन्शी प्रेमचन्द कराहुती मानवता के साहित्यकार थे। अमाव्य बत्तीझन होपन अग्याय अग्याचार और गरीबी के ज्वलन्त भावों का जितना विमर्श, व्यापक और सफ़्तव चित्तव प्रेमचन्द ने किया है उतना हिन्दी का साधव ही कोई अन्य साहित्यकार कर पाया हो। इस सफलता का एक बड़ा कारण यह है कि स्वयं प्रेमचन्द का जीवन अमाव्यों गरीबी के कटु अनुभवों कठों और सकृपों का जीवन रहा है। जिस साहित्यकार की आत्मा जितना अधिक आत्मकम्बन करनी है बहर जीवन की घटी में जितना अधिक जसती है दुग-आवातों को जितना अधिक सहनी है और जीवन की बल्ली में पिसती हुई जितनी ही अधिक सम-अप्या की निजी अनुभूतियाँ प्राप्त करती है उतनी ही अधिक सज्द में वह साहित्यकार सुखी मानवता का हाहाकार अपनी रचनाओं में प्रस्तुत कर सकता है। प्रेमचन्द के जीवन और साहित्य से हम यह सत्य पूर्ण रूप में प्राप्त होता है। अतः योदान जैसे थोड़ा उपम्याम की रचना करने वाले लखक का मनोविक्राम समझने के लिए हमें उसकी जीवन-परिस्थितियाँ जानना भी आवश्यक है।

प्रेमचन्द का जन्म ३१ जुलाई सन् १८८० का बनारस से चार मील दूर समही गांव में हुआ था। पिता अजयचरण झाखाने में मामूली नौकर थे। प्रेमचन्द का बचपन का नाम अनपतराय था। वे गरीबी में ही पल। उनका पारिवारिक जीवन में अनेक विपन्नताएँ आरम्भ से अन्त तक व्याप्त रही। बातक अनपतराय केवल ८ साल का था कि माता का देहात्य हो गया। पिता ने अवेहावस्था में बूमरी धावी करनी चिन्तु बामक को विमाता से स्नेह न मिना। घर में मयङ्कुर गरीबी थी। फटे-झात रहना पड़ता था। भीम तरपती थी। घर में सीनेपी माँ और पड़ोस की विधवा अहीरन में अश्लील बाले और मज्जाव चपता था। बामक का मुनन में रस आता। प्रेमचन्द ने स्वयं लिखा है— 'मुझे ठेरह साग की अवस्था में ही उन बानों (मीन



सम्बन्धी बातों) का ज्ञान हो गया था जो बच्चों के लिये घातक है। अन्त में परिपक्वता की इस प्रतिकूल परिस्थिति ने भी प्रेमचन्द के साहित्यकार के निर्माण में विशेष योग दिया। प्रेमचन्द के सम्बन्ध में यही कहना पड़ता है कि उनके जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों ने साहित्य-सृजन के अनुकूल वातावरण बनाया।

घनपतराय मिश्रित में पढ़ते थे उन्हीं बचपन से ही उन्हीं के उपन्यास पढ़ने का सम्भावना हो गया था। गोरखपुर में एक कुकसेनर की दुकान पर बैठ कर प्रेमचन्द ने उन्हीं के मग भाषण पढ़ दिये। वह उसकी दुकान में अग्रणी पुस्तकों की कुम्हियाँ आदि स्कूय में बेचते थे और वहाँ में ग्राहक पड़ते थे। दो-तीन बच्चों में प्रेमचन्द ने चौकड़ा भाव पढ़ दिये। उन्हीं के सचर, मौलाना सरर रतनाथ 'सरसार्' मिर्जा रमबा आदि लेखकों की रचनाएँ जहाँ मिल जाती वही पढ़ टालते। एक सम्बाधु बाले के सड़के से दोस्ती कर ली और उसकी दुकान पर प्रेमचन्द ने 'दिससे होसरबा' के सम्बाधु पढ़ दिये। उन दिनों रैनाथ के उपन्यासों की धूम थी। उन्हीं में उनके अनुवाद घड़ावड़ निरन्तर रहे थे। प्रेमचन्द ने अपने बचपन में ही वे सब रचनाएँ पढ़ लीं। ग्राहकों का स्टाफ बम्प हुआ तो पुराना के उन्हीं-अनुवाद पढ़ दिये। इस प्रकार कितना-कितनी और उपन्यास के प्रति प्रेमचन्द की रूचि बचपन से ही हो गई थी। जते बचपन में अनेक लैला आदि पढ़कर अग्रणी उपन्यासकार डिक्से की कल्पना जग उठी थी बने ही इन बच्चा प्रधान जामुनी और दिससे भावलों और किस्सों को पढ़कर बचपन में ही प्रेमचन्द की कल्पना जाग्रत हुई। इससे कथा-साहित्य के सृजन की प्रवृत्ति आयी।

पर यह अनुभव आश्चर्य है कि 'चन्द्रावता' जिससे होसरबा रैनाथ के 'मन्त्रन रहस्य' 'जमाना-ए-अबायब' आदि जिससे और जामुनी बच्चा प्रधान कथा-साहित्य का पुन होने लगे थे इन रचनाओं को बाद में पढ़ने पर भी प्रेमचन्द ने यह मार्ग नहीं अपनाया। इसका एक बड़ा कारण है उनका व्यक्तिगत विषम जीवन अनुभव। इन रचनाओं के पढ़ने में एक पाठ यह हुआ कि प्रेमचन्द कथा रग की आवश्यकता को समझ गए।

१२-१३ मार्ग की अवस्था में ही प्रेमचन्द का एक और जीवन अनुभव हुआ। उन्होंने लिखा है— 'मेरे एक लाले के मामू कमी-कमी हमारे यहाँ आया करते थे। अर्द्ध हो गये थे। मैरिम जमी लक दिन-ब्यादे थे। एक जमारित के मयन-बाचों में बापन हा लगे। 'मर मिममिमा यहाँ लक बड़ा रि वह जमारित ही घर की जामरित हो गई। एक दिन मध्या मयय जमारों ने आपन धं पञ्चावन की। घड़े आरमी हैं तो हुआ बने गया रिमी की इज्जत लगे। इज्जत का बरदा मुन में ही चुना है। मैरिम मरम्भन में भी कुछ उमरी पुरीमी हो सकती है। दूमे दिन माम

को जब चम्पा मामू साहब के घर में आई तो उन्होंने अम्बर का द्वार बन्द कर दिया। 'इधर चमारों का आया तक में था।' बकुई बुलाया गया किन्नाइ छोड़े गये और मामू साहब भूग की कार्टी में छिने हुए मिले। मामू साहब पर बभाव की मार पड़ने लगी। इस दुर्घटना की खबर उड़ते उड़ते हमारे घर भी पहुँची। मैंने भी उसका खूब आनन्द उठाया।

मामू की कथा का यह प्रसंग 'गोदान' के माताश्रीन-सिनिया प्रसङ्ग से पर्याप्त साम्य रखता है। प्रेमचन्द ने १३ साल की ही अवस्था में अपनी पहली रचना इसी प्रसङ्ग को विषय बनाकर लिखी थी। सन् १८९३ के आस-पास की इस पहली रचना से ही प्रेमचन्द के साहित्यकार की दिक्षा निश्चित हो गई थी। यद्यपि यह रचना नाटक रूप में की और आज अप्राप्य है तो भी हमने स्पष्ट अनुमान होता है कि प्रेमचन्द के कथाकार की समाजापेक्षी दृष्टि व्यङ्ग्यपूर्ण जैसी और कथानक एक घटनाओं की सत्सरचात्मक प्रकृति इसमें ही जन्म पा चुकी थी। इससे सिद्ध होता है कि उस घटना-क्रमस्कार के युग में भी प्रेमचन्द जीवन की सच्ची अनुभूति के कथाकार बन।

घनपतराय १५ साल के ही थे कि पिता ने उनकी शादी कर दी। इस शादी के एक साल बाद पिता की मृत्यु हो गई। घर का सारा भार 'आनन' के सर आ पड़ा। प्रेमचन्द ने पिता के दूसरी शादी करने तथा बाल्यावस्था में प्रेमचन्द की शादी कर देने के बारे में लिखा है कि पिताजी ने जीवन के अन्तिम सालों में एक ठोकर खाई और स्वयं तो गिरे ही साथ में मुझे भी कुड़ा दिया। मेरी शादी बिना मोझे ममझे कर डाली।

घर में पूर्ण-कौड़ी न थी। विमाता उसका आ बच्चा और पत्नी के पेट पाने का भार आ पड़ा। प्रेमचन्द के पाम अपनी पढ़ाई का खर्च ही न था। अरमान या बकील बनने का एम० ए० पाम करने का। पर साधन कोई नहीं। जीवन अपूरे अरमानों अपूर्व छावों की ही कहानी बना रहा। फल-तुल गये पाँच प्रेमचन्द पाँच से चार कोम बनारस पड़ने आते थे। भावन के नाम जना चबना ही बाँध लाने। सुबह घर से बसते रात को चकना-चूर घर पहुँचते थे। आखिर एक बकील साहब के यहाँ (५) की दृष्टान मिल गई। आन-जान की परेवानी से ठाँक आकर वहीं बकील साहब की कोठरी में रात का याते लये। ५ रुपये में मैं ३ रुपये घर भेजने पड़ते थे। २ रुपये में महीना घर छक्की और अभाव का जीवन बिताते।

प्रेमचन्द का आरम्भिक पारिवारिक जीवन एकदम असफल रहा। पत्नी किसी बुराई। उम्र में बड़ी। प्रेमचन्द के उपन्यासों तथा कहानियों में बमस विवाह के चित्रण की जो प्रचुरता पाई जाती है उसका यह व्यक्तिगत कारण भी स्पष्ट है। इस बारे में प्रेमचन्द ने लिखा है— 'उमर में वह मुझसे ज्यादा थी। अब मैंने उनकी

मुरत देखी तो मेरा जून सूख गया। 'बहु बचमुरत तो बी ही उसके साथ-साथ जवान की भी मीठी न थी।' मेरे पिता का मासूम हुमा कि मेरी बीवी बहुत बचमुरत है। बहमाई की हरकत उन्होंने बाहर ही देख ली थी। 'मेरी यह पारी चाची (बिमाता) के पिताजी ने ठीक की थी। पिताजी चाची से बोले—जामाजी ने मेरे सड़के को कुर्से में डकेत दिया। अफमोस ! मेरा नुमाब-सा सड़का और उसकी बहु स्त्री ! 'चाची और पत्नी में पटती गहरी थी। रोज का सपड़ा था। चाची मेरी पत्नी पर सासन करती थी। उनकी निकायत थी चाची एकान्त में मुझ से किया करती थी। बीच में मेरी बाफ़्त थी। अगर बीच में चाची न होती तो चायद मेरी उनकी जिवरी एक साथ बीत जाती।

ऐसी विषम परिस्थितियों में भी प्रेमचन्द जीवन का लेस खेलते रहे। किसी तरह मैट्रिक पास की। पर महत्वाकांक्षा बहुत थी। प्रेमचन्द की महत्वाकांक्षा बठिनाइयों में पसती रही। यहाँ तो मागे बढ़ने की पुन थी—पाँव में लोहे की नहीं जहझातु की बड़ियाँ थी और मैं बढ़ना चाहता था पहाड़ पर। प्रेमचन्द की आर्थिक विपत्तियों का अनुमान दनी से लगाया जा सकता है कि उन्हें अपना कोट बेचना पड़ा पुस्तक बचनी पड़ी थी। एक दिन वे एक बुकसेलर की दुकान पर पुस्तक बेचने गये थे वहाँ एक स्मूथ वे हैडमास्टर से जेंट हाथई, जिन्होंने हुपा करके प्रेमचन्द का अपने स्कूल में अध्यापक नियुक्त कर लिया।

सन् १८९३ में मायू के किस्म को लेकर और सन् १८९४ में 'होनहार बिरबान के धिकने-बिकने गात' में का नाटक लिखन से आरम्भ करके सन् १८९८ से प्रेमचन्द ने उर्दू में उपन्यास लिखना आरम्भ कर दिया था। सन् १८९८ में 'इमरारे-मुहब्बत' नाम से एक उपन्यास लिखा। इसी समय 'बट्टी टापी' नामक दूसरा उपन्यास लिखा जिसका विषय इतिहास से सम्बन्ध रखता था।

सन् १९०२ में 'प्रेमा' और सन् १९०४-५ में 'इमरुर्मा व इम सबाब' नामक उपन्यास लिखते जिनमें विधवा-जीवन और विधवा-ममस्या का चित्रण हुआ। इन दिनों प्रेमचन्द का ध्यान विधवा-ममस्या पर विषय था। पारिवारिक बट्टाओं के कारण प्रेमचन्द पत्नी से नहीं निभा पा रहे थे। सन् १९०५ में हठ करके उनकी पत्नी से के जली गई—चायद गया के निध। तब सन् १९०५ में ही विधवा जीवन के प्रति काव्यिक भाव के कारण ही प्रेमचन्द ने जिवरानी देवी नामक एक बाल-विधवा से प्रेमरी लारी करली। यह विधवा-विवाह सामाजिक परम्पराओं के प्रति प्रेमचन्द की विवाही आत्मा की जीवन में श्रियात्मक प्रयत्न अभिव्यक्ति नहीं जा सकती है। बापरी गमय तक प्रेमचन्द अपनी पत्नी पत्नी के पास भी चौड़ा-बहुत लर्चा भेजते रहे।

जिवरानीदेवी के लारी करके प्रेमचन्द के जीवन में कुछ शांति के रास आया।

उनके लेखक में भी और सजगता आ गई। जीवन में कुछ आर्थिक निश्चिन्तता भी आई। प्रेमचन्द स्कूनों के डिप्टी इन्स्पेक्टर बन गए थे। भवा-डारा रले गय नवाब राय नाम से लिखा करते थे। बपों की युग का बुझा उमर अब अमृत-वम बन कर हृदय से निकलने लया। सन् १६ ७ में उनकी पाँच कहानियों का संग्रह 'मोरे-बतन' (बन का दुख-दर) नाम से छाया। अथेक घामकों का समय विद्रोह की बु आई। पुस्तक अल कर ली गई। मलक नवाबराय की खोम-रूँड हुई। आबिर पना सम हो गया। प्रेमचन्द को बुनाया गया। कल्पना कीलिए फिरी मलक के सामने उसकी रचना जसा भी जाय और उय पर बिना आता न लिखन का अन्धन सया दिया जाय तो उम पर क्या मुजरती होगी।

पर सिपना ता प्रेमचन्द की कुराक बन गई थी। उसे कैसे छाइन? मुन्गी इमानारायण नियम को एक पम म प्रमचन्द न लिखा था - भवाबराय ना कुछ दिनों के सिप अहान स गए। बोबारा याव-बहानी हुई है कि गुमने मुबाहिदे (मममोउ) में गो अलबारी मजामीन नहीं लिब मगर इनका मया हर बिस्म का तहरीर स था। योया आहू में किसी उन्वान (बिपय) पर बिन्नु मुसे पहास कस कर साहब बहादुर की बिन्मत में पेज करना हागा। और मुसे छडे-छमाह लिबना नहीं। यह तो मरा रोज का अन्धा ठहरा। इमलिए नवाबराय मरछूम हुए, उनके बानमोन (उत्तरधिकारी) काई और साहब होये। और यह साहब हुए 'प्रेम चन्द'। मुन्गी इमानारायण नियम ने ही प्रमचन्द नाम सुछाया था। और घनपतराय या नवाबराय हमका क सिप प्रेमचन्द बन गए।

यद्यपि प्रमचन्द न हिन्दी में स्पमन बनेकुसर का पटीला सन् १६०४ में पाव करती थी। पर वे जमी नायरी में अच्छी तरह नहीं लिब सकत थे। भी मगन डिनेदी और महाबीरप्रसाद पोहार क सम्पक स उन्होंने हिन्दी अच्छी तरह सीख ली और सन् १६१६ के आमपास उन् के साथ-साथ उन्होंने हिन्दी में लिबना भी शुरू कर दिया। सन् १६१६ के आमपास उनकी कहानियाँ हिन्दी म निकलने लयी थी।

रेक-प्रेम की उत्कट भावना प्रेमचन्द क अन्तःकरण में व्याप्त थी। देश की सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ वे राजनैतिक समस्या के प्रति भी आरम्भ से सजग थे। मगन साहित्यिक जीवन क आरम्भ-कार में ही 'मोरे-बतन' जैसी रचना करना इस बात का सबूत है। सन् १६२० में प्रेमचन्द ने जमी देशपति की भावना से भर कर गांधीजी के अमहयोग आन्दोलन की आवाज पर अपनी बीम सास की गीकरी से स्तीफा दे दिया। प्रमचन्द के जीवन में यह बूसरा क्रियात्मक विद्रोह था। बिबना बिबाह रचना पहला बिद्रोह था जो ममाज की परम्परागत लकीरों के प्रति था। यह गुमन बिद्रोह राजनैतिक था जो ब्रिटिश सरकार क अत्याचारों के प्रति था।

गौहरी छोड़कर प्रेमचन्द ने अनेक स्थानों पर पापड़ बेसे कई घन्टे किये। कामपुर के एक स्कूल में गौहरी की वाली बिम्बविद्यालय में अध्यापक बन कर कहीं न पड़ी। सन् १९२३ में उन्होंने बनारस में ही कुछ साहित्यिकों के साथ घरस्वनी प्रेस की स्थापना की। प्रेमचन्द अपना प्रेस स्थापित करने का सपना पूरा करना चाहते थे। पर प्रेस की उलझनों में कम से साहित्य की हानि ही हुई। प्रेमचन्द को अपने साहित्यकार का पयसि समय प्रेम बनाने के पक्के में लगा पड़ता था। प्रेमचन्दजी ने 'मर्पादा' 'माधुरी' भावि पत्रिकाओं का सम्पादन भी कुछ समय तक किया।

प्रेमचन्द स्थापितानी प्रकृति के व्यक्ति थे। पसे के बीच पर वे कहीं बिक नहीं सकते थे। यही कारण है कि गौहरी करने के मिलमिल में उनकी कहीं नहीं मिली। सन् १९२५ में असम राज्य ने उन्हें अपने यहाँ बुलाया था और ६०० स्वयं मानिक बैठन बंगला और काय अमल देने का प्रमोशन दिया था। पर प्रेमचन्द ने बहु अँछर स्वीकार न की। वे स्वतन्त्र बना व्यक्ति थे। 'मङ्गलसूत्र' में देवकुमार के सम्बन्ध कहे गए उनके थे लक्ष्म आत्मकथन से प्रणीत हुये हैं— 'साहित्यपरमियों में जो थकड़ होती है चाहे उसे दोषी ही क्यों न कहें तो वह जनम की थी। फिरने रहने और राज ठग्युक से कि वह उनके दरबार में जायें अपनी रचनाएँ सुन उनकी भेंट करें। अविन उन्हीन आत्मसम्मान को कभी हाथ न लही जाने दिए किसी ने बुलाया भी न। घमसाव देकर टाल दिया।

सन् १९३४ में बम्बई के अन्नन्ता मूवीज ने आठ-नी हजार रुपये काय आत्मलन मिला। अपना उद्देश्य पूरा करने के द्वारा वे—'दाँव-माँव' में अपने २ ग्यासों और कहानियों के प्रचार का मसूदा बाँध कर प्रेमचन्द चले गये। 'हम' ३ 'आवृत्त' को बनाने के लिए अष्टिद तैम की व्यवस्था कर लवन का लान की व परन्तु फ़िल्मी दुनिया की आत्मविश्वास से प्रेमचन्द जल्दी परिचित हो गए। 'गोदान' उपन्यास की आकार-रुप नाम से फ़िल्म बनी। उनकी मिसमजदूर कह 'मजदूर' नामक फिल्म में रूपांतरित हुई। परन्तु प्रेमचन्द वहाँ मस्तुह न रहे। फ़ि आर्टिस्टों की मनमानी उन्हें पसन्द न आई। अन्त गीत ही फ़िल्मी दुनिया कीड आय।

सन् १९३५ तक गोदान की रचना हो चुकी थी।

सन् १९३६ में प्रेमचन्द बीमार रहने लगे। पर मित्रता में छोड़ा। 'मङ्गलसूत्र' नामक अन्तिम उपन्यास लिखना आरम्भ किया। मृषु न हो-तीन महीने पर 'महाबली' गम्यता नाम में एक सेक भी मिला था जिसमें उन्होंने महाबली और पूरु वारी युग प्रकृति का निरा भी थी। सन् १९३६ में 'महाबली' का प्रकाशन हुआ

'मङ्गल मूल' अधुरा ही छोड़ गए कमस ३०-३१ पृष्ठ पूरे कर गाय ब । यदि 'मङ्गल मूल' पूरा हो जाता तो ज्ञायक इसमें बग-मङ्गुर्प अधिक जुगुनकर प्रष्ट होता । १८ भूत तन् १९३६ का प्रमचन्द ने अपनी ठग अवस्था में ही मोर्फी की मृत्यु पर पड़ा अत्रिमा अपित की । इसी समय उन्होंने प्रगतिपील मेखक सङ्घ' की स्थापना में भी योग दिया । आर्थिक कष्टों तथा इसाज ठीक न कर सकने के कारण ८ अक्तूबर सन् १९३६ को रोग गया पर ही वह दीप बुझ गया जिसने अपनी जीवन की बत्ती को कम-कम जला कर हमारा पथ आलोकित किया ।

व्यक्तिगत जीवन में अनेक विषमताओं और कष्टताओं को सहते हुए प्रमचन्द जीवन को बेम की दाबी मानने लगे थे । वे एक कर्मठ धार्मिकवादी बन गये थे । मुगली इबानारायण नियम को उन्होंने एक पल में निखा था—'हमारा काम तो केवल बेसना है— खुब बिय मगाकर बेसना । खुब भी तोड़ कर बेसना अपने को हार से हम प्रकार बचाना मानो हम दोनों ओकों की मरपति खो बैठे । किन्तु हारने में परबात्—पटखनी खाने के बाद भुल छाटकर खड़े हो जाना चाहिए और फिर हात ठोंककर बिगोवी से कहना चाहिए कि एक बार फिर । उनके 'रङ्गभूमि का सुरदास और 'सोदान' का होरी इन्ही विचारों से पापित है—इसी मिट्टी से बने हैं जो हारकर भी हार नहीं मानते । सुरदास तो स्पष्ट कहना है— 'तुम जीते हम हारे । पर फिर सःवे ।

यही कारण है कि प्रेमचन्द परीची में भी फक्कड़ फटे-हास भी मस्त रहने कास जीव ब । धर्मता सौजस्यता और उदारता भी वे मूर्ति थे । सादा पहनावा का सरम जीवन । स्वभाव के संकोची एक मज्जाजीम थे । स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा था । हँसोह प्रकृति भी । विषमताओं में भी ठहाके मचाना उनकी अप्रुव जीवनी कति का चोत्क था । मित्रों के लिए उनका हृदय उदार था परीचों और पीड़ितों के लिए सहानुभूति का वह अथाह सागर था । किनालों-मजदूरों के प्रति उनकी सहानुभूति इस प्रसंग से सिद्ध होगी है । उनकी पत्नी निबन्धनी देवी ने लिखा है कि बाड़े के गिनों में चामीस-बाधीस रुपये दो बार प्रमचन्द का दिव गए कि अपने लिए कपड़े सिता से । पर दोनों ही बार उन्होंने रुपये प्रेस के मजदूरों को दे दिए । पत्नी ताराब हुई तो बाले— 'शनी जो दिनभर तुम्हारे प्रेस में महमय करें वह मूर्खों मरें और मैं गरम सूट पहनु—यह तो जोमा नहीं बेना ।

प्रेमचन्द ने साहित्य-मृजम के लिए जिस 'कुरेहन ब 'उत्थपन' की बात की है, वह उन्हें पूज्यता भी । उनका जीवनानुभव ही एक त पग था । बर्हे पान-जीवन के उन्हें अनुराग था । अपने जीवन का बहुत समय उन्होंने याँव में ही बिताया था । बाँव के जीवन की पूरी जानकारी उन्हें थी । वे स्वयं बहुत साधारण सबई निवास

में रहते थे। देखने में उनमें कोई विशेषता नजर नहीं आती थी। बाह्य में विशेष आकर्षण नहीं था। पर जो बात भी निकल आया वोड़ा भी अन्तर में झाँका प्रभावित हुए बिना न रहा। प्रेमचन्द उलझोटि के मानव थे। आहम्बर और दिखावे से वे कोसों दूर थे। ऐश्वर्य विभास न उन्हें मिला और न ही उन्हें इसकी चाह थी। कुछ दिनों नीकर रखा पर नीकर को भी कभी नीकर नहीं समझते थे। अपना काम पूरा करना चाहिए—यह उनका जीवन सिद्धान्त था।

प्रेमचन्द साहित्य की सामाजिक उपयोगिता में विश्वास रखते थे। जीवन से विच्छिन्न और जीवन-निर्माण से दूर साहित्य की कल्पना उन्हें बचकर न थी। इसी से तिमस्सी और घटना-प्रधान कथा-साहित्य को बिलचस्प से पढ़कर भी वे उसके मूलन में नहीं गले। वे साहित्य की समान-सापेक्षता और सामाजिक प्रगतिशीलता पर धोर बैठे थे।

साहित्य में वे नग्न यथार्थवाद और कोरे आदर्शवाद दोनों की भ्रष्टियों की अपेक्षा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के हाथी थे। उनका कहना है— 'यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं हमारी विषमताओं और हमारी कुरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशाकारी बना देता है। मानव-चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है। हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है। उलझोटि का साहित्य न उसे मानने दे 'वहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो। उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं। प्रेमचन्द ने जहाँ उपन्यासों को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहा है। उनके अनुसार 'नग्न यथार्थ पुक्ति का रिपोर्टे भर हो जाना है नग्न आदर्श व्यक्त्याम का फलना। वे साहित्य। पौरुषत्व चाहते थे।

वे साहित्य को जीवन-हेतु मोड़ व्य मानते थे। 'उपाधिस्तान्द्र के अर्थों मानो उन्होंने अपने ही विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं— 'आयुष्मन् के मध्य अतीते चरित्रों के वर्णन में अपनी लज्जा गह करता है। उन्होंने स्वयं अपने को जीव ही वृषक कर लिया है। उनको छाँड़ो और यहाँ जाओ वहाँ स्त्री और पुत्र पद हैं। रोड का जीवन रोड मिनन बापों को दिखाओ। वह जीवन यहाँ समुद्र से गहरा और प्रशस्त है। उसमें जो मधम तुच्छ है उसकी जाण्या भी अस्त है। अस्त शब्दक मनुष्य में है जो अपने को सीधा-सादा मनुष्य समझता है। प्रेमी मित्र में उस गरीब में जो निम्न जन्म के उद्गम और का मूर्ख प्रसन्न-बचना बुझाती है—हरेक स्त्री और हरेक पुत्र में जो अज्ञान बलिदानों में अपना जी व्यर्जित करत है। यही जीवन की धारा है जो प्राणों में प्रवाहित होती है। प्रेमनी नजर लगती है।'

जीवन की विपमताओं में भी प्रेमचन्द जीवन के प्रति प्रगाढ़ आस्था रखते थे। पर ईश्वर के बारे में उनका मन कभी पूर्ण आस्थावादी नहीं बन सका। मायव जीवन की विपमताओं में ही उन्हें किसी परोक्ष शक्ति के प्रति बनास्थावादी-सा बना दिया था। विश्व के पीछे कोई 'हाथ' मान्य हुए भी वे अन्त तक आते आते तो अतीश्वरवादी-से बन गये थे। सन् १९३५ में जेनेन्त्रजी को उन्होंने लिखा था— 'तुम आस्तिकता की ओर बढ़े जा रहे हो या नहीं यह पक्के भगत बन रहे हो। मैं सम्भ्रमे से पक्का नास्तिक होता जा रहा हूँ। मृत्यु से कुछ घण्टे पहले भी उन्होंने जेनेन्त्रजी को कहा था— 'जेनेन्त्र भोम ऐसे समय याद करते हैं ईश्वर, मुझे भी याद दिसाई जाती है। पर मुझे अभी तक ईश्वर को कष्ट देने की बकरल नहीं मासूम हुई है। उनका विश्वास हो गया था कि जीवन में किसी परोक्ष सत्ता (ईश्वर) की आवश्यकता नहीं। 'गोदान' में मेहता के विचार भी उनकी ईश्वर-सम्बन्धी ऐसी ही धारणा के परिचायक हैं।

ऊपर के मस्तिष्क अध्ययन से स्पष्ट हुआ होगा कि प्रेमचन्द का व्यक्तिगत जीवन और जीवनानुभूतियाँ उनके सिये प्रेरणा-स्रोत थीं। उनका जीवन अभाव और गरीबी का जीवन था। उनके कथा-साहित्य की सम्मरणात्मक प्रकृति उनके व्यापक जीवनानुभवों का ही कारण है। वे जीवन में जो कुछ देखते गये जो अनुभव करते थे तथा जो विचारने और चिन्तन करते रहे वही उनके उपन्यासों तथा कहानियों में उठ खड़ा गया।

## २. युग की परिस्थितियाँ और प्रभाव

व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त अपने युग की परिस्थितियों से भी साहित्यकार प्रेरित एवं प्रभावित होता है। उसका मान-बोध युगीन परिस्थितियों से ही विकसित होता है। प्रेमचन्द के निर्माण में उनके युग का अत्यधिक योग है।

जंग जी कासन अपनी समस्त कूटनीतियों से सज्ज हो उड़ हो चुका था। भारतीय परतलता की चक्री में पिस रहे थे। भारतीय जीवन पर दोहरा आघात हो रहा था। एक ओर तो अपनी ही मूर्खता चारित्रिक दुर्बलता अधिका तथा गरीबी सड़ी सामाजिक परम्पराओं और बुराइयों में फँसी भारतीय जनता बीन-हीन अवस्था को प्राप्त हो गई थी। दूसरी ओर ब्रिटिश राज्य तथा अन्य शोषक शक्तियाँ मगरमच्छ की तरह निबल रही थीं। हमारे समाज-सुधारकों तथा राजनैतिक नेताओं को भी इसीलिए वो मोर्चों पर सङ्घर्ष करना पड़ रहा था। एक था सामाजिक बुराइयों के निरुद्ध और दूसरा विवेकी शासन के विरुद्ध था। राजा राममोहनराय क्रेकचरर सेन स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द स्वामी रामतीर्थ ऐनी बसेंट आदि ने 'बाह्यो समाज' 'आर्य समाज' 'रामकृष्ण मिशन तथा पिपेमोफिकन्स सोमाइनी आदि



संस्थाओं की स्थापना करके समाज-सुधार के आन्दोलन समूचे भारत में चला दिया। राजनीति के क्षण में भी मुरेखनाथ बनें नहीं बित्तक गोबिन्द और गांधीजी के सश्रमपत्नी से क्रिश्चि राग्य के विद्वद् व्यवस्थित मोर्चा तैयार हो गया था। देश के राजनीतिक सङ्घर्ष की बापडोर गांधीजी के हाथों आये पर सत्याग्रह अमहवेष आन्दोलन नमक आन्दोलन स्वदेशी आन्दोलन आदि कितने ही सङ्घर्ष समय-समय पर चले। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में गांधीयुग का माख पूरा ईमानदारी से दिया है।

देश की २० प्रतिशत जनता गाँव में रहती थी। और हमारा ग्राम-समाज अल्पमत शोचनीय बना को प्राप्त हो गया था। गाँवों में परम्परागत सामाजिक व्यवस्थाएँ—वर्ण-व्यवस्था कठोर सामाजिक नियम धार्मिक अथ विवाह और रुढ़ियाँ पञ्चायती बन्धन आदि थे। व्यक्ति इन सामाजिक संस्थाओं में बँधा हुआ था। व्यक्ति को इनके बड़े नियमों और शासन में घुटना पड़ता था।

औरजों ने देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त खोखली कर दी थी। औद्योगिक सामान की भूमि-व्यवस्था के कारण भूमि पर व्यक्ति का स्वाधिकार हुआ। भूमि को बेचने बरतान करन आदि के नियम लागू हुए जिनसे किसान विवशता के कारण बेचखानी नीलाम विषय आदि की टोकरें खाता हुआ भूमिहीन बनता जा रहा था।

पूँजीवादी औरजों ने भारत में प्राचीन उद्योग-धन्धों का नष्ट कर दिया था। गाँवों में कुटीर उद्योगों का अभाव में अमीन पर अत्यधिक भार बढ़ता जा रहा था। भूमि छोटे छोटे टुकड़ों में बँटने लगी थी। गठित परिवार प्रवाह चिस भिस हो रही थी। जनशिक्षा के कारण किसान की रही-गरी भूमिछन्द-छन्द होकर महत्त्वहीन हो रही थी। ग्राम जीवन का दार्शनिक और सांस्कृतिक स्तर बहुत निम्न हो गया था। कृषि परम्परागत पुराने तरीकों में ही होती थी। किसान बेचारा अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रभावों का भी शिकार रहता था। उपज कुछ होती न थी उपर लगान-बगूनी के नियम कड़े थे। पढ़ते तो पढ़न का कुछ अज ही लगान के रूप में दिया जाता था पर अज औरजों पढ़ति में नमाम नकरी के रूप में अनिवार्य हो गया। पढ़न चाहे हो या न हो लगान अक्षय मिर पड़ता था। नवान की बगूनी निर्दयता में हानी थी और उसमें बर्माणी हानी थी जो अपम। अमीदार के कारिन्द भी मनमानी करते थे।

कृषि की उपजि विस्तृत नहीं हुई थी। न तो सरकार और न अमीदार कोई भी कृषि के नान वैज्ञानिक बङ्ग को प्राप्ताहल नहीं दे रहा था। पुरानी सामान्य बोरी पढ़ति दृष्ट नहीं थी। पूँजीवाद का विषम हो रहा था। क्रिटिज धुमिल-पड़ति

और नीकरसाही का मोहबाला था। जमींदारों की हासत भी बिगड़ती जा रही थी। उनके अधीन किसान का तो बुरा हाल था ही। हमारे गाँव में अतिशय और गरीबी का जेहरा पर्व छपा हुआ था। भूमिहीन किसानों की तो अत्यन्त दखि बबस्था थी। बोड़ी भूमि वाले किसान भी जमींदार, उनके कारिगरे पत्तबारी साहूकार आदि के पबे में फँसे हुए थे। पुस्त-वर-पुस्त ऋण के भार से किसान की कमर टूटती जा रही थी।

गाँवों में महाजन भी पूँजीबाज प्रचलित था। यह महाजन भी गोपब कई प्रकार का था। गाँव का छोटा महाजन किसान को घारी मूब पर बपवा देता। मूब बढ़ता ही जाता था। महर के बड़े महाजन का एजेंट भी गाँवों में दखल रखता था। यही नहीं गाँव में बिस किसी क पास चार पैसे हुए, वहीं महाजन बनन सपा था। मूब का कून मुह लग गया था।

पूँजीबाजी सभ्यता के बिकास से बड़े बड़े मिस बब-कारखाने बैंक आदि कम्पनियाँ स्वापित हो रही थीं। पूँजीबाजी अब भी किसान के लिए अहितकर ही सिद्ध हो रहे थे। बड़े-बड़े उद्योगों और मण्डियों में किसान की उपब सस्ते दामों ही प्राप्त की जाती थी और पूँजीपति अपन उद्योगों तथा ब्यापार में बहुत लफ़्त बना रहे थे। ऋण-भार के कारण बेचारे किसान की फसल प्रायः खसिहानों में ही सड़ जाती थी। सारा घास उसे घेठ-भर खाने को मोहन भी नमीब नहीं हाता था। उसे फिर जमींदार या साहूकार की शरण में ही जाना पड़ता था।

सामाजिक और राजनतिक बेतला का गाँव में बभाव ही था। फिर भी किसान का बटा कुछ समझन-मुनने सगा था। यह युग की नई बाबाब को सुनन सगा था। उसके मन में बिरोध की प्रबलता बढ़ने लगी थी। बिपमता क ज्ञान और उसकी चुपन से वह तिममिलाने सगा था। पुरानी पीढ़ी का किसान ता भाम्बबाजी और बन्वबिम्बाजी हाँ था पर मुबक में मङ्गुर्प की जानासाएँ उभरन लगी थी। होरी और मोबर की य दो सीमाएँ स्पष्ट थीं।

साम्राज्यवाद की छलछया में पूँजीबाज बिकसित हुआ। पुरान सामन्तों का हास हुआ। उनके बिशेष अधिकार समाप्त हो गए। वे भी अब ब्रिटिस राज्य के अधीन थे। अन्दर से वे खोखले होने जा रहे थे पर बाहर से अपनी बही बान रखना चाहते थे। किन्तु दम टूट रहा था। ऐसे ह्दामोग्मुख सामन्तवाद का खोखलापन प्रेम बन्ध ने 'मोबान' में बहुत अच्छी तरह बिखामा है। 'रायसाहब हमका उदाहरण है।

पूँजीबाज के बिकास और उद्योगपतियों के नमरों में एकबित होने तथा ब्रिटिश नीकरसाही ने मध्यमर्ग उत्पन्न किया। इसम साधारण ब्यबसायी दूकानदार, बेतनपापी कर्मचारी अन्य छोटे-छाटे उत्पादक आदि हैं। नगरों में इन बग का जीवन

भौतिक-बौद्धिक स्पर्धी बन गया। बड़े-बड़े मिलों में मजदूर बनने लगे। बेरबाल हुमा या पटना से प्रस्त भूमिहीन किसान गाँव छोड़कर नगर में मजदूरी करने में धापम महमूद करने लगा था। नगरों में मध्यवर्ग के अतिरिक्त मिस-भामिन् या प्रोप्रीपति और मजदूर य दो विषम वर्ग और उत्पन्न हो गए। सर्व-अक्षुर्प अपना खेल खेलने लगा। टूटा हुआ जमींदार या तो सरकारी पिदह बन गया था या भेस बदलकर बह बोल का पोल बना किसानों का खैरकमाह और नैशनलिस्ट बनने का हम्प रखने लगा था।

‘टका धर्म संस्कृति का विकास हुआ। प्रेमचन्द ने इसे ‘महाजनी सम्प्रदाय’ कहा है। ‘धर्म के मोम ने मानव भावों को पूरा रूप से जपने अधीन कर दिया है। कृमिनीता और जराफ्त गुण और कमास की कसीटी पैसा और केवल पैसा है।’—‘इस पसे ने आदमी के विचारविभाग पर इतना कच्चा जमा लिया है कि उसके राज्य पर किसी ओर से आक्रमण करना कठिन दिखाई देता है।’—‘इस सम्प्रदाय का दूसरा चिह्नान्त है ‘विजनेस इज विजनेस — व्यवसाय व्यवसाय है उसमें भावुकता के लिये घुम्नाइत नहीं।’ प्रेमचन्द ने लिखा है कि ‘समाज में आ गए सभी बुरे विचार नाब और कुरम दोलत की केन है पैसे के प्रसार हैं। महाजनी सम्प्रदाय ने इनकी मृष्टि की है। वही इनको पालती है और वही यह भी चाहती है कि जो दलित पीड़ित और विजित है वे इसे ईश्वरीय विधान समझकर अपनी स्थिति पर संतुष्ट रहें। उनकी ओर से उनिक भी विराध बिरोह का भाव दिखाया गया तो तिर कुचगने के लिए पुसित है अशान्त है काना वाली है। आप नाराय पीकर उनके मनो से नहीं बच सकते। आप समारर बाहे कि नरए न उठें अममब है। पैसा अपने साथ बह टारी बुराइयाँ लाता है जिन्होंने दुनिया को नरए बना दिया है। इस पैसे को मिग वीजिये सारी बुराइयाँ अपने-आप विन जायेगी।’<sup>१</sup>

प्रेमचन्द के मन में बांधीबाद केन की राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं को सुमनाग में लगा था। प्रेमचन्द ने बांधीबादी विचारधारा को पूरी तरह अपनाया। देश के राजनैतिक नैतिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के लिए तो प्रेमचन्द बांधीबाद को पूरा लफ्त मिहान्त मानते थे। किंतु इस की आर्थिक समस्या का हल उन्हें बांधी बाद की अपेक्षा साम्यवाद में अधिक आभाजनक दिखाई दिया। इनी के उन्होंने साम्यवाद का पूरे उत्साह से स्वागत किया है।

प्रेमचन्द समझते थे कि इस युग की महाजनी सम्प्रदाय को समाप्त करने वाली विचारधारा साम्यवाद है। ‘इस सम्प्रदाय को समाप्त करने वाली सम्प्रदाय भी उत्पन्न

१. ब्रह्मन् आनिवर—पृष्ठ ८

२. वही—पृष्ठ ८

हो चुकी है। वह है—साम्यवादी मार्क्सवादी सभ्यता जिसका उदय सुदूर पश्चिम में हो चुका है और जो यहाँ भी बढ़ी जा रही है। जिसमें मरम का महत्व होगा। इसमें महानज्जबाद या पूँजीवाद की जगह खोब कर रख दी है। जो दूसरों की मेहनत या बाप-दादा के जोड़े हुए धन पर रईम बना फिरता है वह पतिततम प्राणी है।<sup>१</sup>

रूस की ओर से आ रही हम नई साम्यवादी सभ्यता के बारे में अपनी पत्नी से बात बीत के सिससिम में प्रेमचन्द ने कहा था—

वह बोले—वह लोग (रूस वाले) यहाँ नहीं आएँगे। हमें लोगों में वह शक्ति आयगी। वही हमारे सुख का दिन होगा जब यहाँ कात्सकारों और मजदूरों का राज होगा।<sup>२</sup>

इस प्रकार अपने युग की पाँधीबावो विचारधारा का प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में पुरा साथ दिया और साथ ही अन्त तक आते-आते वह साम्यवादी विचार पद्धति से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। प्रेमचन्द ने अपने युग की परिस्थितियों का सही अध्ययन मनन और चिन्तन करके अपनी एक प्रगतिशील विचारधारा बनाई। वह जीवन की सब दिशाओं—सामाजिक धार्मिक राजनैतिक आर्थिक आदि—की झंझ की समाप्ति के। समाज में प्रचलित बंधन-व्यवस्था छुनाखुना का बदलाचार, बंधन की भीलार, बैस्या का भीमन्ध विनास ब्राम-विवाह बेमेम विवाह आदि हमारी वैवाहिक पद्धति के दोष सहन की कुप्रथा धार्मिक सकुचितता साम्प्रदायिकता धर्म का डकोमना और पाखण्ड अंधविश्वास तथा अन्य बुराइयों और कुप्रथाओं के प्रति असंतोष और बिरोह की भावना प्रेमचन्द की रचनाओं में व्याप-रवान पर पाई जाती है। एक मन्थे युग-मेसा माहित्यकार के नाते प्रेमचन्द ने अपने युग का मानोइन-विमोइन करके ही उर सांस्कृतिक निर्माण के तत्त्व निकाले।

### ३ साहित्यिक पृष्ठभूमि

उर्दू-उपन्यास प्रेमचन्द ने साहित्य-साधना उर्दू से आरम्भ की। उन्होंने अपने किशोर-काल में ही उर्दू में प्राप्य सभी नावय और किस्से-कहानियाँ पढ़ डाली थीं। उम समय उर्दू उपन्यास भी अपने विकास की आरम्भिक भञ्जिन में बेस रहा था। उर्दू में पहल-पहल फरसी से अनुचित 'बास्ताने-मीर हमजा' 'तिलस्मे होश' तथा 'योस्ताने-क्याम' जैसी काल्पनिक बग्गा-प्रधान रोमाण्टिक कथाएँ प्रचलित हुईं। कुछ मौलिकता लिये हुये मकर की 'कमाना-ए बजायब' भी 'तिलस्मे होश' के बङ्ग पर ही निखी गई थी। इसके असिरित्त सर आर्थर कामल डायम रैनासड आदि अंग जी-के उपन्यासकारों की रचनाएँ भी उर्दू में अनुचित हो चुकी थीं। प्रेम चन्द ने इन सब उपन्यासों तथा किम्बों की बड़े चाव से पढ़ा था।

गजीर अहमद ने उन्हीं के उपर्युक्त काव्यमय कथा-साहित्य के स्थान पर जीवनोपदेश-उद्देश्य-प्रधान उपन्यास लिखने आरम्भ किये। उपन्यास को जीवन से सम्बद्ध करने का यह प्रथम प्रयास था। किन्तु गजीरअहमद के उपन्यास हिन्दी के पारदेनुकासीन उपदेश प्रधान उपन्यासों की तरह 'कोरे उपदेशात्मक' बन कर रह गये।

प्रेमचन्द के मामले में गजीरअहमद से भी थोड़ा उपन्यास रचनात्मक सरकार के उपन्यास आये। सरकार के 'कामा-ग-बाबा' की उन्हीं में धूम मच गई। प्रेमचन्द ने 'आबाद-कबा' के नाम से बाद में सरकार की इस रचना का हिन्दी में अनुवाद भी किया। सरकार की रचनाएँ प्रेमचन्द का कष्टहार थीं। सरकार ने अपने उपन्यासों में सामाजिक जीवन का सचा झोरा रोचक ढंग में प्रस्तुत किया। उन्हीं उपन्यास साहित्य में यद्यपि गजीरअहमद ने बटना बमत्कार में विकास कर उपन्यास को जीवन के बीच लाने का प्रयास किया था पर उन्होंने उपदेशात्मकता या नैतिकता का दूसरा बोझ उस पर लाव दिया था। रचनात्मक सरकार ने बटना-विकास और उपदेशात्मकता दोनों के भार में उन्हीं उपन्यास को मुक्त किया। उनकी व्यंग्यपूर्ण रोचक शैली से प्रेमचन्द बहुत प्रभावित हुए। मौलवी अब्दुसहकीम जरूर क ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा भी प्रेमचन्द के सामने आई। मिर्जा रमबा का 'उमराव जान बहा' नामक उपन्यास बहुत प्रसिद्ध हुआ जिसमें सख्तक की एक नर्तकी का काम कबलमक वास्तविक जीवन चित्र है। प्रेमचन्द को सवासदन के निर्माण में इस रचना से भी प्रेरणा मिली हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

अपने स पुरुष के इस मध्य उन्हीं उपन्यासकारों की रचनाएँ प्रेमचन्द ने पढ़ी थी और यह बहुत अच्छा हुआ कि उन्होंने सरकार आदि के कथा-विकास का मार्ग में अपना कर सरकार और रमबा की तरह सामाजिक पक्ष ग्रहण किया। वैचल कथाओं के बमत्कार में उपन्यास रोचक हो सकता है यह बात 'मिममे होमदा' तथा अन्य बटना-प्रधान रचनाओं में प्रेमचन्द जान चुके थे और वैचल अपूर्व वर्णनशैली से उनका रोचक और सोचप्रिय हो सकता है यह सरकार के उपन्यासों में विहित हुआ। जीवन की अनुभूतियाँ उनके मानस में तहरे में रहीं थीं अब उन्होंने सरकार की-सी रोचक शैली में जीवन का चित्रण करना ही था बसकर समस्या।

### प्रेमचन्द-पूछ हिन्दी उपन्यास की गति-विधि

यद्यपि नरहृण की हमारी प्राचीन साहित्य-परम्परा में बसकुमार चरित 'बाइम्बरी' आदि कुछ पद्य-कथा-प्रबन्ध मिलते हैं किन्तु आधुनिक काल में विकसित होने वाली उपन्यास नाम की कथात्मक पद्य-साहित्य विधा सुबन्धु बड़ी और बाप की बच-काव्य-परम्परा में तबसा विद्यमान नहीं थी। आधुनिक उपन्यास में पूर्ण कथा आन्तर्भाविका कहानी आदि नामों में छटी-बड़ी कथात्मक रचनाएँ

ते थीं। हिन्दी में भारतेन्दुकाव्य से ही उपन्यास का जन्म हुआ। इससे पूर्व 'रानी की की कहानी' 'राजा भोज का सपना' आदि रचनाएँ पुराने ढङ्ग की कथाएँ थीं। हिन्दी में उपन्यास के जन्म से पूर्व संस्कृत से अनूदित पौराणिक और धार्मिक साहित्य तथा उर्दू-फारसी के परम्परागत किस्से—किस्सा चारखबेश किस्सा हातिम ई, किस्सा साहे तीन यार आदि—ही प्रचलित थे। वकिूम आदि के मौलिक बंयना न्यासों की देखा-देखी एक ओर १९वीं शताब्दी के अन्तिम दो चरणों में श्रीनिवासदास 'परिष्ठा बुद्ध' सन् १८८०) राजाकृष्णदास ('निस्महाय हिन्दू' सन् १८८६) राजा रण गोस्वामी आदि लेखकों ने मनीष सामाजिक विषयों से सम्बन्धित उपदेश-प्रधान उपन्यासों की रचना की। दूसरी ओर तिमस्मेहोदयका व्यावृत्तान्त नामा पुमिस तास नामा आदि फारसी-उर्दू के किस्सों के प्रभाव में तथा एडगर वेसेस और नास्स जैसे अंग्रेजी नॉवलिस्टों के औपन्यासिक ढङ्ग पर देखकीमन्धन खत्री किन्नोरी नाम मोस्वामी पुषासरास गहमरी आदि उपन्यासकारों ने तिमस्मी-बामुसी और प्रेम म्बन्धी उपन्यासों की परम्परा चलाई। प्रेमचन्द के आगमन से पूर्व सन् १८८० से सन् १९११ तक के ३१ वर्षों में हिन्दी उपन्यासों की निम्न धाराएँ प्रचलित थीं किन्तु उन सब में औपन्यासिक कला अपने शीशव काल में ही रही।

१ उपदेश-प्रधान उपन्यास—श्रीनिवासदास राजाकृष्ण भट्ट राजाकृष्णदास आदि भारतेन्दु काम के लेखकों के उपदेश-प्रधान उपन्यासों में औपन्यासिक तत्त्व विद्यात बहुत हल्का है। न तो कथानक के निर्माण में कोसस दिखाई देता है न चरित-चित्रण का ही प्रयास है। कथा-तत्त्व में उत्सुकता रोचकता और सम्बद्धता का भी प्रायः अभाव रहा। यद्यपि हमारे इन लेखकों की दृष्टि जीवन पर केन्द्रित रही परन्तु जीवन के नाता पहलुओं और विभिन्न यथार्थ समाज चिन्तों को ये प्रकट नहीं कर सके। इनमें केवल समाज की नतिक पारिवारिक आधार विचार-सम्बन्धी शिक्षा देना ही उपन्यासकारों का उद्देश्य था। जीवन की समस्या का केवल सतही तौर पर निर्देखन रहता था। सामाजिक समस्याओं में गहरे पठने की इन लेखकों में दृष्टि नहीं थी। उपदेश और नैतिकता के बोझ से कला बची ही पड़ी रही। सबाब-कला का भी अभाव रहा। सबाब होते ही कम थे और जो होते थे उनमें प्रायः कुत्सिमता का बोध रहता था। बहुधा पात्रों के स्थान पर लेखक ही बोलता दिखाई देता था। नीति धर्म पाप-पुण्य और सबाचार-अमम्यही दृष्टि भी इन लेखकों की परम्परागत ही रही।

२ धर्म-प्रधान तिमस्मेहोदारी के उपन्यास प्रेमचन्द से पूर्व बूब बिल का रहे थे। श्री देवकीमन्धन खत्री इन धारा के अग्रणी लेखक हैं। मीर हमबा के तिमस्मी बामुदानों जैसी फारसी-उर्दू की रचनाओं का हमारे लेखकों पर बड़ा प्रभाव

पदा । छत्तीसी की 'अन्धकाशा' (रचनाकाल १८९ ई०) 'अग्रकाशा' सन्निधि (१८९९ ई०) और 'भूतनाथ' (१९०८ ई०) आदि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हुईं । श्री राममान वर्मा का 'भूतमीमांसा' भी इस परम्परा का प्रसिद्ध उपन्यास है । इन उपन्यासों में तिलस्म के बहुत बाने पाते थे । चट्टान-चबिन्ध ही इनकी विशेषता है । अति प्राकृत और अविश्वसनीय घटनाओं और प्रयोगों की इनमें भरमार है । जीवन की वास्तविकता से इन उपन्यासों का विशेष सम्बन्ध नहीं कहना की उद्धान ही पाई जाती है । न चरित्र चित्रण का प्रयास है न कथोपकथन की स्वाभाविकता । कथानक में संगठन कीतुहल और रोचकता का गुण तो आया पर अवधारण और अस्वाभाविकता का अंश इन्हीं आश के बुझिवाही पाठ्य के योग्य नहीं रहने देना । साहित्य की प्राणधारा जीवन से विच्छिन्न होकर कभी जीवित नहीं रह सकती । अतः इन उपन्यासों का साहित्यिक महत्त्व विषय नहीं है ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य मानना चाहिए । इनमें पर भी यह अवश्य कहना पड़ता है कि अमरी बङ्ग पर उपन्यास का रूप इन रचनाओं में ही सर्वप्रथम दिखाई दिया । उन्मुक्तता पत्रक कथा-निबोधना रोचक लेनी आरम्भ से अन्त तक कथा का कनिष्ठ विकास — इसकी विशेषताएँ हैं । भाषा भी इन लेखकों की अपेक्षाकृत प्राणवान् और अधिक व्यवहार्य है । उद्ग की खुशी और मुहावरा-बादी तथा हास्य-व्यास की प्रकृति भी इनमें पर्याप्त पाई जाती है ।

३. टेक्निक की दृष्टि से उपर्युक्त निम्नस्त्री द्वारा से मिलनी-जुमती आसूरी उपन्यासों की परम्परा भी अङ्गरेजी के सर आर्थर कानन डायस जैसे उपन्यासकारों के प्रभाव से बची । गायान राम महमरी इन द्वारा के प्रमुख लेखक हैं । उनके 'अजुन ताल' 'सगडा डाकू' 'गुन भेर आदि तथा मयुराग्रनाथ खत्री का 'आनन्द महल' आदि उपन्यास प्रसिद्ध हुए । इनमें भी कथानकता की दृष्टि से वे ही बिदे गताएँ या दुःखमन्त्राएँ हैं जो उपर्युक्त निम्नस्त्री उपन्यासों में हैं । हाँ इनमें हमें जीवन की कुछ घटनाओं के भी वर्णन हो जात हैं । फिर भी पश्चिम के हास्य जग उपन्यासकारों की-सी भूषणता विज्ञानोन्मादिनी शक्ति तथा बुद्धि-पानुपे इनमें नहीं आ पाया ।

४. प्रमथम् न पुन प्राचीन गम्हन-जन्म-प्रवादी की नवीन रग में लागते बाने कुछ नयका से कुछ पौराणिक और धार्मिक उपन्यासों का भी रचना की । श्री हरिदासप्रसाद चतुर्वेदी का 'आदिनी-मध्यमाल' (१९१२ ई०) रामचरित उपन्यास का 'देवी डोण्टी' (१९१९ ई०) तथा नरोत्तम व्यास का 'लवकृत' आदि उपन्यास भी परम्परा के अंग हैं । ये उपन्यास उपर्युक्त निम्नस्त्री आसूरी उपन्यासों की अंगेना बहुत कम निग नय । औपन्यासिक शिल्प का इनमें भी अभाव ही रहा ।

१—कुछ उपन्यास विज्ञान के विषयों को लेकर भी मिल गए, जस—श्री गङ्गाप्रसाद धुत का 'हवाई नाव' (१९०३ ई०) विनयगोपात बस्ती का 'चन्द्रमोक की माता' (१९१० ई०) तथा धिवसहाय चतुर्वेदी का 'जेसून बिहारी' (१९१८ ई०) आदि। इन उपन्यासों में विज्ञान की सरसता के साथ उपयुक्त तिलस्मी और जामुंसी उपन्यासों की स्वच्छन्द कल्पना भी रहती थी। उपन्यास-कला इनमें भी विकसित न हो पाई।

२—कुछ उपन्यास केवल हूँसी मजाक द्वारा मनोरंजन के उद्देश्य से लिखे गये। उपयुक्त तिलस्मी-जामुंसी उपन्यासों का उद्देश्य भी मनोरंजन ही था। 'मोहर गबेठ संहिता' (गोपालचन्द्र महमरी) 'सुतान मण्डली' (केचन उर्मा उग्र) तथा 'ठगुजा क्लब' (गुलाबराय) आदि हास्य से आतप्रोत हैं। उपन्यास-कला का इनमें भी अभाव रहा।

३—प्रेमचन्द से पूर्व अन्य भाषाओं से अनुदित उपन्यास भी बूढ़ निकलने लगे थे। आरम्भ में केवल मनोरंजन-प्रधान तिलस्मी जामुंसी आदि घटना प्रधान उपन्यासों—जैसे अंग्रेजी से 'टाम काका की कुटिया' 'सम्बल रहस्य' आदि तथा उर्दू फारसी से 'तिलस्तेहोसकबा' 'छा बृत्तान्त माता' 'गुलिस वृत्तान्त माता' आदि—का अनुबाद हुआ। किन्तु कनै कनै बगला अंग्रेजी और मराठी के श्रेष्ठ उपन्यासों के अनुबाद निकलने लगे। हिन्दी में अष्टिम रविबाबू चरण यवासदास बैनर्जी आदि बंयता लेखकों के उपन्यासों—जैसे अष्ट मोलिक उपन्यासों का अभाव चलने लगा।

४—प्रेमचन्द से पूर्व कुछ भाव प्रधान उपन्यास भी लिखे गए थे। इनमें काव्यरसमयता रहती थी। इनके पात्र भावुक होते थे। कवित्वपूर्ण अलंकृत शब्दों में भाव-व्यञ्जना ही लेखक का उद्देश्य रहता था। कथा-रस्य चरित्र-चित्रण आदिका इनमें अभाव ही रहा। इज्जतसहाय का 'सौन्दर्योपासक' और चण्डीप्रसाद हृदयेक का 'मनोरमा' इस वर्ग के उपन्यासों में उल्लेखनीय हैं।

५—प्रेम-प्रधान उपन्यासों की परम्परा भी चल रही थी। यद्यपि तिलस्मी आदि घटना-प्रधान उपन्यासों में भी प्रेम-चित्रण रहता था पर इन प्रेमप्रधान उपन्यासों में प्रेमाभ्यासों की ही प्रधानता रही। किन्नोरीमान मोस्वामी इस परम्परा के अग्रणी लेखक कहे जा सकते हैं। उनके उपन्यासों में रीतिकाम्य-परम्परा का गुङ्गार—माग हास-परिहास मिश्री और अश्लील रसिकता अधिभार, अद्वयप्रेम आदि तिलस्मी उपन्यासों का तिलस्म और ऐमारी का घटना चमत्कार तथा इतिहास का भीना और बिहृत आधार पाया जाता है। 'तारा' 'कुसुम कुमारी' 'जैदूरी का गीता' 'सबकठ की कद' 'रमिया बेगम' आदि दर्बनों उपन्यासों की



मोस्वामीजी ने सन् १८८१ से १९१८ ई० तक रचना कर डाली थी। किछोरीपात्र मोस्वामी के कुछ उपन्यासों में सामाजिकता का पुर्ण भी पाया जाता है।

फारसी नाटक-मञ्चनियों के प्रभाव से भी कुछ प्रेम-प्रधान उपन्यास नाटकीय शैली में लिखे गये। फारसी नाट्य के प्रेम-चित्तन के ढङ्ग पर नाटकीय शैली में रामलाल वर्मा ने 'गुलबदन उर्फ रजियाबेगम' की रचना की।

१०—जिस सुधारवादी उपदेशात्मक प्रवृत्ति को अपना कर भारतेन्दु मुन के लक्ष्मी ने उपन्यास-रचना की थी उसका विकास त्रिवेदीकाल में प्रेमचन्द के आगमन से पूर्व हो रहा था। प्रेमचन्द इसी मार्ग से साहित्य-क्षेत्र में आये। उन्होंने इस सुधारवादी सामाजिक प्रवृत्ति को और भी सुन्दर कलात्मक प्रौढ़ता प्रदान की। प्रेमचन्द से पूर्व सुधारवादी उपन्यासों को धारा कई रूपों में प्रचलित हो चुकी थी। कुछ उपन्यास केवल पारिवारिक आदर्श और नित्य से सम्बन्धित लिखे गये थे— गोपासराय गहमरी के 'बड़ा माई' 'साम-पठोड़' (सन् १८८१ ई०) 'आदर्श हर्म्यति' (१९०४ ई०) 'हिन्दू गृहस्थ' (सम्बाराय गहमरी) तथा आदर्श गृह' (सम्बाराय सिंह रचनाकाल १९११ ई०) और 'छोटी गृह' (जिराफाकुमार गोप) आदि। इनका आग्रह कर के ही समार से हुआ। उस-बहु गलत धारणा के लपटे और नाम बिबहु के रूप तथा इसी निष्ठा आदि से सम्बन्धित नैतिकता ही इनमें रहती थी।

इस पारिवारिक घेरे के बाहर कुछ स्थापक सामाजिकता को अपना कर भी सुधारवादी उपन्यास लिखे गये जिसमें बिबवा नाम बिबाह गरी उत्थान धुआ छूट पाति भेद तथा घड़े आदि की सामाजिक समस्याओं को सगही तीर पर प्रस्तुत किया गया। सम्बाराय गहमरी का 'मुन्नीन बिबवा' (१९०६ ई०) तथा बिबकरन का 'कमिन्न होराम' (१९१६ ई०) आदि ऐसे ही उपन्यास हैं। इन परस्पर में एक-दो रचनाएँ राजनीति और समाज से सम्बन्धित भी हुई—जैय उषा की 'मन्ना तथा उदयनारायण बाजपेयी का 'स्वर्ण प्रेम' (१९१७ ई०)।

प्रेमचन्द का आगमन—उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हुआ होगा कि प्रेमचन्द के हिन्दी में आगमन ('येबागमन'—१९१८ ई०) से पूरा हिन्दी उपन्यास अपने मौलिक के प्रमाण बन में था। उपन्यास के क्षेत्र में भिन्न भिन्न प्रकार के अग्रगण्य हो रहे थे। यद्यपि पारिवारिक और सामाजिक विषयों पर रचनाएँ लिखी जाने लगी थी किन्तु मनुष्य की हमारे उपन्यासों में उपन्यास-रचना का विभाग हुआ था त सामाजिक समस्याओं को महत्त्व से परक की समझा ही सत्तक म दिखाई गयी थी और म जीवन की व्यापक माना-विषय समस्याओं पर ही उनकी दृष्टि गयी थी। बाध्य म प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यास मुख्यतः का उद्देश्य म विषय जान था—एक-दो मनोरञ्जन के लिए दूसरे गुहार और उपन्यास की यातिर। निम्नलिखित-ग्यारी जानूँ ही इससे और प्रेम प्रधान

उपन्यासों में पहली प्रवृत्ति है तो पौराणिक-धार्मिक पारिवारिक सामाजिक उपदेश प्रधान उपन्यासों में दूसरी। फिर भी 'तिसस्तेहोतृता' को ध्यान से पढ़ने वाले प्रेमचन्द में तिसस्ती अस्वाभाविक कथानकों के स्थान पर, मुद्याम्बाजी रचनाओं के प्रभाव से हिन्दी कथा-साहित्य को जीवन की यथार्थता और आदर्श प्रणायों में बाँटने का निश्चय किया वह साहित्य के लिए बड़े लौभाय की बात थी। 'सवासदन' जैसी प्रौढ रचना प्रस्तुत करके प्रेमचन्दजी ने हिन्दी उपन्यास-कला को प्रौढ़ता प्रदान की।

जीवन का व्यापक चित्रण उनके सामाजिक समस्याओं का यथार्थ अनुभूति पूरा प्रकाशन स्वाभाविक विश्वमनीय मानवीय मतेदमाओं से पूरा कथानक भिन्न भिन्न बर्णों और देशों के अनेक पात्रों का यथार्थ चरित्र-चित्रण पात्रानुरूप एक स्वामयिक सजीव सहाय युग-सम की सजीवना सुन्दर सरल परिष्कृत और प्रभावास्पद भाषा-शैली जीवन की स्वस्थ प्रेरणाओं और आदर्शों का महान उद्देश्य भाषा पुर्णों की अवधारणा हिन्दी उपन्यास में सर्वप्रथम प्रेमचन्दजी की लेखनी-द्वारा ही अनुभूत हुई। मानवता का इतना दुःख-दर्द और दलित-दुखिन शोषित निम्न वर्ग के प्रति झलती सच्ची सहानुभूति लेकर जाने वाला काल्पनिक ही कथानक कलाकार कहा जा सके। भारतीय जीवन के विछन्न पन्नाओं का सामाजिक धार्मिक राजनीतिक सचर्य और विकास मिलनी सत्यता से उनके उपन्यासों में पाया जाता है यैना इतिहास की पुस्तकों में बड़े से भी नहीं मिल सकता। निश्चय ही प्रेमचन्द का आगमन हिन्दी-साहित्य के भिन्न ही नहीं अपितु भारतीय साहित्य के भिन्न बरदान-महत्त्व सिद्ध हुआ। वे हमारे सांस्कृतिक युग थे। जब भारत के निर्माण में उनका योग किसी राजनैतिक या सामाजिक नेता से कम नहीं है। जो कार्य राजनीति के दल में माँगीजी जैसे राजनीतिज्ञ नेता ने किया वही कार्य साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्दजी द्वारा सम्पन्न हुआ। अपने व्यक्तिगत जीवन तथा युग-जीवन से बहुत-कुछ पाकर उन्होंने सब-कुछ अपने पुनः और नारी युग को दे दिया अपने मित्र के लिए कुछ भी नहीं रखा कुछ भी नहीं चाहा।

# हिन्दी उपन्यास का शिल्प विकास

और

प्रेमचन्द की रचना



उत्तर के अध्ययन में प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी-उपन्यास की स्थिति का परिचय हुआ होगा। अब हिन्दी औपन्यासिक शिल्प का क्रमिक अध्ययन करके प्रेमचन्द में सामान्य रचना पर प्रकाश डालते हैं।

कथानक—जैसा कि कहा जा चुका है आरम्भ में तिलस्मी-जामुनी आदि उपन्यासों में अशुभ्र अस्वाभाविक और कृत्रिम बटना-बँधिसय वाला कथानक होता था। उपरान्त प्रचलित उपन्यासों में उपरान्त या मुझार की खातिर कथा को मनमाने ढंग पर घसाया जाता था। हिन्दी आलोचना की दृष्टि के बावजूद ही कुछ आरम्भिक रचनाओं को आज तक उपन्यास माना जाता है। बामहृण्य सट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' में उपन्यास की कोई बात भी पसन्द नहीं होती। इसका छोटा-सा कथानक कहानी की ही संज्ञा पा सकता है। पर न जाने कैसे—नामक बिना पड़े—सभी आलोचक इसे उपन्यास मानते आ रहे हैं।

हिन्दी-उपन्यासों में कथापस्तु की निरर्थकता बहुत समय तक नहीं आ पाई। प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्द्राक्षर युग में भी आज तक अधिकांश उपन्यास कथानक की दृष्टि से सर्वोपरि रहे आ सकते हैं। तिलस्मी के बहुत और जामुनी-रोम्पारी के चकर से छूटे किन्तु बहुत-से उपन्यासों में आकस्मिक घटनाओं—सयोगों (Coincidence) का बाहुल्य होने लगा। इसमें मन्वेइ नहीं कि जीवन में आकस्मिक घटनाएँ भी घटती हैं पर कभी कभी ही। उनकी अधिकता उपन्यास में अस्वाभाविक-ही प्रतीत होने लगती है। प्रेमचन्द के भी 'बरपाग' प्रेमचन्द 'काया-वन्द्य' आदि मोक्षान-पूर्व के उपन्यासों में यह बात कुछ हद तक पाया जाता है। उपन्यास मातृ-जीवन से तो सम्बन्ध हो गए, पर उनमें किमी निश्चित आदर्श या सत्य की पुष्टि का ध्यान रहने लगा। आरम्भिक घटनाओं के प्रयोग द्वारा लेखक कथा को यथि सत्य की ओर बढ़ाने लगा। प्रेमचन्द के उपरान्त कुछ उपन्यासों में भी कथा उद्देश्य के हिसारे पर मोड़ी गयी प्रतीत होती है।

आकस्मिकता के अतिरिक्त दूमरा दोष मध्य या उद्देश्य की प्रधानता से यह रहा कि कई बार कथावस्तु में समुत्पन्न नहीं रहन पाया। अनावश्यक घटना कई बार बिस्तार पा जाने की और आवश्यक घटना और प्रयत्नों का बिस्तार नहीं हो पाता था। प्रामाणिक वृत्त धारण का महत्त्व पा जाने में। यह दोष प्रेमचन्द के भी बड़े उपन्यासों में यहाँ तक कि 'गोदान' में भी पाया जाता है।

तीसरा दोष यह कि अपन उद्देश्य जब या मित्राग्र के मोह में लेकर कई बार स्वयं या किसी पात्र के रूप में सम्बन्ध-सम्बन्ध साधन लम्बे संवाद या ठप्पा देने की व्याख्याएँ अथवा वचन (कथित) देने लगता था। इस तरह भाष-नीच में अपनी बात कहने के लिए कथाकार के स्वयं उपस्थित हो जान में कथामञ्जरी का हानि पहुँचती है। कथा-वस्तु-सम्बन्धी य तीन बात हिन्दी के अल्प अल्प उपन्यासकारों में—यहाँ तक कि प्रमचन्द कृष्णचरणमान्य जहाँ प्रभृति लेखकों के कुछ उपन्यासों में भी प्रायः जाने हैं। बर्माबी के उपन्यासों में कहीं-कहीं वचन की प्रधानता कम—'सौमी की राती', 'भूगनयनी' आदि में बिनाकर पक्षी रचना में सम्बन्ध-सम्बन्ध ऐतिहासिक वचन कथा की गति में बाधक और उबाहुँ पदा करने लगने हैं। साथ ही कहीं-कहीं सैद्धांतिक बाद विवाद—जैसे 'भूगनयनी' में कृष्ण के पानी का मगझा—भी आवश्यकता से अधिक लम्बे हो जाने हैं। प्रमचन्द के प्रायः सभी बड़े उपन्यासों में कथा का समुत्पन्न समुचित नहीं बन पाया है। 'गोदान' में भी मगर की उपकथा राम की मुख्य कथा में समुत्पन्न नहीं हो पाई। सैद्धांतिक बात-विवाद भी कहीं-कहीं पाया जाता है जैसे 'मकामन' में म्युनिसिपल्टी के सैम्बरों में बाद विवाद आदि।

दुसरे आधुनिक उपन्यासों में घटनाओं की अतिवृत्ति चरित्र-चित्रण को बहाल रहती थी। पात्रों की आन्तरिक स्वाभाविक मनोवृत्तियों का उद्घाटन नहीं हो पाता था। प्रेमचन्द के उपन्यासों में ही सर्वप्रथम चरित्र-चित्रण का प्रयास दिखाई दिया। पर उनकी आधुनिक रचनाओं में यह दोष कुछ-कुछ पाया जाता है। बर्माबी के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी बढाएँ पात्रों को आच्छादित कर लेती है। 'मादान और बाद के सबकों की रचनाओं में कथानक और पात्रों का मार्मिकत्व जाने मया। चरित्र चित्रण की प्रवृत्ति बढ़नी गई और मनोवैज्ञानिक या मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में ही कथा या घटना की अवहेलना ही होने लगी। कथा घीन हो गई—चरित्र-चित्रण ही मुख्य उद्देश्य हो गया। यह प्रवृत्ति दूसरी अति तक पहुँच गई।

हिन्दी में कथानक की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष उपन्यास कम ही दिखाई देता है। मुख्य प्रमचन्द विश्वाम्बरदास जहाँ कीमिठ (माँ) मिथारिणी) केवल रामा उप (सरदार तुम्हारी आँखों में आदि) प्रतापनारायण बीबास्तव ('बिबा' आदि) तथा मोहनदास पण्डित अथवा अण्णाभाषणपदीप्रवाद बाबूदेवी मुन्हात आदि के

कुछ उपन्यासों में ही सीधी-गारी निर्बोध कथा के दर्शन होते हैं। वास्तव में दिन प्रकाश पहले उद्देश्य-उपदेश या कथा-बहुसता के कारण बोध उत्पन्न होते थे उसी प्रकार प्रेमचन्दोत्तर काल में भी बौद्धिक जागरूकता के बढ़ने से उपन्यास में बुद्धि प्रधानता रहने लगी। विभिन्न प्रकार की मार्क्सवादी मनाविज्ञानवादी राष्ट्रवादी सांस्कृतिक आदि विचारधाराओं ने हमारे उपन्यासकारों का बेर लिया। और यह सब विचार-तत्त्व कथा रस में घुल कर आने की बजाय कथा-वस्तु की अवहेलना-भी करने लगा। सामाजिक उपन्यासों में विचारों सिद्धान्तों के प्रतिपादन या स्पष्टीकरण के कारण कथा-निरूप की नटि रही और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्र-वैचित्र्य और मनोविज्ञान से कथा दब गई। यह बात हम यलपाम जैनेन्द्र अत्र यमी इसा चन्द्र जोशी रामय रामच नाथानु न फनीश्वर रेणु आदि हिन्दी के प्रसिद्ध जीपन्यासिक निरूपकारों के भी बहुत-से उपन्यासों का दृष्टि में रख कर कह रहे हैं। अत्र य के 'येछर' और 'गरी के दीप' में कथा का गारी बोध है और सब तो यह है कि सभी विन्य की गवीनता के कारण जितनी इनकी चर्चा-प्रचार एवं प्रसिद्धि हुई है उतना कुछ वापस इनमें नहीं है। फनीश्वर प्रसाद रेणु के बहुचर्चित उपन्यास 'मैसा आँखन परत परिकषा' की कहानी और भी बुझ है। इनाचन्द्र जोशी के 'प्रेत और छाया तथा 'त्रिज्मी' आदि जैनेन्द्र जी के 'रयाकपन'-जैसे कुछ मनुष्यन उपन्यासों को छोड़ कर बोध सब उपन्यास नाथानु न के 'बाबा बटेवरनाथ आदि में कथा रस का बोध बहुत अच्छा है। फिर भी हिन्दी उपन्यास के कथा-निरूप का पर्याप्त विकास हुआ है। कई प्रकार के प्रयोग भी हुए हैं।

मुम्मी प्रमचन्द का हिन्दी उपन्यास के कथा-निरूप को विकसित करने में पर्याप्त योग है। यद्यपि उन्होंने कथा का गीषा-गारा बहुत अपनाया है कोई प्रयोग नहीं किया तथापि उनके निर्मला 'गहन आदि में पुरुष और 'मोक्ष' आदि में माधुरी अपवाधों के साथ सीधी-गारी गरम निर्बोध एवं राचक कथा पाई जाती है। पहले जैसी आधुनिक घटनाएँ अमम्भक कल्पना आदर्श के अनुकूल मोड़ी मोड़ी अस्वाभाविक परिस्थितियाँ आदि अत्र समाप्त हो चुकी हैं।

चरित्र चित्रण— पहले कहा जा चुका है कि प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का अभाव था। पात्रों की कोई स्वतन्त्र स्वाभाविक मजीब रैनाएँ उभर नहीं पानी थीं। पात्रों का व्यक्तित्व मरुत के हाथ की कण्ठुनी बना रहता था। अपने 'हु' और 'हु' से युक्त यथाप चरित्र-मृष्टि प्रमचन्द ने ही सबप्रथम प्रकट की। उनका 'अज्ञानधन' गुप्तन पर्याप्त जमाँ आत्मा मदन आदि पात्रों की अमर चरित्र मृष्टि नकर बाया। प्रमचन्दजी ने यथाप जीवन के भिन्न-भिन्न वर्गों से सजीव पात्रों का चयन दिया। उनका मासक-जीवन-अनुभव यहा व्यापक था। वह भिन्न-भिन्न

प्रकार के पात्रों की मनोकृतियों से अक्षी तरह अभिन्न थे। उनकी चरित्र-मृष्टि बहुत व्यापक एवं विनाश है। हिन्दी उपन्यास में चरित्र चित्रण-कला का उन्होंने बहुत विकास किया। इसमें संदेह नहीं। यद्यपि प्रेमचन्द की चरित्र-चित्रण-कला सर्वथा निर्वोप नहीं रही जा सकती क्योंकि उनके 'मोदान'-पूर्व के कुछ उपन्यासों में बट नाओं की बहुलता तथा उद्बन्ध के आग्रह से कई बार कुछ पात्र बर्णन हुए हैं या उनका अस्वाभाविक वृद्धि-विकास हुआ है जो मनोवैज्ञानिक प्रतीत नहीं होता। ऐसे 'प्रेमाश्रम' में यायसी आनन्दपुर आदि 'गहन' में जोहरा तथा निर्मला में डा० सिन्हा की आत्महत्याएं अस्वाभाविक ही हैं। पात्रों की इस प्रकार की अस्वाभाविक परिणति के कारण ही तो इलाचन्द्र जोशी ने प्रमचन्द पर मनोविज्ञान के दृष्टि होने का दोष लगाया था। अपने आदर्शों या नैतिकता की रक्षा के लिए वे पात्रों को समझाना मोड़ दे देते हैं जैसे—'प्रमाश्रम' में ही मायागङ्गा एक बम विस्फोट छोड़ देता है। 'मेवासदन' में धन से आने के बाद सुमन के पिता कृष्णचन्द्र का परिवर्तन तथा 'कर्मभूमि' में मकीना मुप्पी आदि के चरित्रों में अस्वाभाविक परिवर्तन ऐसे ही खबरने वाले हैं। ऐसे परिवर्तनों के मनोवैज्ञानिक कारण प्रेमचन्द अक्षी तरह नहीं दे पाये हैं। तथापि अपने अन्तिम पुष्प उपन्यास 'मोदान' में वे इन दोषों का परिहार करने में सफल हुए हैं। इन रचना में सायब किमी पात्र के चरित्र में यह दोष नहीं है। 'मोदान' के होरी धनिया गोपट, भूमिया मेहता मानवी कुर्बेआदि प्रायः सब पात्र प्रेमचन्द की अमर कला का नमूना हैं। इस दृष्टि से 'मोदान' प्रमचन्द की सर्वश्रेष्ठ रचना मिथ होती है। 'रङ्गभूमि' में पात्रों की इतनी सजीव रेखाएँ नहीं हैं जितनी 'मोदान' में।

प्रेमचन्द सामाजिक कलाकार हैं। इसीसे प्रेमचन्द की चरित्र-मृष्टि अधिकतर वर्णगत ही है। यह इतनी वयमन रही कि कई बार पात्रों का व्यक्तित्व सजीव नहीं हो पाया। प्रेमचन्द-युग के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की उपयुक्त कुछ कमियाँ बनी रहीं। चरित्र चित्रण कई बार समस्याओं के बीच ही बर्णन होते थे।

परन्तु सन् १९३६ के आस-पास में कुछ रचनाएँ ऐसी आने लगी थीं जिनसे चरित्र-चित्रण अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक और स्वतन्त्र वैयक्तिक दिखाई दिया। जड़ व्यक्तित्व के स्थान पर प्रमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों में गहरात्मक सजीव व्यक्तित्व आया। 'मोदान' प्रेमचन्द-युग और उत्तर युग के बीच की कड़ी है। पहले उपन्यासों में प्रतिनिधि पात्र ही स्थान पाते थे उनके चरित्र का बही बप सामने आता था जिनसे उनके बर्ण की विशिष्टता स्पष्ट हो सके। पर अब मानव अपनी विचित्रताओं में प्रकट होने लगा। परम्परागत आचार या नैतिक मर्यादों का र्धो धुआं भय अब समाप्त हुआ। प्रमचन्द और उनसे पहले के उप

म्यासो में 'सुनीता' (१९३९ ई०) की तरह पर-पुष्प के सामने नारी के गङ्गा हो जाने की कल्पना भी कोई सुलभ नहीं कर सकता था।

इस प्रकार सन् १९३१-३६ से हमारी उपन्यास-कला में एक और पन्ना पड़ा। हमारे उपन्यासकारों के दृष्टिकोण में मनोवैज्ञानिकता स्वाभाविकता यथार्थता उदारता और व्यापकता आती गई। पहले उपन्यासों के नायक 'भय' उम्र बर्ष व बुद्धि का मनोवृत्ति के व्यक्ति ही होते थे अबका मार्क्स के पुतले या लेखक के आदर्श से परिचित होते थे। पर 'चित्तमया' ( भगवतीचरण वर्मा रचनाकाल १९१४-३५ ) 'मोक्ष' 'सुनीता' में दृष्टिभेद स्पष्ट है। इस कह सकते हैं कि 'मोक्ष' मुन्शी प्रेमचन्द की ऐसी रचना है जो चरित्र-मूढ़ि की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास में एक नया मोड़ प्रस्तुत करती है।

कुछ उपन्यासों में यथार्थवाद के मोड़ से अतिशय दुरुचरित्र हीन व्यक्तिबारी पाला का भी चित्रण हुआ। परन्तु अब वह प्रकृति वयस चुकी है। दूरे-से-दूरे पात्र का चित्रण भी आज स्वस्थ यथार्थवादी प्रकृति से किया जाता है। दूरे पात्रों के प्रति उनकी परिस्थिति का ध्यान करके साहानुभूति की भावना भी सबको ने दिखाई। पात्रों के चरित्र-चित्रण में मनोविज्ञान की प्रधानता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। हिन्दी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की कला का पूरा विकास सन् १९४०-४१ से पूरा दिखाई देता है। व्यक्तिवादी चरित्र-मूढ़ि का भी इसी समय समुचित विकास हुआ। इना बहू बीबी के संन्यासी' 'पर्व की रानी' (१९४१) मन्न मन्नी का 'छेहर एम बीबी' (१९४१-४४) जगन्मन्नी के 'सुनीता' 'प्यास' वन आदि उपन्यास में चरित्र चित्रण-कला का नया विकास मणित हुआ। पात्रों के मन की विचित्रताभा व्यक्तियों को मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से प्रकट करने में हमारे ये उपन्यासकार परम सफल हुए हैं। इनमें सारा कथानक चरित्रों द्वारा ही परिचित होता है। अधिकांश उपन्यासों में 'मोक्ष' की तरह कथा और चरित्र-चित्रण का सामञ्जस्य रहता है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यासकला चरित्र चित्रण की दृष्टि से अपनी आरम्भिक अवस्था को पारकर प्रीढ़ बन गई है। प्रेमचन्द का इसे प्रीढ़ता के मोक्ष पर न जाने में विशेष हाथ है।

संसार आरम्भिक उपन्यासों में सकारकता भी अकलाही थी। सदाय अस्वाभाविक और हृदय-न हानि थे। मादमिक रचनाओं में कुछ परिस्थिति के अनुकूल सुन्दर रोचक सकारक अवश्य मिलते हैं पर उनमें भी बाह्य शैल अधिक है। प्रेमचन्द ने ही सुन्दर स्वाभाविक पात्र-परिस्थिति के अनुकूल यथोपक्रम को जन्म दिया। 'हाफ' 'प्यास' तथा 'मोक्ष' की उनके गवाहों का पुष्ट है। सामान्यतः प्रेमचन्द के सकारक पात्र और चरित्र होते हैं पर जहाँ-जहाँ के वैज्ञानिक बाद-दिवार पाट बने

समते हैं वहाँ सबाह सन्धे-सन्धे भाषण से हो जाते हैं। यह शेष कुछ हद तक उनके 'योदान' में भी पाया जाता है। विचार-धाराओं के प्रकाशन का मोह हमारे आगे के उपन्यासकारों में भी इतना रहने लगा कि वे कथा की गति और रोचकता का ध्यान ही भूल बैठे। विश्वम्भरनाथ वर्मा वृन्दावनभास वर्मा तथा विष्णुप्रभाकर-जैसे कुछ उपन्यासकारों ने अपने कथोपकथनों को सजिस्त रखने का प्रयास भी दिखाया है। वृन्दावनभास वर्मा ने अपने उपन्यासों में संवाद जैसी का श्रुत प्रयोग किया है और उनमें बड़े से ही भाषण कोई सम्पन्न संवाद मिले। उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता के समावेश से अब व्यवसायिकता और कृत्रिमता का शेष तो प्रायः समाप्त हुआ पर कुछ उपन्यासों में सन्धे विचार-भाषणीय से मुक्त संवाद रचना की वास्तविकता बना देते हैं। फिर भी सामान्य रूप से हमारे उपन्यासों में पात्रों की व्यवस्था परिस्थिति मुक्ति-संस्कार आदि के अनुरूप सुन्दर नाटकीयता से ओज-प्रोत स्वाभाविक सजीव सार्वभौम एक संभव संवाद जैसी का पर्याप्त विकास हुआ है। प्रमचन्द का इस विकास में महत्वपूर्ण योगदान है।

**वैयक्तिक वातावरण**—प्रमचन्द-पूर्व के उपन्यासों में इस तत्त्व की भी कमी ही रही। कियोरीनाम गोस्वामी आदि ने जो स्कॉट के डङ्ग पर ऐतिहासिक उपन्यास लिखने का प्रयत्न किया उनमें ऐतिहासिक वातावरण की समीक्षता का ध्यान तो बुरा, बहुधा वातावरण की हत्या ही करी जाती थी। विनस्मी-रेम्बारी के उपन्यासों में सब वातावरण कृत्रिम होता था। जीवन की वास्तविकता से उसका विशेष सम्बन्ध नहीं होता था। पारिवारिक तथा कुछ सामाजिक उपन्यासों में ही पारिवारिक और सीमित सामाजिक वातावरण उत्तर पर उनमें भी इसकी समीक्षता और विस्तार या व्यापकता का अभाव ही रहा। सर्वप्रथम प्रमचन्दजी ने ही अपने 'संवाद' आदि सामाजिक उपन्यासों-द्वारा समाज के व्यापक जिल्ले के रूप में सामाजिक धार्मिक राजनैतिक सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार की परिस्थितियों को समीक्षित रूप दिया। प्रमचन्द का चित्तपट जितना व्यापक विस्तृत और समीक्षित है वह उन्हें विश्व के बड़े बड़े—मास्माक टालस्टाय-जैसे उपन्यासकारों के समक्ष खड़ा करता है। सरद-विशाल के तम मुम्बई-जैसे यह भारतीय उपन्यासकारों का चित्तपट (Canvas) है इतना व्यापक नहीं जितना प्रमचन्द का। धर्म-जीवन के चित्त में तो प्रमचन्द द्वितीय है। युग-धर्म की इतनी समीक्षता प्रमचन्द के उपन्यासों को ऐतिहासिक उपन्यासों का दर्जा प्रदान करती है। निश्चय ही प्रमचन्द के उपन्यासों में भारतीय जीवन की कम-से कम पचास वर्षों की सभी जाँकी प्राप्त होती है जो इतिहास की पृष्ठों में भाषण बड़े से भी नहीं मिलेगी।

वृन्दावनभास वर्मा ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों—'मकुन्दधर' 'कचनार'



मृगयामी' आदि में ऐतिहासिक वातावरण की सजीव सृष्टि की है। बुन्देलखण्ड और उनकी अतीत संस्कृति को उन्होंने अपने उपन्यासों में साकार कर दिखाया। हिन्दी में अनेक वातावरण प्रधान उपन्यास लिखे गए हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में—बैरागुरुदेव शास्त्री के बत्तासी की नगर बहू, 'गोमी' आदि मथुरा की 'हिम्मा' तथा राठौरजी के सिंह भनापति सोने की झाल 'जय घोड़ेय' आदि आनन्दप्रकाश बन का 'कठमुत्तमी' आदि उपन्यासों में वातावरण की पर्याप्त सजीवता है।

प्रेमचन्दोत्तर काल के कुछ सामाजिक उपन्यासों में अच्छे चित्रण की हुए हैं—जैसे उदयचन्द्र मट्ट के 'मापर सहरे और मनुष्य' में मछुओं का जीवन। हिन्दी में पिछले दस-बारह वर्षों में आन्ध्रभक्ति उपन्यासों का प्रयोग भी हुआ। ये उपन्यास भी वातावरण प्रधान ही हैं। पूर्णिया-बिना (बिहार) के जीवन पर फणीश्वर प्रसाद ऐन न मला आँख और 'पगली पंक्ति' नामक दो उपन्यास निकाले। मनों के जीवन पर योगेश चरण का 'कब तक पुकार' मछुओं के जीवन पर उदयचन्द्र मट्ट का उपरुक्त उपन्यास तथा बिना दरभंगा (बिहार) के जीवन पर नागार्जुन के 'जलजलमा' और 'बाबा अटेगरनाथ' भी आन्ध्रभक्ति उपन्यास कहे जाते हैं। इनमें भाषा का प्रयोग भी स्थानीय होता है। इस प्रकार हिन्दी-उपन्यासों में भाषा के क्रिया कलाप ऐतिहासिक बेमसूया संस्कार, प्रचारों स्थान प्राकृतिक दृश्य तथा भाषा मीमी आदि के द्वारा युगधर्म और वातावरण की सजीवता आई। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में बाह्य वातावरण बहुत कम होता है। इनमें कैलाश बेज-नाथ की लकड़ियों द्वारा गीतित वातावरण में भाषा की गीता चलती है जो अचिन्तित अन्तर्लक्ष्यों से सम्बन्धित होती है। इन उपन्यासों में भी—चाहे संक्षिप्त लकड़ियाँ हों—बेमकाल वातावरण की सजीवता अवश्य रहती है। हिन्दी उपन्यासों में तथा युगधर्म और सजीव वातावरण उत्पन्न करने में प्रेमचन्द अच्छी हैं। उन्होंने ही सबसे बेजकाल भाषा वरस की एक हिन्दी-लकड़ियों को दिखाई। उनके उपन्यास अच्छे वातावरण-प्रधान उपन्यास हैं। इस दृष्टि में उनका महत्त्व सर्वाधिक है।

उद्देश्य—पठने कहा जा चुका है कि आरम्भ में या तो कबल मनोरञ्जन ही उपन्यासों का उद्देश्य होता था या गुणवत्ता की प्रवृत्ति के प्रभाव से 'उपदेश' या नैतिकता के उद्देश्य सामने रखकर उपन्यास लिखे गये थे। ये उद्देश्य अपने-उमरे रहने थे कि कला की स्वाभाविकता इनसे कट जाती थी। प्रेमचन्दजी भी गमाज-मुण्डार का उद्देश्य लेकर जब हिन्दी उन्होंने सामाजिक समस्याओं पर इस दृष्टि से प्रकाश डाला कि कला की विशेषता न हो। साम्य में प्रेमचन्द की महानता इस बात में नहीं है कि उन्होंने कला की अनुरूप समस्याओं को दर्शाया नहीं इस बात में है कि रचनाओं में आरंभ या नैतिकता का सुन्दर पाया जाता है। मैं समझता हूँ कि

प्रेमचन्द इसलिए महान हैं कि उन्होंने हमारी सामाजिक राजनीतिक धार्मिक सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार की समस्याओं को सवेदनात्मक रूप देकर प्रस्तुत किया उन्होंने जीवन को कागज रम के रूप में प्रस्तुत किया। रम के नाम से भीकने नाम आधुनिक आलोचकों को हम आगे दिखाएंगे कि प्रेमचन्द की महानता का ध्येय भी उदात्त बनाने में ही है। उनके उपन्यासों में जीवन रम रसायन में जुन कर प्रस्तुत हुआ है। प्रेमचन्द का भाव और रम-सौक्य किन्ता व्यापक है कितना उदात्त और गम्भीर है ! उनकी रचनाएँ हमें रम-भाव तत्त्व के गुण के कारण प्रसिद्ध हैं न कि जीवन के विवेचन के कारण जो काय एक नीतिशास्त्री या समाजशास्त्री भी प्रकार कर सकता था। जहाँ-जहाँ स्वयं प्रेमचन्द ने छोटे सुधारवादी या जीवनवाद का बीजा पहनाया है वहाँ उन्हें ही मुड़ की खानी पड़ी है।

'पोद्दान'-पूब के उपन्यासों में आचार्य शुक्लजी के जन्मों में कई 'वे उप देवक और समाज-सुधारक का चेहरा बाड़ कर आन प्रतीत होते हैं। उन पर गांधी बाड़ी पुन के सुधारवाद समझोते और हृदय-परिवर्तन का एक गुमाही पदा-मा पड़ा हुआ था। इसी कारण उनके 'पोद्दान' से पूब के उपन्यास किसी-न किसी 'सदन' मन्त्रा आभय या सुधार के काव्यनिक आदर्शवाद में परिणति पात हैं। 'सेवा-सदन' 'प्रेमाग्रम' 'मदन' 'प्रतिज्ञा' आदि सभी उपन्यासों में वे यथाथ से आरम्भ करके किसी-न किसी आभय-सत्त्वापन समझोता 'न हृदय-परिवर्तन' आदर्श ग्राम-जीवन आदि के आदर्शवाद में अन्त दिखाते हैं। इससे एक बना उमाया निर्विचल हल या अन्त उनके इन उपन्यासों को पूर्ण निष्पत्तीय नहीं रहने देता। कनापत सति भी कथानक और पात्रों के मनमाने परिवर्तन से उत्पन्न हो गई हैं। फिर भी प्रेमचन्द की ये सुलभ कल्पनाएँ निष्किय आदर्शवाद ( utopia ) नहीं कहो जा सकनी। य बाहे समस्याओं के दूरे हल न हों पर एक साहित्यकार को सम्भावनाओं और मदिर्यधर्मों के परे की वस्तु नहीं हैं। अन बहुत भारी अवज्ञाति इस नहीं कह सकते।

कना-सम्बन्धी 'न कुछ सों में के बाबजूद भी प्रेमचन्द के उपन्यास भारतीय प्रगति के अप्रसूत हैं। उन्होंने हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन सा दिया। उन्होंने ही सचप्रथम समाज की मित्र-मित्र समस्याओं और समाज के कुरूप को स्पष्ट रूप में दिखाकर हमारी सामाजिक उत्पत्ति का मार्ग प्रगस्त किया। वे बहुत बड़े भारतीय प्रगतिशील सखक हुए हैं। जिस समय हिन्दी सेखर इधर उधर मटक रहे थे प्रेमचन्द क प्रयत्न में उपन्यास साहित्य यथार्थ मानव जीवन के उभयन का काय कर रहा था।

प्रेमचन्द के 'पोद्दान' में स्वस्थ यवाववाद के दर्शन हुए। पर कुछ मयकों यथार्थवाद के नाम पर समाज के अति प्राकृत बीमय विधों को नष्ट करना आरम्भ

कर दिया। पाँचवें बेचन अर्थात् छठे अध्यायपर भी आदि ने समाज का ज्यों-का-यों फोटो प्रस्तुत करना आरम्भ कर दिया था। 'विधवा' का बर्णन 'व्यभिचार' के अन्धे आदि रचनाएँ ऐसी ही थीं। उद्भव इनका भी सामाजिक है किन्तु इस प्रकार के नग्न यौन-विकार के चित्रों से पाठकों का मानसिक स्वस्थता होना है स्वस्थ प्रतिक्रिया सब जाती है। सामाजिक उद्भव का एक अन्य रूप शमसन्दोत्तर काल में साम्प्रदायी विचारधारा से प्रभावित उपन्यासों में दिखाई दिया। इनमें भी समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करके सर्वहारा वर्ग की उपेक्षा-कामना तथा पूँजीवादियों का नैतिक पतन दिखाने परम्परागत पूँजीवादी-साम्प्रदायी धोखे-प्रतिक्रिया की मृदुबुद्धि के का प्रकट पाया जाता है। मासुवादी मित्रात्मो का प्रचार भी इनमें दिखाई देता है जिसके कारण कला को हानि पहुँचनी है।

हिन्दी उपन्यासों की सामाजिक मनोभूमि—हमारे उपन्यासों में सामाजिक चेतना और सामाजिक समस्याओं और जीवन-मूल्यों का अध्ययन में उत्तरोत्तर बढ़ा परिवर्तन हुआ है। शमसन्द में पूर्व के पारिवारिक और सामाजिक उपन्यासकारों से समाज की विकृतियों आस्था और बुरी परम्पराओं का बुद्धिमत् विरोध करने का साहस कम ही था। पाप-पुण्य नीति-अनीति धर्म अधर्म के प्रति परम्परागत बड़ी बंधाई धारणा थी। समस्याओं को गहर में पकड़न तथा समाज की जगह में बुरी कुरीतियों को नुस्तने की दृष्टि ही उसमें न आ पाई थी। शमसन्द ने ही सर्वप्रथम इन शक्तियों में व्याप्त गुण दिखाये। परिचय दिया। शमसन्द ने समाज की भिर भिर समस्याओं को अथवा मानवीय गणतन्त्र के साथ बर्खास्त। किन्तु उन्हीं की व्यक्ति को समाज-मात्र ही स्वीकार किया व्यक्ति का समाज के साथ बुद्धिमत्ता मर्त्य और विकास के अर्थों तरह नहीं लिया गये। शमसन्दोत्तर काल के उपन्यासों में ही व्यक्ति को समाज के पक्ष में मुक्त करने की भावना का विकास हुआ। शमसन्द प्रभाव (कहानियों में) आदि न विभिन्न-विभिन्न सामाजिक धार्मिक समस्याओं का पोटपान्त दिखाकर प्रचलित सामाजिक धारणाओं और उनके प्रति जम हुआ विश्वासों पर अक्षरदात आघात ला दिया था वह यह आघात आघात ही रहा। गये नव मूल्यों और नई नैतिकता की स्थापना का मार्ग नहीं चुना।

सर्वप्रथम मगनी बाबू का चित्रण। यह सामाजिक परम्परा का नया रूप मिला। उन्होंने पाप-पुण्य के सम्बन्ध में नई धारणा प्रस्तुत की। व्यक्ति को समाज के बंध आघातों से स्वतन्त्र हान की प्रस्तावना। जीवन के नव नैतिक मूल्यों की स्थापना समाज की परिस्थितियों की बढाव व्यक्ति की है। परिस्थितियों के आधार पर करने का प्रयास हुआ। इसी परम्परागत सर्वथा बाह्य नैतिकता के स्थान पर व्यक्ति के महत्त्व के कारण सामाजिक मूल्यों में मनोवैज्ञानिक नैतिकता का प्रवेश हुआ। हिन्दी

उपन्यासों में यह विह्वल प्रेमचन्द के पश्चात् स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। प्रेमचन्द युग में बप्पा-ममका का भी बेवका के प्रति देखने का मन में महानुभूति थी थी किन्तु सबको की स्थापना में ही उसका रूप हृदिगोनर हुआ था। उस ममात्र में मुनाने मिमामे—मादी-ब्याह कर कर ममात्र म रत्न देने की दृष्टि नहीं थी। मम हृदिगोनर बरमा। परम्परागत नैतिक बन्धन बीमा हुआ। जब बप्पा के साथ मुनाने जैसी पवित्र बन्ध के साथ नहीं जपितु बार नारकीय जीवन पितान वाली से—मादी कराने वाले को समाहन किया जान गया। प्रेमचन्द-युग में यदि मादी की बात होनी थी तो केवल मुनाने जैसा में उन्हें पवित्र रखना ही।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना उत्तरोत्तर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की परिचायक हुई। व्यक्ति के अधिकारों की सम्झाई-बुझाई की परत परम्परागत नैतिकता के शक्ति पर व्यक्ति की ही परिस्थिति के आधार पर नवीन धर्मों के प्रकाश में को जान गयी। इससे हिन्दी उपन्यास की भावधारण अन्तर्मुख होती गई। जैविक इकाय-इकाय जो भी और अज्ञान ज्ञान ने व्यक्ति का ही अन्तर्मुख आरम्भ कर दिया। व्यक्ति और मानवता का सम्बन्ध व्यक्ति के ही अन्तर्मुख में दबी हुई मतिनता के परिणाम और मन्त्रण में समझा जाने लगा।

इसके विपरीत मानवता की दृष्टि रखने वाले उपन्यासकारों ने व्यक्ति के स्वतन्त्रता को महत्त्व दिया। किन्तु परम्परागत बंधन का खण्डन करके उनसे व्यक्ति का मुक्त करके नए सामाजिक विधान में व्यक्ति का नव-ममान का अन्तर्भवनाया गया। नए रूप में हिन्दी उपन्यास की मनोभूमि का क्रमिक विकास संकुचित पारिवारिक सामाजिक क्षेत्र से अप्रसन्नत अधिक विस्तृत और व्यापक सामाजिक और उससे भी आगे विश्वगानवनावादी प्रगति के मोक्ष पर पहुँचने का परिचायक है। व्यक्तिवादी उपन्यासों की व्यक्तिगतता में भी मानवतावादी दृष्टिकोण दिखाई देता है। हमारे उपन्यासकार अधिकाधिक उदार मस्तिष्क के पोषक होते गए हैं।

आरम्भिक उपन्यासों में धार्मिक अन्तर्मुख मीमिन प्रकाशन होता था। प्रेमचन्द के 'मकाम' में ही सर्वप्रथम मानवीय सम्बन्धों का व्यापक और उदात्त रूप दृष्टिगोनर हुआ। प्रेमचन्द के उपन्यासों का बीज मम भूषा ही कहा जा सकता है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में बीज से उस अपन विस्तृत उदात्त रूप में प्रकाश हुआ है। जीवन की मुछाई में तथा हुए अन्धकारी व्यक्तिवादी और अज्ञानी पात्रों के प्रति हमारी तीव्र दृष्टि जगाकर प्रेमचन्द ने समाज-सुधार की अर्जुन प्रेरणा दी है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रेम भूषा बरपा हास्य वारमत्य साहस-उत्पादनादि भावी प्रकार के उदात्त धार्मिक रूप की चरम स्थिति को पहुँच है। उनकी सफाया का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि वे इन मानवीय संवेदनाओं का मध्यम विन

कर पाये हैं। जीवन की समस्याओं को उन्होंने भाव-संवेदनाओं में बुझोकर ही प्रस्तुत किया है। इसी से उनके उपन्यासों में रस-परिपाक पूरा सफलता से हुआ है जो उपन्यासों की सगमता का रहस्य है। हिन्दी उपन्यासों में शृङ्गार रस के अतिरिक्त भीमस रस का भी बहुत व्यापक और सुन्दर प्रकाशन हुआ है। सामाजिक कुराहों को हमारे मजबूतों ने जोर कर रखा दिया है। भीमस रस के अनेक आलम्बन प्रस्तुत हुए हैं। मानसवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिवादी उपन्यासों में पृथ्वीपति सामन्त और अन्य धुनुआ मनोवृत्ति के साथ तथा उनके व्यवहार और अमानुषीय कार्य हमारी कुशा के आलम्बन बन हैं। अन्य सामाजिक रचनाओं में भी भीमस रस का प्रसार अनेक सामाजिक एवं शैवणिक कुराहों के प्रकाशन में प्रकट हुआ है। जिन उपन्यासों में भाव-संवेदनाओं का समुचित प्रकाशन नहीं हो पाया है वे सफल उपन्यास नहीं माने जाते। हिन्दी के सभी प्रमुख उपन्यासों—जैसे प्रेमचन्द के उपन्यास कृष्णचलनाम बर्मा के 'कचनार' 'गड कुंवार' 'बिराटा की पधिनी' 'मूम गधनी' आदि जैन्स के 'त्यागपत' आदि इलाचन्द्र जोशी के 'न्यासी' 'मुबह के भूमे' 'जहाज का पछी' आदि—में भावों और रसों का व्यापक पहलू एवं उचित प्रकाशन ही उनकी सबसे बड़ी शक्ति है।

हिन्दी उपन्यासों में ज्ञान-मीमांसा की दृष्टि से भी विकास की अनेक मंजिलें दिखाई देती हैं। आरम्भिक उपन्यासों में भाषा-जैमी का भी सुष्ठु रूप नहीं मिलता। बच्चा-साहित्य की कोई एक आदर्श भाषा-जैमी निश्चिन नहीं हो पाई थी। कुछ उपन्यासों में जैसे—जनेन्द्रियार के 'कर्ममिमी' आदि तथा देवीप्रसाद बर्मा के 'सुन्दर मरोजिनी' (सन् १८९३) आदि में संस्कृत-गर्भित अस्वामाजिक भाषा का प्रयोग हुआ है। बटना-प्रधान नियन्त्री बामूनी उपन्यासों में मीमी-मारी भाषा का प्रयोग हुआ पर उनकी उर्ध्व की जमी और दण्डावली हिन्दी में ठीक तरह पुनर्निमित्त कर प्रकट नहीं हुई। प्रेमचन्द ने ही उर्ध्व की विशेषताओं का हिन्दी की प्रकृति में डालकर हिन्दी भाषा को स्वाभाविकता लचीकता उत्तरता प्रवाहात्मकता मुहावरे-बरी और चुल्मी प्रदान की। उन्होंने भाषा की अविष्यन्धता शक्ति को सूत्र बनाया। प्रेमचन्द में बच्चा-साहित्य का निम्न एक आदर्श भाषा-जैमी का निर्माण किया। चित्त ही देखना में आज तक बामूनी व्यक्तित्व मिलाता के साथ प्रेमचन्द की ही जैमी को अपनाया हुआ है। प्रयाश्री ने भी अपने उपन्यासों में माव्यों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक प्राथमिक भाषा का प्रयोग किया। राजा राधिकाशरणप्रसाद मिश्र तथा उषरी आदि ने कुछ आलम्बनिक विनामक व्यक्तित्व प्रधान भाषा का सुन्दर प्रयोग किया है। रंगेश्वरप्रसाद बिराणा मुन्हात आदि के उपन्यासों में सुन्दर ज्ञान-भाषा का प्यारा रूप मिलता है। जनेन्द्र की भाषा में ज्ञान-मीमांसा का-मा नया

भाषा है। इलाक़ा ज़ोरी और ज़रफ़ की भाषा प्रौढ़ गार्हियन सरसम-बहुला भाषा होती है। बचनारमक विस्मयकारमक भाषारमक व्याख्यात्मक हास्य-व्याख्यात्मक भाषा अनेक लैलियों का सुन्दर विकास हमारे उपन्यासों में हुआ है।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों के सक्षित वित्तीय विकास के अध्ययन से स्पष्ट हुआ होगा कि प्रत्येक तरह की दृष्टि से इस विभाग-कर्म में प्रसंगिकता का अत्युत्तम योग है। वे हमारे उपन्यास को कला की प्रौढ़ता के सोपान पर ले जाने का सर्वप्रथम उपन्यासकार हैं। बड़े हिन्दी के ही नहीं समस्त भारतीय साहित्य के यत्न प्रगतिशील साहित्यकार हैं। उन्होंने हमारे कला-साहित्य को नया जीवनवादी मोड़ प्रदान किया। कला-साहित्य को ही नहीं उनको प्रगतिशील दृष्टि का प्रभाव साहित्य की सभी विधाओं पर पड़ा। साहित्य में अकार्यवादी दृष्टि का समावेश हुआ। समूचे हिन्दी साहित्य ने ही कदम बढ़ाए। उन जीवन पर विनम्र अक्षिप्त प्रभाव साधुनिक काल में प्रसंगिकता की रचनाओं का पड़ा है। उतना साबित ही किसी एक अन्य भारतीय साहित्यकार का पड़ा हो। निश्चय ही रविशंकर शर्मा मुन्नी आदि अष्टम भारतीय कलाकारों की तुलना में भी इस दृष्टि से प्रसंगिकता पायी बैठते हैं।



(क) कानून प्रदान उपस्थापित दिन स्वनाम्ना न कमानक और पन्नामा का आयाजन इन प्रकार होता है कि पात्रक पन्नामा के संबंधित और आवश्यकता तथा तत्काल उपस्थापना न वीजुक्त न ही मोन रहता है उम्मे रहानक या पन्ना प्रदान उपस्थान करण । हिन्दी न आरम्भिक युग में लगे उपस्थान करने में निगे गये । हिन्दी न निमरमी जामुनी पर साक्षरिक उपस्थान अथ बी के जामुनी एवं साहसिक उपस्थाना न कर ता नही पहुँच सक । कमी गेष्टर बन्नापकम्पी का उपस्थान लख निमर ( Crime And Punishment ) भी जामुनी उपस्थान है हिन्दी उनमें पानरता का आय-रम दिन गुरी में घोना गया है बह दृष्टि हिन्दी-लेखकों में नही

है। राहुम साहस्रयामन का 'भौतान की खाँच' ( सन् १९४४ ई० ) इस दृष्टि से अच्छा उपन्यास है। ऐसे साहित्यिक समीक्षक उपन्यास हिन्दी में दूँके से ही दो-चार मिल जायें तो बहुत हैं। इसमें विमर्श का-सा आनन्द है और साथ ही बौद्धिक सतर्कता उद्भूत की उच्छता चित्तन की यथार्थता तथा विश्वासोत्पादन जैसी उसे उच्छकोटि का साहित्यिक उपन्यास सिद्ध करती है।

प्रेमचन्दजी के बरवान 'प्रतिज्ञा' 'कायाकल्प' आदि गोदान-पूर्व के कुछ आरम्भिक उपन्यासों में भी कुछ-कुछ कथानक की प्रधानता पाई जाती है। फिर भी उनमें चरित्र-चित्रण का प्रभाव रहता ही है। वृन्दावनमास वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में बटनाओं का वैचित्र्य ज़ूब पाया जाता है किन्तु साथ ही उनमें भी चरित्र चित्रण का आकर्षण रहता है। जैसे ऐतिहासिक होने के कारण वे ऐतिहासिक दृष्टिकोण वातावरण-प्रधान उपन्यास हैं। किन्तु साथ ही उनमें घटनाओं की विवेकता भी रहती है और कुछ चरित्र भी मजबूत हो जाते हैं। अतः उनके उपन्यासों को चरित्र-सापेक्ष कथानक-वातावरण प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है। उनके 'गडकुम्हार' में घटनाओं और वातावरण दोनों की प्रधानता है। 'मृगयनी' में चरित्र चित्रण जग्य उपन्यासों की अपेक्षा अधिक उभरा हुआ है। अतः उसे यद्यपि बटना चरित्र-सापेक्ष वातावरण-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है तो भी कथा-चरित्र की सापेक्षता उसमें उम प्रकार की सामञ्जस्यपूर्ण नहीं है जैसी 'गोदान' में है। प्रेमचन्द के 'गोदान' में बटना चरित्र-वातावरण आदि सब तत्वों का सुन्दर सामञ्जस्य प्रस्तुत हुआ है।

(क) चरित्र-प्रधान उपन्यास—जिन उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की विवेकता प्रमुख रहती है और कथानक का उद्देश्य आदि से अन्त तक चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक बाध प्रतिबाध को प्रकट करके चरित्र की विचित्रताओं का प्रकाशन ही रहता है उन्हें चरित्र-प्रधान उपन्यास कहा जाता है। बटना-प्रधान उपन्यासों में घटनाएँ महत्त्व पाती हैं और वे ही पात्रों को भिन्न भिन्न परिस्थितियों में डालकर उनके चरित्रों की कुछ देखाएँ प्रकट करती हैं। पात्रों की चरित्रिक विनिश्चिता से घटनाओं की उत्पत्ति नहीं होती। इसके विपरीत चरित्र-प्रधान उपन्यासों में चरित्र-चित्रण महत्त्व पाता है और पात्र ही परिस्थितियों और कथानक का निर्माण करते हैं। कथा सङ्कोच अन्तर्द्वन्द्व मनोविज्ञान की प्रधानता पात्रों की पीढ़ का अन्तर्गत व्यक्ति-वैचित्र्य आदि चरित्र-प्रधान उपन्यासों की सामान्य विशेषताएँ होती हैं। इलाचन्द्र जोशी जेनेस और अज्ञेय के उपन्यास चरित्र प्रधान उपन्यास ही हैं।

(ग) ऐतिहासिक दृष्टि से तीसरे प्रकार के उपन्यास होते हैं घटना-चरित्र-सापेक्ष —



# उपन्यासों का कोटिक्रम

और

प्रेमचन्द के उपन्यास



साहित्य की इस विधा ( उपन्यास ) का इतना गाना बिना विक्रम हो चुका है और हो रहा है कि हमारा समुचित वर्गीकरण एक कठिन समस्या ही है। भिन्न भिन्न दृष्टि से उपन्यासों के भिन्न-भिन्न रूप हैं। अतः अध्ययन की सुविधा के लिए हम चार प्रस्तर में उपन्यासों के रङ्ग-रूप उनही भिन्न-भिन्न बर्णियों और प्रवृत्तियों का अध्ययन कर सकते हैं—१ रचना-तत्त्वों की दृष्टि से २ बर्ण्य विषय की दृष्टि से ३ बर्णन-शैली की दृष्टि से और ४ यथार्थ और आदर्श के आधार पर।

१ रचना-तत्त्वों की दृष्टि से— यद्यपि उपन्यास में कथानक चरित्र-चित्रण मनाद भाव रस उद्देश्य हेतुकाय-वातावरण आदि सब तत्त्व सामान्यतः रहने ही हैं किन्तु ता भी कई उपन्यासों में कथानक या घटना अथवा चरित्र-चित्रण या इन कान-बातावरण अथवा उद्देश्य या भाव-रस आदि किसी एक तत्त्व की प्रधानता दिखाई देती है। यान तत्त्व विशेष की प्रधानता के आधार पर उपन्यासों की कोटियाँ इस प्रकार होती हैं—(क) कथानक या घटना प्रधान उपन्यास (ख) चरित्र-प्रधान उपन्यास (ग) घटना चरित्र समन्वित उपन्यास (घ) दलकालवतावरण-प्रधान उपन्यास (ङ) उद्देश्य-प्रधान और (च) भाव-प्रधान उपन्यास।

(क) कथानक प्रधान उपन्यास—जिन रचनाओं में कथानक और घटनाओं का आश्रयन इस प्रकार होता है कि पाठक घटनाओं के वैचित्र्य और आकस्मिकता तथा उत्प्रेरक उत्प्रेरणा व कौतुहल में ही मग्न रहता है उसमें कथानक या घटना प्रधान उपन्यास कहते हैं। हिन्दी में आरम्भिक युग में ऐसे उपन्यास अनेकों मिले गये। हिन्दी के निसर्ग-जागृती एवं साहित्यिक उपन्यास अथवा जी के जागृती एवं साहित्यिक उपन्यासों के रूप में नहीं पहुँच सके। कपी लेखक बस्तायबन्दी का 'आइम एंड पनिशमेंट' ( Crime And Punishment ) भी जागृती उपन्यास है किन्तु उसमें मानवता का भाव-रस जिस मूर्खी से बोला गया है वह दृष्टि हिन्दी-लेखकों में नहीं

है। राहुस सांस्कृतिकता का 'मौलाना की आँख' ( सन् १९४४ ई० ) इस दृष्टि से अच्छा उपन्यास है। ऐसे साहित्यिक सजीव उपन्यास हिन्दी में बूढ़े से ही बो-बार मिल जायें तो बहुत हैं। इसमें विषय का-सा आनन्द है और साथ ही नीतिगत सतकता उद्भूत की उन्नता विमल की यथार्थता तथा विस्वासीपान्थक हँसी उसे उन्नतोंति का साहसिक उपन्यास सिद्ध करती है।

प्रेमचन्दजी के 'वरदान' 'प्रतिज्ञा' 'कायाकल्प' आदि योदान-पूर्व में कुछ आधुनिक उपन्यासों में भी कुछ-कुछ कथानक की प्रधानता पाई जाती है। फिर भी उनमें चरित्र चित्रण का प्रवास रहता ही है। मुन्दावनमान वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में घटनाओं का वैचित्र्य बल पाया जाता है किन्तु साथ ही उनमें भी चरित्र चित्रण का आकर्षण रहता है। जैसे ऐतिहासिक होने के कारण वे ऐतिहासिक दशकाल वातावरण प्रधान उपन्यास हैं। किन्तु साथ ही उनमें घटनाओं की विशेषता भी रहती है और कुछ चरित्र भी सजीव हो जाते हैं। अतः उनके उपन्यासों को चरित्र-आपेक्ष कथानक-वातावरण-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है। उनके 'यदुकुण्डार' में घटनाओं और वातावरण दोनों की प्रधानता है। 'मृगतयनी' में चरित्र चित्रण अन्य उपन्यासों की अपेक्षा अधिक उमरा हुआ है। अतः उसे यद्यपि घटना-चरित्र-आपेक्ष वातावरण-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है तो भी कथा-चरित्र की मान्यता उसमें उम प्रकार की सामक्यस्यपूष नहीं है जैसी 'योदान' में है। प्रेमचन्द के 'योदान' में घटना-चरित्र-वातावरण आदि सब तत्त्वों का सुन्दर सामन्वय प्रस्तुत हुआ है।

(क) चरित्र-प्रधान उपन्यास—जिन उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की विशेषता प्रमुख रहती है और सत्य का उद्भूत आदि से अन्त तक चरित्रों के अन्तर्गत और मानसिक वातावरण-प्रतिपाद को प्रकट करके चरित्र की विविधताओं का प्रकाशन ही रहता है उन्हें चरित्र-प्रधान उपन्यास कहा जाता है। जन्म-प्रधान उपन्यासों में घटनाएँ महत्व पाती हैं और वे ही पात्रों का निम्न विभिन्न परिस्थितियों में कामकर उनके चरित्रों की कुछ रेखाएँ प्रकट करती हैं। पात्रों की चरित्रिक विविधता से पात्रों की उत्पत्ति नहीं होती। इसके विपरीत, चरित्र-प्रधान उपन्यासों में चरित्र-चित्रण महत्व पाता है और पात्र ही परिस्थितियों और कथानक का निर्माण करते हैं। कथा सङ्कोच अन्तर्गत मनोविज्ञान की प्रधानता पात्रों की भीड़ का अभाव व्यक्ति-वैचित्र्य आदि चरित्र-प्रधान उपन्यासों की सामान्य विशेषताएँ होती हैं। इसाचन्द्र जोशी जैनैत्र और अज्ञेय के उपन्यास चरित्र प्रधान उपन्यास ही हैं।

(घ) साहित्यिक दृष्टि से तीव्र प्रकार के उपन्यास होने हैं घटना-चरित्र-आपेक्ष —

सामञ्जस्यपूर्ण। इनमें कथा और चरित्र-चित्रण दोनों का समान महत्त्व रहता है। कथा परिष्कृत पर प्रभावशाली है और चरित्र कथा को विकसित करते हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक सिद्ध होते हैं। प्रेमचन्द का 'गोदान' इन कोटि का सुन्दर उदाहरण है। उनमें 'सबा-सबल' 'गिमेना' 'गबन' 'कमभूमि' 'प्रेमाधम' तथा 'रक्तभूमि' भी इसी कोटि में आते हैं। 'गोदान' में आकर तो प्रेमचन्दजी ने कथानक और चरित्र-चित्रण का अद्भुत सुन्दर संयोग प्रस्तुत किया है। हिन्दी में ऐसे सामञ्जस्यपूर्ण उपन्यास प्रचुर मात्रा में मिले गए हैं। उपेन्द्रनाथ अत्रे यत्नाल भगवतीप्रसाद दासदेवी रामेश्वरदास मयवतीचरण वर्मा विष्णुप्रसाद आदि के कुछ सुन्दर उपन्यास तथा इसाचन्द्र जोशी का 'जहाज का पंछी' बटमा-चरित्र सम्मिश्र रचनाएँ हैं।

(घ) बातावरण-प्रधान उपन्यासों में देशकाल-वातावरण का सजीव चित्रण रहता है और तत्सम्बन्धी सामाजिक धार्मिक राजनीतिक नैतिक आदि परिस्थितियाँ लोगों के रीति रिवाज खान-पान वस्त्र-स्नान आदि का सजीव चित्रण करना लेखक का उद्देश्य रहता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में वातावरण की सजीवता और भी आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण हो जाती है। बुन्दावननाथ वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में बुन्देलखण्ड का वातावरण सजीव हो उठता है। लेखक का उद्देश्य भी अतीत संस्कृति को सांस्कृतिक जीवन को प्रदर्शित करके उनमें से कुछ मथियाँ चुनने का रहा है। किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास ही वातावरण प्रधान हों ऐसी बात नहीं। सामाजिक उपन्यास भी वातावरण-प्रधान हो सकते हैं होते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में वातावरण अत्यन्त सजीव रहता है। वातावरण प्रधान उपन्यासों में ऐतिहासिक संरचना का पुट रहता ही है। उनमें चाहे पालों के नाम और कल्पनाएँ संरचना का सांस्कृतिक वातावरण के रूप में उनका ऐतिहासिक महत्त्व रहता है। प्रेमचन्द के उपन्यास मध्यम कल्पित कथानकों पर ही आधारित हैं किन्तु उनमें कम-से-कम पिछले पचासों वर्षों के भारतीय जीवन का जो मार्वाच चित्रण है वह बड़ी-बड़ी इतिहास की पुस्तकों में भी नहीं मिल सकता। अतः उनका ऐतिहासिक महत्त्व सब दिन बना रहेगा। ऐतिहासिक उपन्यास भी दो तरह के होते हैं—एक कुछ ऐतिहासिक अवस्थाओं में बटमा तथा पालों की सत्यता रहती है, दूसरे में जिसमें केवल वातावरण की सत्यता रहती है—जैसे कृष्णचरणदास वर्मा का 'बिराटा की पत्थिनी'। कहना यह होगा कि प्रेमचन्द के उपन्यास संक्षेप में वर्णों के पञ्चाङ्ग भी इस दूसरी कोटि के ऐतिहासिक उपन्यास माने जायेंगे।

हिन्दी में पिछले दस-बारह वर्षों में सांस्कृतिक उपन्यासों का भी प्रचलन हुआ है। ये उपन्यास कुछ वातावरण प्रधान हैं। इनमें जनपदीय संस्कृति भाषा-शैली रीति-नीति खान-पान व्यवहार तथा अन्य सब परिस्थितियों का सजीव चित्रण

रहता है। 'मैला जीवम' जसे उपन्यासों में तो एक तरह वीहरे के (Vainity Fair) चैनेटी केयर की तरह समाज ही हीरो बना हुआ है।

(क) हिन्दी में भाव-प्रधान उपन्यासों की मक्या मिलनी की है। बाप्पुब में उपन्यास का जनेवर बढ़ा होने से हममें भावुकता का इतना बिम्बित अस्वाभाविक ही हो जाता है। भाव प्रधानता के साथ उपन्यास-कथा का बहुत विचार सम्भव नहीं है। कारण यं इतना-तना महाम आदि के जो हो-चार उपन्यास मिलने हैं व अस्वाभाविकता के दोष से मुक्त ही हैं। भाव भाव-प्रधान उपन्यास विद्यमान नहीं मिल पाए। बस उपन्यास में भावों और रसों की सृष्टि रहनी ही है। प्रयादवी का 'दिनसी मुन्दर भाव-भूषे' उपन्यास है। भाव-प्रधान उपन्यासों का एक रूप पिछन क्यों में हास्य प्रधान उपन्यासों का विकसित हुआ है। निरुत्साह के 'विस्मयुर बर्षिष्ठा' तथा 'कुस्मी घाट' सामाजिक व्यंग्य-प्रधान उपन्यास हैं। इसी प्रकार द्वारकाप्रसाद का 'मुताब्-जेमज्जत' जयुतलाल नायर का 'मेड बकिमल आदि हास्य-रस के उपन्यास हैं। परन्तु भाव-प्रधान उपन्यासों की जो एक विवेकता भावार्थिक गीमी होनी है वह हमने नहीं है। अब उन्हें भी सच्चे अर्थों में भाव-प्रधान उपन्यास नहीं कह सकते। सब तो यह है कि उपन्यास में भावुकता का पूरा एक समावेश होना ही बजि है।

(ख) उद्देश्य को प्रमुखता देकर भी उपन्यास लिखे जाते हैं। पर उनमें कथा का हान्य अवश्यमायी है। हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासों में उपदेश और मुधार का उद्देश्य स्पष्ट रहने के कारण कलात्मकता का अभाव रहा है। बस तो प्रत्येक रचना उद्देश्य निष्ठी जाती है पर जब उद्देश्य की प्रधानता हो जाती है—उद्देश्य रस का सहाय सेकर प्रकट नहीं होता—तो औपन्यासिक आनन्द को हानि पहुँचती है। हिन्दी के अनेक प्रगतिवादी उपन्यासों में बीच-बीच में उद्देश्य अपमन्ता उभर आ पड़ता है जिसके कारण मरमता में कमी आ जाती है। 'बाबा बनेतरमाय जेवी रस नात्रों को तो उद्देश्य-प्रधान ही कहा जा सकता है। मुररत के अविच्छिन्न उपन्यासों में उद्देश्य कथारस या भावरस में बुझकर ही प्रकट हुआ है फिर भी कहीं-कहीं वहाँ वह अपमन्ता उभर गया है वहीं उपन्यास की रोचकता निमग्न गई है। फिर भी उनके उपन्यासों का उद्देश्य प्रधान नहीं कहा जा सकता। प्रेमचन्द के उपन्यासों में उद्देश्य प्रायः कथारस या भाव-संवेदनार्थ का रूप लेकर ही प्रकट हुआ है। कहीं कहीं किन्तु उपन्यास में किसी एक-आध स्थान पर रस बात का अरचाव मने हो अथवा प्रेमचन्द का उद्देश्य प्रकट (कथा का रूप बना) ही प्रकट हुआ है। 'पोदान में तो उद्देश्य सर्वथा सरस है और सहान् है।

२—वर्ष विषय की दृष्टि से उपन्यास की कोई सीमा नहीं। धार्मिक-वीर्याधिक

विषयों पर भी उपन्यास लिखे जा सकते हैं। यद्यपि हिन्दी में १० गीरीशचन्द्र मिश्र के 'बलिदान का मन्दिर' (१९४१ ई०) और 'जयदेव' (१९४२ ई०) आदि एक-दो अधोक्त धार्मिक उपन्यास ही लिखे गए हैं। सामाजिक विषयों पर ही अधिक उपन्यास लिखे गए हैं। विभिन्न समाज की विभिन्न-विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार पारिवारिक विषय पर पारिवारिक उपन्यास वैयक्तिक समस्याओं से सम्बन्धित वैयक्तिक उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास मनोवैज्ञानिक आधुनिक साहित्यिक आदि अनेक विषयों पर विभिन्न प्रकार के उपन्यास लिखे गए हैं। प्रेमचन्द के उपन्यास सामाजिक हैं क्योंकि उनमें समाज की विभिन्न समस्याओं का सजीव चित्रण हुआ है। यद्यपि 'कर्मवृत्ति' आदि में कुछ राजनैतिक छूट भी आयी है। पर प्रेमचन्द के किसी उपन्यास को राजनैतिक नहीं कहा जा सकता। श्री गुरुदासमान वर्मा के उपन्यास ऐतिहासिक सामाजिक हैं। इलाचन्द जाली और अजय के वैयक्तिक-मनोवैज्ञानिक कहे जा सकते हैं।

१—उपन्यासों का वर्गीकरण जैसी की दृष्टि से भी किया जाता है। हिन्दी उपन्यासों में अनेक श्रेणियों का विकास हुआ है।

(क) वर्तमान विवरणप्रधान शैली—शुद्ध वर्तमानक शैली का प्रयोग हिन्दी के आरम्भिक विस्तृति आधुनिक ऐप्यारी के चटनाप्रधान उपन्यासों में हुआ। उस सारी कहानी सैफ़ के वर्णन और घटना विवरण के रूप में ही प्रकट की जाती थी। संवाद-शैली का प्रयोग भी छोड़ा होता था और विवरण की भी आवश्यकता नहीं होती थी। वस्तु-चित्रण या घृष्ट विवरण सब लक्ष्य या उसके नायक कपाकार के मधीन रहता था।

(ख) वर्तमान-विश्लेषणात्मक शैली—आरम्भिक उपन्यासों के बाद हमारे उपन्यासों में काट वर्णन या विवरण ही नहीं रहा जीवन की व्याख्या भी प्रस्तुत की जाने लगी। प्रेमचन्द के 'बरदान' 'प्रतिज्ञा' 'आवागमन' में वर्तमानक शैली का प्रयोग अधिक रहा है। किन्तु 'संसारमन' से 'सोचान' तक पहुँचते-पहुँचते प्रेमचन्द जीवन के पूर्ण व्याख्याता बन गये। अतः उनकी अन्य सब रचनाओं में वर्तमान-विश्लेषणात्मक शैली का ही प्रयोग हुआ है। वे चटनाओं और वस्तु का विवरण और चित्रण करने के साथ-साथ जीवन की व्याख्या या विश्लेषण भी प्रस्तुत करते जाते हैं। 'गोदान' में इस समन्वित शैली का परम उत्कृष्ट पाया जाता है। यद्यपि 'चतुरसेन' नास्ती भगवतीचरण वर्मा भगवतीप्रसाद पाण्डेयी गुरुदत्त जाकि की रचनाओं में भी इसी शैली का प्रयोग हुआ है। बर्माजी की 'गुप्तवनी' में यद्यपि वर्तमानक शैली का अधिक प्रयोग हुआ है, पर विश्लेषण-व्याख्या भी बीच-बीच में पाई जाती है।

(ग) विश्लेषणात्मक शैली—प्रेमचन्दोत्तर नाम के हमारे कुछ उपन्यासों में मनो

वैज्ञानिक सूझता आई। अन्तर्-बर्धन-प्रधान भौमी के स्थान पर विस्फेपण-प्रधान भौमी की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसाचन्द्र जोशी अज्ञेय और जीनेन्द्र ने विमेष रूप से इसी मसौ को अपनाया। जोशीजी के सभी उपन्यास विस्फेपण प्रधान भौमी में लिखे गये हैं। इनमें चटभाओं का बचन मामूली होता है। पर पात्रों की मन-चिन्तियों अन्तर्-मूला तथा परिस्थितियों का विस्फेपण अधिक रहता है।

(घ) संवाद-प्रधान भौमी—यह भी कहा जा चुका है कि आरम्भ में कुछ उपन्यास पारसी नाटक मञ्चनियों के प्रभाव से नाटकीय भौमी में भी लिखे गये थे जैसा—राममान का 'सुमनस उफ रजिया बेगम' (सन् १९१३) नयमधोपास का 'उर्वशी' (१९२३ ई०) आदि। बाद में यह भौमी कुछ बचन भौमी को माघ गऊ बननी। वृत्तावतमान बर्मा के कुछ उपन्यासों में बचनयुक्त संवाद प्रधान भौमी के ही वर्णन होते हैं। उनका 'कचनार' इसका सुन्दर उदाहरण है। उमड़ी समस्त कदा-मामची छोट छोटे सुन्दर संवादों के रूप में प्रकट हुई है। बीच-बीच में बचनभौमी भी है पर संवाद भौमी मुख्य है।

कथा कहने का ढङ्ग भी बहुत होते हैं। एक है इतिहासकार की धाँति द्वारा 'उप' में कथा कहने का ढङ्ग। इस प्रणाली में सैकड़ स्वयं सब प्रकार के बचन विमेष और विस्फेपण देता है। यह प्रणाली अपेक्षाकृत मरस होती है। प्रेमचन्द के सब उपन्यास इसी भौमी में लिखे गये हैं। कथा-पद्धति का दूसरा रूप है आरम्भ-कथात्मक पद्धति। इसमें एक या एकाधिक पात्र अपनी कथा 'मैं' भौमी में प्रस्तुत करते हैं। इस भौमी का सफल निर्वाह सैकड़ से मतरङ्गा चाहता है। इससे कथा और भी विश्व स्वीय बन जाती है। सैकड़ बीच में नहीं आता। जीनेन्द्र के 'सुन्दर' 'प्यनील' अज्ञेय का 'छेहर' जोशीजी के 'सम्यामो' 'जिन्सी' आदि में एक प्रमुख पात्र अपनी कथा कहता चलता है। अन्त में के 'नदी के द्वीप' और इसाचन्द्र जोशी के 'पर्व की राती' में एकाधिक पात्र अपनी-अपनी परस्पर सम्बद्ध कहानी कहते हैं। मनोवैज्ञानिक चरित्र-प्रधान उपन्यासों में इस भौमी का विमेष प्रयोग हुआ है।

दीपरी भौमी है—यह भौमी। इसका अधिक प्रचलन हिन्दी में नहीं हुआ। जैसे भी इस भौमी में कथा चरित्र विमेष आदि उपन्यास-कथा के अङ्ग मधुरे ही पड़ जाते हैं। वेचन बर्मा तथा का 'बग्न हमीनां के अनुत' प्रफुल्लचन्द्र जोशी 'मूल्' का उपन्यास 'पाप और पुण्य' (१९३० ई०) इसी भौमी की रचनाएँ हैं।

चौथी प्रणाली है वैमिश्रिणी (हायरी) वाली। यह भी आरम्भकाल भौमी का ही एक रूप है क्योंकि हायरी सिखन वाला 'मैं' भौमी ही अपनाता है। हिन्दी में यह भौमी भी विमेष प्रचलित नहीं हुई। कुछ उपन्यासों में—जैसे, इसाचन्द्र जोशी के 'भगवा' (पुष्पाभयो) और 'निर्वासित' में—पात्रों की हायरी में काम लिया गया है।

पर उनकी मौली समग्रतः डायरी नहीं है। इस मौली में सायब एकमात्र 'सोबित-तपक' नामक उपन्यास लिखा गया है।

इसके अतिरिक्त कथा और भी अनेक रूपों में प्रस्तुत की जाती है। कुछ उपन्यासों में असम्बद्ध घटनाओं के रूप में कथा प्रकट की जाती है। घटनाओं का पूर्वपर सम्बन्ध नहीं होता। विभिन्न व्यक्तियों या सामाजिक वर्गों से सम्बन्धित जीवन-असंग शक्तियों के रूप में प्रकट किया जाता है। या तो वे विभिन्न शक्तियाँ एक नायक के कारण अलग-अलग जुड़ी रहती हैं या एक ही उद्देश्य से सम्बन्ध रखती हैं। इसाचन्द्र जोशी के 'अज्ञान का पक्षी' में यह बहुत बहुत सुन्दर रूप में अपनाया गया है। उसमें विभिन्न-विभिन्न प्रकार के जीवन की शक्तियों को एक नायक द्वारा वर्णित किया है। एक और बहुत पानों के साधारण पर कथा-मौली के प्रयोग का होता है। इसमें लेखक दो-तीन पात्रों को लेता है और उनकी बारी-बारी कथा प्रकट करता हुआ अन्त में किसी एक परिस्थिति में उनको मिला देता है। इस प्रकार की कथा उपसंहार में सम्बद्ध हो जाती है। राजा राधिकारमण का 'राय रहीन' इसका सुन्दर उदाहरण है।

असम्बद्ध घटनाओं की उपर्युक्त मौली में विभिन्न कल्पित कथाओं के रूप में उपन्यास लिखने की पद्धति भी हिन्दी में पिछले कुछ वर्षों से प्रचलित हुई है। हिन्दी में यह एक बड़े साहस का प्रयोग है। विश्व साहित्य में भी इस मौली का प्रयोग बिछेप नहीं हुआ। श्री धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' तथा त्रिभुवन मिश्र द्वारा 'बहुती गंगा' इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। इसमें परस्पर स्वतन्त्र कहानियों में कौशल के साथ सम्बन्ध-सूत्र जोड़ दिया जाता है। 'बहुती गंगा' में काली की दो नौ बहों की जीवनमार्गों की सतत तरंगों में प्रकट किया गया है। लेखक का कथन है—“ये तरङ्ग हैं एक-दूसरे से अलग परस्पर स्वतन्त्र परन्तु साथ और तरङ्ग-न्याय से आपस में बंधी हुई।”

समय विपर्यय (Time-shift) पद्धति का भी कुछ उपन्यासों की घटनाओं के प्रस्तुत करने की दृष्टि से प्रयोग हुआ है। इसमें कालक्रम के अनुसार क्रमिक रूप में कथा-प्रसङ्ग और घटनाएँ प्रस्तुत नहीं की जाती। जोशीजी के 'पर्व की रानी' में पहले निरंजना के हास्टल-प्रवेश की कथा प्रस्तुत की गई है फिर अगले प्रकरण में उसकी पूर्वकथा पर प्रकाश डाला गया है। जैनेन्द्र की 'कल्पानी' समय विपर्यय का सुन्दर उदाहरण प्रकट करती है।

कुछ उपन्यास अतना-प्रवाह पद्धति पर भी लिखे गये हैं। हिन्दी में यद्यपि वेमन प्रबास के मुनिसिंस कल्पित कथा के 'साष्टतः हाउस' जैसा अतना प्रवाह नहीं मिलता तो भी अजय प्रभाकर नाथने आदि ने इसका कुछ प्रयोग किया है।

माचरमी का उपन्यास परसु इस पद्धति का अच्छा आभाम देता है।

इस प्रकार वर्णन-शैली की दृष्टि से क्या जिनमें मैं हमारे उपन्यासकारों ने अनेकानेक प्रयोग किये हैं। कहना न होगा कि प्रेमचन्द ने हम दिशा में कोई प्रयोग नहीं किया। उनके उपन्यासों में क्या का मीठा-नाश रूप ही पाया जाता है। उमीचो उन्होंने रोचक ढङ्ग से प्रस्तुत किया है। क्या में रोचकता का गुण होना ही उपन्यास की पहली शर्त होती है प्रयोग-चमत्कार दिखाना नहीं। अतः प्रेमचन्द के सामने यही उद्देश्य था। प्रयोगों के लिए उनके पास समय नहीं था, न उन्हें आश्चर्यकता ही थी। जीवनानुभूतियों की इतनी विपुल रोचक सामग्री उनके पास थी कि उन चाहे जिस ढङ्ग से प्रस्तुत कर दें प्रभाव उत्पन्न किये बिना न रहना। अतः क्या-गित्त के प्रयोगों के बिना भी उनके कथानक प्रयोगवादियों से अधिक सफल हैं।

४ यथार्थ और आदर्श की दृष्टि से कुछ रचनाएँ अति यथार्थवाद के रूप में निर्भीक हैं जैसे उद्योगी तथा व्यवसायिक जीवन आदि के कुछ उपपाठ। आरम्भ में कुछ आदर्शवादी रचनाएँ भी हुईं। किन्तु प्रमचन्द ने क्या-माहिम्न में यथार्थ और आदर्श का सामन्तव्य प्रस्तुत करके एक स्वस्थ राह दिखाई। उनका 'यथार्थ' इस दिशा में गया मोड़ था। 'योदान' न स्वस्थ यथार्थवाद की ओर और भी उत्तम गया मोड़ प्रस्तुत किया। आश्चर्य इसी स्वस्थ यथार्थवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को ही अपनाया उचित समझा जाता है। यथार्थ या आदर्शवादी पक्ष धनवतीचरण बर्मा धनवतीप्रसाद बाबूजी उपेन्द्रनाथ अरुण जीनेन्द्र आदि सबमें जीवन की स्वस्थ और चार्ने देने वाला यथार्थवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद पाया जाता है। प्रमचन्द के उपन्यास सामाजिक यथार्थवाद के मध्ये निर्भरक हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से हिन्दी उपन्यास की विभिन्न विभिन्न काटियाँ और प्रमचन्द के उपन्यासों का बौद्धिक स्वरूप हुआ होगा। उपन्यास की सिल्ल-टैक की समझ की दृष्टि से भी यह प्रकरण उपयोगी रहा होगा एसी आशा है। प्रेमचन्द के उपन्यास ऐतिहासिक बचन-विन्यासवाचक शक्तों में रख गए चरित्र-वर्णन-समन्वित आदर्शोन्मुख यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास हैं। 'योदान' में नीली-जिम्न का चरित्रोन्मुख पाया जाता है।





## प्रेमचन्द की औपन्यासिक चेतना का क्रमिक विकास



### शोखान पूर्व के उपन्यास

प्रेमचन्द की पहली रचना (अप्राप्य) के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है कि माधु के घटना प्रसङ्ग को उन्होंने किन प्रकार ग्रहण का रूप दिया। इससे ही उनकी समाज भावना दृष्टि का पता चल जाता है। हिन्दी में 'शोखान' के प्रकाशन से पूर्व प्रेमचन्द उन्नीस में कई उपन्यास और कहानियाँ लिख चुके थे। इनमें 'कटी रानी' (इमगरे-मुहम्मद (१८९८ ई०) 'प्रतापचन्द्र' 'श्यामा' (१९०१ ई०) 'अरबान' (१९०२ ई०) 'प्रेमा' 'कृष्णा' (१९०२ ई०) 'हम खुर्मा व हम सबाब' (१९०३ ई०) और 'प्रतिज्ञा' (१९०६ ई०) नामक उपन्यासों का पता चलता है। 'कटी रानी' ऐतिहासिक आधार पर लिखा गया है। इसमें अतीत इतिहास की हमारी कुराहियों को प्रकट करते हुए, राजपूतों की बापसी पूरा और ईर्ष्या बहु विवाह की खराबियाँ राजबख्शों के द्वय-भरे पक्ष्यमन सामन्तीय व्यवस्था में मारी की लोचनीय बहाव विधि पर प्रकाश डाला गया है। प्रेमचन्द मारी की लोचनीय बहाव के प्रति आरम्भ से ही संवेदनशील रहे हैं। उन्होंने कहा है— 'बटी बिग सींगो की गाय है। माता-पिता उसकी रक्षा करते हैं और जिसके पन्ने चाहे बाँध बैठे हैं।

'प्रतापचन्द्र' और 'अरबान' एवं ही रचना के दो रूप हैं तथा 'प्रतिज्ञा' प्रमा और हम खुर्मा व हम सबाब भी एक ही विषय की अलग-अलग रचनाएँ हैं। अन्तिम अप्रकाशित रही और अब अप्राप्य हैं। इसी प्रकार सम्भवतः 'श्यामा' और 'कृष्णा' भी एवं ही रचना के दो नाम प्रचलित हो गये होंगे। ये दोनों भी अप्राप्य हैं।

'अरबान' (१९०२ ई०) की कहानी वसुधैव कुटुम्बकम् के प्रेम की कहानी है। पर प्रेमचन्द इसमें विफल प्रेमी प्रताप के प्रेम का उदासीकरण करके उसे समाज-सेवा बना देते हैं। इससे प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द आरम्भ से ही समाज-सेवा का आदर्श अपना कर चुके हैं। इस रचना में हमारी परम्परागत वैवाहिक पद्धति के दोष को

प्रकट किया गया है। प्रताप गरीब लड़का है बिरजन्त अमीर घराने की है। बातपन के साहचर्य से निकसित दोनों का स्वाभाविक प्रेम समाज की दीवार से टकरा कर रह जाता है। अमीर की लड़की का विवाह गरीब से कैसे हो सकता है? दोनों छुपटाते रह जाते हैं। सरस्वत्य के 'वेवबास' जैसी कल्प परिस्थिति इसमें पाई जाती है। पर वही प्रेमचन्द वेवबास की तरह प्रताप को भिक्षुमा और शराबी न बनाकर देससेबी बनाने का प्रगल्भनीय कार्य हाथ में लेते हैं वही वह कला की नयी प्रकार निभा नहीं सके। इसी से वेवबास की तुलना में यह रचना बहुत हल्की प्रतीत होती है।

यह रचना संयोग तथा घटनाओं पर आधारित एक साधारण रचना है। आरम्भिक रचना का हल्का होना कोई हीनता की बात नहीं। इसमें कथा विविध है चरित्र-विकास की कमी है और कई अस्वाभाविक परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। विधा होपलन्त बिरजन्त की भागसिक स्थिति को प्रेमचन्द मनोवैज्ञानिक दृष्टि पर प्रकट नहीं कर सके। यह एक साध ही कमजाबरम (अपने पति) और प्रताप दोनों से प्रेम जाता प्रतीत होती है। प्रताप के विमोह में वह बीमार हो जाती है और उसके अन्ते पर ही बध्नी होती है। किन्तु इसी के साथ यह भी दिखाया गया है कि बिरजन्त कमला के प्रति भी प्रेमपूर्ण हृदय रखती है। यह स्थिति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दोषपूर्ण ही है।

इस दोष का मुख्य कारण है प्रेमचन्द की आदर्शवादी दृष्टि। वास्तव में प्रेमचन्द एक ओर तो बिरजन्त को कमला के प्रति अपना घम निमाम का परम्परागत आदर्श प्राप्त करने का आग्रह रखकर चले हैं दूसरी ओर प्रताप के चरित्र को ऊँचा रखने के मोह में भी भटक गए हैं। इसी से दोनों के चरित्रों में अस्वाभाविकता-सी आ गई है। प्रताप के सम्बन्ध में दिखाया गया है कि वह पाँच-सात मिनट माझबी से बात होते ही कहने लगता है कि यदि तुमने मेरे लिये बोयिनी बना लीकार कर लिया है तो मैं भी तुम्हारे लिए इस संयास और बैराम्य (अब वह बालार्ज नाम से बीतरायी बना हुआ है) को त्याग सकता हूँ। किन्तु बाद में वह पीछे हट जाता है। कमला के मरने पर प्रताप और बिरजन्त का मिश्रण भी इसी आधार के हेतु नहीं करवा गया। इस प्रकार प्रेमचन्द की आदर्शवादिता इसमें परिहास बनकर रह गई है। यहाँ आदर्श यथार्थ के लिए बलक रहा है। सामाजिक परिवेश भी इस रचना में बहुत सीमित है। फिर भी इस रचना के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द के पास समाज की गुरादियों और विवृतियों के बारे में कहने को बहुत-कुछ है पर वह कथारम और भाष रस में डुबाकर अभी उन बातों को कह नहीं पा रहे हैं। इसी से कोप उम्मेद कर रहे हैं। बिरजन्त के पत्नी तथा अन्य स्थलों पर ये सीधे उम्मेद देखे जा सकते हैं। बिरजन्त एक पत्र में लिखती है— 'क्या सुनती थी और

क्या दण्डी है। टूटे-भूट फूम के झोंपड़े मिट्टी की बीबारें चट्टों के सामने झूठे-भ्रष्ट के बड़े-बड़े डेर, य श्रम बेखबर भी चाहता है कि कहीं चली जाऊँ! मनुष्यों को देखो तो उनकी मोक्षणीय दशा है। हृदिहर्षा निकमी हुई है। वे विपत्ति की मूर्तिर्था और दरिद्रता के पीडित भिन्न हैं। किमी के करीर पर एक बेफटा बन्स नहीं है और जैसे बाम्पहीन कि रात-दिन पयोना बहाने पर भी कभी भरोसे रोटियाँ नहीं मिलती।" इसी प्रकार अन्य पन्ना में गवई याँवों की बुरी हालत महाजनो के गोपण साहूकारों जमींदारों के कप्याचारों का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार प्रतापचन्द भीषी जाति के लोगों में बलता है उनसे सहायभूति प्रकट करणा है। कहीं प्रेमचन्द रिस्वतखोर जानेदार की कासी करतूनों का उल्लेख करते हैं कहीं मद्रव कलक्टर से मिलने के लिए जाने वाले बिन्टी व्यामचरण को अपमानित अनुभव कराके पाखीवों का आरम गौरव जगाने की कोशिश की गई है।

इस प्रकार प्रेमचन्द के पास सामाजिक सामग्री बहुत विश्वाई होती है। पर वह यहाँ उसे कथा रस के रूप में प्रस्तुत नहीं कर सके। सब कथन ऊपरी उल्लेख-से हो गए हैं। वह इन्हीं कथा रस और भाव-संवेदनाओं में अपने की राह ढूँढ़ रहे हैं जो उन्हें 'सिवासरत आदि प्रगलै उपम्यासों में मिल गई।

### प्रतिज्ञा (१९०६ ई०)

'बरबान' की अपेक्षा प्रतिज्ञा एक सुनसी हुई सुन्दर रचना है। इसमें विधवा मायी की समस्या है। इनका भी सामाजिक परिवेश सीमित ही है। इस प्रेमचन्द जस्वामाजिकता न बाप से बहुत-कुछ बच गए हैं। इस उपम्यास का सम्बन्ध प्रेमचन्द के व्यक्तिगत जीवन से भी है। इस समय प्रेमचन्द विधवा-समस्या पर विचार-मग्न थे। इसीका परिणाम है कि सन् १९०६ में उन्होंने सिवासीदेवी नामक एक विधवा से विवाह करके अपने गार्हस्थ्य को सुखी बनाया। ऐसा लगता है कि अपने उपम्यास की एक बहुत बड़ी यथार्थ कमी को उन्होंने जीवन की इस घटना से पूरा किया है। वह इस प्रकार कि 'प्रतिज्ञा' में विधवा पूर्वा कहीं ठिकाना न पाकर, कमलाप्रसाद के आश्रय को भी कलुपित जान कर, अमृतराय के विधवाश्रम में चली जाती है। पूर्वा विधवा है और समझदार है। उसका विवेक पुनर्विवाह के पक्ष में है। अमृतराय दुहाय है और उसका सङ्कल्प है कि विधवा से ही शादी करेगा। ऐसी अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करने भी प्रेमचन्द ने पूर्वा और अमृतराय को नहीं दिया। समाज के सामने इस प्रकार का साहसपूर्ण हल प्रस्तुत करते हुए भी प्रेमचन्द केवल संकेतों तक रुक गए। शायद उनका आशयवाद जाड़े आ गया। वह जैसे यथार्थ रूप देने का साहस नहीं दिखा सके। मसबत अपने उपम्यास की इसी कमी को उन्होंने सिवासी देवी से विवाह करके पूरा किया है।

कला की दृष्टि से यह रचना 'वरदान' से एक कदम आगे है। इसमें पूर्ण और कमलाप्रसाद के मार्गसिद्धि सङ्घर्षों का जलजल चित्रण हुआ है। यद्यपि प्रेमचन्द का मनोबिज्ञान यही भी सामाजिक ऊपरी है। अर्थात् पात्रों की मनोवृत्तियों में है। तबना ही सरोकार रखते हैं। जितने से सामाजिक पहलुओं पर प्रकाश पड़ सके। पात्रों के पश्चात् अन्तः से उन्हें कोई मतभेद नहीं। यही कारण है कि अमृतनाथ मुनिता हीनानाथ जाति का चरित्र-चित्रण विशेष सजीव नहीं बन सका। उपन्यास की कला यद्यपि 'वरदान' से अधिक सुलझी हुई है। तथापि 'निर्मला' जैसी सुगठित एवं रोचक नहीं है।

### सेवासदन ( सन् १९१६ )

प्रेमचन्द के 'सेवासदन' में हिन्दी-उपन्यास साहित्य में नई चेतना नया शिल्प नई दृष्टि—सब प्रकार से नया मोड़ उपस्थित किया। सर्वप्रथम इस रचना में सामाजिक समस्याओं का व्यापक और गहरा अध्ययन प्रकाश हुआ। इसमें ही सर्वप्रथम समाज का कङ्काल पूरी तरह दिखाई दिया। इसमें प्रेमचन्द का मुख्य ध्यान बेरोज़गारी पर रहा। पर उसके साथ उसकी कारणभूत तथा अन्य अनेक दुरावस्थाओं का पर्दाफाश किया गया है। समाज की किन दुरावस्थाओं से हमारी सुनम जैसी कुल बर्बाद हो रही है। यह अत्यन्त सजीवता और मनोबिज्ञानिकता के साथ प्रकाश किया गया है। किन प्रकार समाज की एक दुरावस्था दूसरी को जन्म देती है और इस प्रकार सामाजिक दुरावस्थाओं का बटाटोप जीवन को बर्बाद कर देता है, यह प्रेमचन्द ने अच्छी तरह दर्शाया है।

सुनम एक अच्छे कुल की बच्ची है जो माता-पिता के भाई-प्यार में पली है। उसके पिता बारीया कृष्णचन्द्र पुनिम इन्स्पेक्टर हैं—बड़े ईमानदार, सज्जन पुरुष जो एक पैसा रिक्कत नहीं मंठ और इसी से अपने विधायक के सभी पुनिम-कर्मचारियों बस्तरों और मातहतों की गलतियों में खटकते हैं। प्रेमचन्द ने यहाँ पुनिम के भ्रष्टाचार पर अच्छा प्रकाश डाला है। पुनिम विधायक का भाई ही ऐसा है कि इसमें रिक्कत न लेने वाला ईमानदार अब भी सुनम से नहीं रह सकता। बारीया कृष्णचन्द्र अपनी प्यारी पुत्री के लिए घर की तलाश करते हैं। जहाँ-कहीं योग्य घर देखते हैं। बड़े की भारी माँग होती है। बड़े कहीं सँ दें? उन्होंने तो कभी एक पैसा भी रिक्कत का नहीं लिया। समस्या उपस्थित हो जाती है। अब उन्हें पछतावा होता है। ऐसे समाज में साधु बने रहने से क्या लाभ? वह चाहते तो अब तक माछों बपवा रिक्कत से जमा कर सकते थे। बड़े की समस्या उन्हें अब रिक्कत लेने को तैयार करती है। समाज की एक दुरावस्था दूसरी को जन्म देती है। रिक्कत लेने का व्यवहार भी सुरक्षित उपस्थित हो जाता है क्योंकि समाज में चोरों दाऊतों गोपकों और बन्धुमित्रों की कमी नहीं है। इन सब से रिक्कतें उठाने के अथवा पुनिम बानों

को हरषम प्राप्त रहते हैं।

यहाँ प्रेमचन्द ने महन्त रामदास के प्रसङ्ग-द्वारा धर्म के डोंग और सामन्तीय शोषण का बड़ा मुखर चित्रण किया है। महन्त रामदास बकिबिहारी के नाम पर गरीबों का शोषण करता है। उसके पास भयाङ्क की भूमि है। असामी बेसी करते हैं। वह मुफ्त की छाता है। गरीब असामियों का शोषण करता है। मुफ्त की कमाई से उसने कई मुमाले पाम रखे हैं। जिनसे गरीब किसानों को भयभीत रखता है। १० प्रतिशत सूब छाता है। बकिबिहारी के नाम पर पीटने वैस मित्रवाने बेदखल कराने यहाँ तक कि मरक मित्रवा देने का रीय भी उसके पास है। वह जबरदस्ती बका बसूल करता है। और बेचारे बेतू बहीर को न है सकने के कारण विरोध करने पर, इतना पिन्दाता है कि बकाय ठकप-ठकप कर मर जाता है। दारोगा इन्जबान को बबनर मिल जाता है। महन्त से तीन हजार रुपया रिबत लेकर मामल को रफ्त रफ्त कर देते हैं। प्रेमचन्द की हकि समाज की सभी कुराहियों पर सूक्ष्मता से जाने लगी है। दारोगा ने रुपये स्वयं हज्म करने चाहे। अपने सिपाहियों को कुछ न दिया। महन्त का कारिन्दा जो दारोगा इन्जबान को रुपयों की बीसी देता है अपनी बकाशीय या बलासी चाहता है। पर उस मामले में अनभ्यस्त दारोगा किसी को हिस्सा नहीं बाँटता। अतः झिकावत हो जाती है और छापा समाने पर दारोगा के घर से रिबत के रुपये बरामद हो जाते हैं। दारोगा को सजा हो जाती है।

इस परिस्थिति में सुमन का विवाह एक बचक उमर के दुहाण से ही होता है क्योंकि अच्छा घर पाने के लिए गङ्गावसी ( सुमन की माता ) के पास ददेव देने की सामर्थ्य नहीं थी। पुनः-ही कन्या एक निधन कुस्य बचक दुहाण व्यक्ति के साथ बाँध की जाती है।

प्रेमचन्द ने सुमन की उन मनोवैज्ञानिक पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है जिसके कारण उसे दासमण्डी का कोठा समाना पड़ता है। घर में बहिष्ता के कारण उसकी इच्छाएँ बुझी-बुझी रहती हैं। उसके द्वार के सामने बनी-गुह्ये के शोह्वे और बचक मुनक बकर लपाने मगते हैं। वह सब से बचती है। जीवन की विषम परिस्थितियों से समझौता करना चाहती है। पर पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ उसके पबिल संस्कारों को हाकसोखती जाती हैं। उसका भारतीय कुम-कन्या के संस्कारों पर बिहुल सामाजिक परिस्थितियों की ये-वर-ये चोट पड़ती है। उसके घर के सामने ही मोसीबाई नामक एक बेध्दा बामकाय है। वह उसके छान देखती है। पर उसे बेध्दा से डरता है। उसका संस्कार कहता है कि गरीब होते हुए भी वह यस्या से बहुत ऊँची है। पर एक दिन जब वह देखती है कि बेध्दा के महाँ मुनरे में शहर के सभी धनीमानी सोय जाव हैं और

यही ठक कि उसका पति भी उससे सम्मिश्रित हुआ है तो उसका मन सच्चा से भर जाता है। उसका पति उससे कहता है कि जो धनी मोन बेसवा के यही साथ बे ब्रज होने से ही अच्छे आदमी मही कहे जा सकते। यह पति की बात मान लेती है। परन्तु जब वह पयवान् के मन्दिर में भी बेसवा का सम्मान देखती है और पाक में बीज पर बैठने के कारण बीबीदार उसका अपमान करता है और मोमीबाई को सम्मान करता है तो वह उत्तेजित हो जाती है। उसके स्वाभिमान को एक ठोकर और मचती है। जब पद्मसिंह सर्मा-जैस सज्जन बकील भी अपने यही बेसवा धोनी बाई का मुकरा करते हैं तो उसका आत्मविश्वास टूट-टूट हो जाता है। वह सोचती है कि बेसवा का इतना सम्मान। क्या मोमीबाई से वह थप में कम है? क्या वह मान-समाना बीबीदार बेसा सम्मान नहीं पा सकती?

उधर उसका पति समय से मर रहा है। अर्द्ध व्यक्ति अपनी सुन्दर पत्नी के बारे में सदा ही सपनावां हो जाता है। उस रात जब वह अपनी मर्ती सुमन के घर से बाहर बड़े खीटती है तो पति कच्चे मारकर उसे घर से बाहर निगास देता है। वह चरम स्थिति है। सुमन भी सोचती है कि बाबिर उसका क्या दोष है या उसका पति इस प्रकार का व्यवहार करता है? वह कौन से पहले पड़वा कर साता है? कहां के कपड़े पहनाता और पकवान बिनाता है कि इस प्रकार रोब जताय? जब घर के द्वार उसके लिए बन्द हो जाते हैं तो वह अनिश्चित भविष्य के पथ जाये बढ़ाती है। मोमीबाई स्थिति को ठाढ़ जाती है। वह सुमन को बुराभी है। अपने पाम बेसवा का जीवन बिताने के लिए रखना चाहती है। प्रेमचन्द ने यही फिर उसके पुन-जन्म के संस्कारों का प्रवर्तन दिखाई है। वह मोमीबाई के पास न रुककर, एक कमर कोठरी में रहने लगती है, सिमाई बाबि का काम-काज करके अपना निर्वाह करना चाहती है। पर बाहरे समाज! तु कम बिट्टी असहाय बचका को सुरक्षित छोड़ता है? मोहरे और बुद्धे सुमन का जीना मुश्किल कर देते हैं। बाबिर उसे मोमीबाई की धरम लेनी पड़ती है और पान बिछा सज्जीत बाबि बीबीदार दाममन्त्री का कोठ सजाना पड़ता है।

प्रेमचन्द ने समाज के बीभत्स रूप का बड़ा ही सजीव चित्रण इन उपन्यास में किया है। हम पहले कह चुके हैं प्रेमचन्द के उपन्यासों का बीजपात्र हुआ है। 'सवासन' बीभत्स रम-प्रधान उपन्यास है। सामाजिक कुरीतियों बुराईयों तथा उत्तमवर्गी बुरे व्यक्तियों के प्रति हमारी कृपा इसमें स्वातन्त्र्य पर जाग्रत जाती है। यह बेसवा समन रिश्वतखोरी भ्रष्टाचार वालों ने हचकच्चे धार्मिक ढोंग और नायक असीर लोगों की बिनाम-बाबता संकुचित हडि निवाह-भासी में बेसवा का नाच-गान बाबि पर अत्यधिक वर्ष मूटी कुम-मर्वाता के लिए भारत बापिम भौटाना (ताम्रा के निवाह

प्रसङ्ग पर) नारी के एक बार पट्ट में फँस जाने पर उसे सदा कलङ्किनी मानने की मनोवृत्ति जाति-प्राप्ति के बन्धन शुभाशुभ आदि अनेक सामाजिक बुराईयों को प्रेमचन्द ने बीमरु रस के रूप में प्रस्तुत किया है। इस सब समस्याओं को कबाब और भाबरम (बीमरु रस) में नृत्य कर प्रकट किया गया है। यही इस रचना को सघन बड़ी शक्ति है।

बेव्या-समस्या के सम्बन्ध में प्रेमचन्द अपने युग से जागे दृष्टिप्राप्त नहीं कर सके हैं। उन्होंने बेव्या-समस्या का हम बेव्याजों को नगर से दूर बसाने और उनके पुबार के रूप में ही देखा है। यद्यपि वह यह संकेत भी देते हैं कि घन वा घनी मोव ही इन बेव्याजों को पालते हैं। पर इस समस्या का आर्थिक पहलू वे स्पष्ट नहीं कर सके हैं। फिर भी हमारी कुल-कन्याओं के बेव्या बनने में सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियों का उत्तरदायी ठहराने में वह पूरी तरह सफल हुये हैं। साथ ही बेव्याजों — विशेष रूप से बेव्याजों की संतानों—के लिए नारी-सदन की स्थापना भी एक महत्वपूर्ण सुझाव कहा जा सकता है। प्रेमचन्द की रचना साठ शब्दों में पुकार रही है कि समाज का यह कुकृत्य बचाने तभी कल्याण सम्भव है।

इस रचना में मुमन और पर्याप्त रस—इन दो पात्रों का चरित्र-चित्रण जिसकी सफलता से प्रकट हुआ है वह प्रेमचन्द को उत्तारका महान् उपमासकार कहने के लिये पर्याप्त है। इनके अतिरिक्त सबन शान्ता बिदल्यबास यज्ञाजली सुमद्रा आदि पात्रों का चरित्र भी पर्याप्त मजबूत है। दारोपा इत्येवम् के चरित्र-परिवर्तन के पर्याप्त मनोवैज्ञानिक कारण प्रेमचन्द नहीं प्रकट कर सके। इसी प्रकार समाज के चरित्र का अन्तिम अंग भी बहुत-कुछ हवाई हो गया है।

कबा जिस म भी प्रेमचन्द को अशुभ सफलता मिली है। यद्यपि इस रचना में भी म्युनिशिपल कमेटी के सदस्यों का अत्यधिक बाव-बिबाव आदि प्रसङ्ग भरपूर है तो होयवे हैं और कबा के सामाजिक विकास-क्रम और रस में बाधा पहुँचाते हैं। तथापि वह बोप बहुत अच्छे बाला नहीं।

प्रेमचन्द ने इसमें भी समाप्ति आदर्शवाद में ही की है पर वह आदर्शवाद कोरा वास्तविक अगहोना आपत्तवाद नहीं है। कुछ मिलाकर 'सेवासदन' प्रेमचन्द का आगे की भी कई रचनाओं से यह उपग्यास है। हिन्दी उपग्यास साहित्य में तो यह युग-प्रवर्तनकारी रचना है ही।

प्रेमाध्यम (सम् १९२२)

'प्रेमाध्यम' में प्रेमचन्द सबप्रथम यहाँ पाँच की ओर उन्मुख हुए। हिन्दी साहित्य में ही नहीं अपितु सम्भवतः सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में सर्वप्रथम इस विषय पर लिखी गयी है। इस रचना में किसानों के सङ्घर्ष का जलकर चित्रण हुआ। इस रचना

## प्रेमचन्द की औपन्यासिक चेतना का क्रमिक विकास

प्रेमाश्रम 'गोदान' की भूमिका कहा जा सकता है। इसमें शोषक और शोषित का सङ्घर्ष 'गोदान' से किसी प्रकार कम नहीं है। अन्तर यही है कि 'प्रेमाश्रम' में जमींदार (मानसकुंहर) की कथा प्रमुख है, किसानों की परिस्थितियाँ और कथा-प्रसङ्ग इससे सम्बन्धित हैं, जबकि 'गोदान' में किसान (होरी) की कथा प्रमुख है और जमींदार जाति की परिस्थितियाँ और कथा प्रसङ्ग उसके सम्बन्ध से प्रकट हुए हैं। यही कारण है कि ग्राम-जीवन की बड़ी समीक्षक तड़पन 'प्रेमाश्रम' में प्रकट नहीं हुईं, वही जो 'गोदान' में है। पर यह मानना पड़ेगा कि 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द अपने युग से आगे हैं। १९२०—२१ ई. में जबकि यह उपन्यास लिखा गया था देश में ग्राम-आन्दोलन या किसान-आन्दोलन विशेष प्रचलित नहीं हुए थे। कांग्रेस-द्वारा सन् १९२८ से पहले किसी किसान-आन्दोलन का सङ्गठन नहीं हुआ था। देश में साम्प्रदायिकों के मोर्चे भी बाढ़ में डूबने लगे हुए। प्रेमचन्द को गांधीजी का मानस पुल कहा जाता है। पर मैं समझता हूँ कि 'प्रेमाश्रम' में जहाँ प्रेमसङ्कर की जब छारना गांधीजी के प्रभाव में हुई है वहाँ जमींदार-किसान के सङ्घर्ष की कल्पना प्रेमचन्द की अपनी मौलिक दृष्टि-सृष्टि है।

आरम्भ में ही किसान के मन का विद्रोह प्रकट किया गया है। जब जमींदार का जादवी १० छत्तीस के बाजार-माफ की बजाय, बबरबस्ती सप्त छेर के हिसाब से भी के बाम देता है और मनोहर के विरोध करने पर कहता है—'जब जमींदार की जमीन जोतते हो तो उसके हुजम क बाहर नहीं जा सकते। तो मनोहर स्पष्ट शब्दों में कहता है—'जमीन कोई खींचत में जोतते हैं? उसका जमान देते हैं। एक किन्त भी बाकी पड़ जाए तो गालिब होती है।'— 'म कारिया कोई काहू है न जमींदार कोई हीमा है। यहाँ कोई बर्बस नहीं हैं। जब कीड़ी-कीड़ी लयाप चुकाते हैं तो घोंस क्यों सँई।

मनोहर का बेटा बलराज गई पीड़ी का और भी उध लचमुचक है। वह मरने मारने तक की चुनौती देता है। प्रेमचन्द ने हुजम-सङ्घर्ष का यह स्रोत कम-अलदेरिया की कान्तिनों से प्राप्त किया है। उस युग में कोई किसान बस्ती-कान्ति की बात करके भारत में हुजम-मजदूर के राज्य की आकांक्षा जागरूक ही प्रकट कर सके हो। वह स्थिति सगणम सन् १९१० के पहले सम्भव नहीं लगती। तो भी प्रेमचन्द ने जागामी युग की आहूँ लेते हुए बलराज से कहनाया है—'युय लाप तो मेरी हँसी उड़ाते हो मानो कास्तकार कुछ होता ही नहीं वह जमींदार की बेपार ही करने के लिए बनाया गया है। मैकिम मेरे पाप को पल जाना है उसमें निजा है कि बस बेम में कास्तकारों का ही राज है वह जो चाहते हैं करते हैं। उठी के, पाप कोई और पैस बलबारी है। वहाँ अभी हाल की बात है कास्तकारों ने राजा को यही से उतार



दिया है और अब किसानों और मजदूरों की पचापस राज करती है। और वह बड़ी पीड़ी के लोगों से साफ-साफ कह देता है कि तुम सहते रहे हम नहीं सह सकते— 'क्यों न बोझ तुम तो दो-चार दिन के मेहमान हो जो कुछ पड़ेगी वह तो हमारे ही सिर पड़ेगी। जमींदार कोई बावसाह मही हैं कि चाहे बितानी बबरहस्ती करें और हम मुह न बोझे। इस जमाने में तो बावसाहों का भी इतना अधिकार नहीं जमींदार किस गिनती में हैं।

निरुधम ही बसराज का यह रूप-स्वरूप प्रेमचन्द की ही मानस-सृष्टि है। वह अपने युग से आगे की संसक है। सब तो वह है कि 'गोदान' में भी प्रेमचन्द विद्रोह का ऐसा ठना हुआ उद्यम कर नहीं दिया सके।

इसने पर भी कहना पड़ता है कि प्रेमचन्द इस सङ्घर्ष के हम के लिए मोड़ीबी की ओर ही देखते हैं। यद्यपि उन्होंने कहलबाया है कि 'सत्याग्रह में अन्याय को दमन करने की शक्ति है। यह विद्वान्त धर्मपूज सिद्ध हुआ परन्तु हृदय-परिवर्तन सम सौता अहिंसात्मक जाति सत्याग्रह आदि साधनों से ही उनका भारत प्राप्त प्रेम सङ्कट सङ्घर्ष करता है और प्रेमचन्द की सुखद कल्पना से विचली होता है। क्योंकि अन्त तक आते-जाते सब का हृदय-परिवर्तन हो जाता है। मायानन्द अपनी रिमासत छेड़ देता है। किसानों में उसे बाँट दिया जाता है अभिपुक्त छूँ बाँटे हैं। इफ़ल जनी इजाराहुसेन उबालासिंह का प्रेमनाथ आदि सब का मन अपनी स्वार्थवृत्ति के कारण रताति से भर जाता है सब का परिवर्तन हो जाता है। लखनपुर एक आदर्श ग्राम बन जाता है। निरुधम ही प्रेमचन्द का यह आदर्शवादी मोड़ीयुग की एक सुखद कल्पना थी जो न अपने बुद्ध की वास्तविकता थी और न आधुनिक युग की। यह आदर्शवादी अन्त प्रेमचन्द का एक सामान्य ढङ्ग ही बन गया। प्रेमचन्द की सभी रचनाओं में बहुत से कुछ पाल अन्त तक पहुँचते-पहुँचते पचासाप की अग्नि में जलते हुए अपनी सदाशयता को जोजते प्रतीत होते हैं। 'गोदान' में आदर्शवादी परिचरित न होते हुए भी पालों के जरिब चिलन में यह आदर्शवादी परिवर्तन अवश्य पाया जाता है। मायावीन मामभी जज्जा जाकि के जरिबो में यह प्रवृत्ति स्पष्ट है। 'प्रेमा' धम में तो यह बहुत ही अधिक है। उपर्युक्त पालों के अतिरिक्त मायनी यदा आदि और यहाँ तक कि स्वयं आनन्दपुर पछाने प्रतीत होते हैं।

इस रचना में प्रेमचन्द का सामाजिक अध्ययन 'सेवा-सदन' से बड़ा-बड़ा है। इसमें मुख्य चित्रण जमींदार का ही है और उद्देश्य है जमींदारी-पद्धति के दुष्परिणाम प्रकट करना। प्रेमचन्द जमींदारी के सभी पहलुओं—प्रभाव ऐश्वर्य लोपक अन्याय अधिकार सिप्या बिलाम-सोमुपता आदि—पर प्रकाश डालते हुए अन्त में इस पद्धति को मृत्यु-दण्ड देते हैं।

‘प्रेमायम’ में जमींदार के सभी कर्णों पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। कम स-कम चार बप स्पष्ट हैं। एक कप है प्राचीन जटासकुर का जिसमें बौद्धिक युग की चतुराई के स्थान पर सामन्तीय जमींदार की बपा और उदारता थी। जटासकुर मर चुके थे। उनके समय की बात ही और थी। ‘तब शाम हो शाम की दन बाकी पड़ जाती थी मुझ यात्रिण कभी कुङ्कुमी बेइखामी नहीं करता थे।’ लड़कियों के ब्याह के लिए उनके यहाँ से लकड़ी चांग और पशुधन खपाई जा रहा था। अब वह अपने सड़ना की तरह पामत थे ताँ रीत भी ईमी-बुमी उनकी बेमार करती थी। अब वह बाते तो गई। जमींदार का जीवन भी वरम ही था। न उसे डालियाँ बेनी होनी थीं न किसी अकसर की पुनामब करनी पड़नी थी। उनकी आवायकताएँ भी सीमित थी। बत अमायियों पर अन्धाकार करने की अकुरन नहीं थी।

अब रह सय है प्रभावकुर जिनका न प्रभाव है न हावा में अक्ति है न धन। किन्तु वो पुपनी जान रखना चाहते हैं। अमायियों पर अन्धाकार डाला उन्हें पसन्द नहीं है। अधिक चौड हूँ नहीं कण चकने। नए बौद्धिक आवायक से उनका भेत्त नहीं आता। नई पीढ़ी के आगबकुर ने उनकी बोलनी अम्प कर दी है। यह दूसरे प्रकार के जमींदार का रूप है। पहले जमींदार अपनी स्वाभाविक सीत मर गए थे य बीबित होते थे। प्रभावहीन सङ्कपहीन अङ्क बने हुए हैं। य अपनी परम्परा में बने हुए हैं और नई पूँजीवादी या बुद्धिवादी जमींदारी से डूबे हैं।

प्रेमचन्दजी ने तीसरे प्रकार के जमींदार का विस्तृत चित्रण किया है। यह है मानसकुर। वह बौद्धिक-शौनिक युग का जमींदार है और ब्रह्मसिद्धि डङ्क स सोचन करता है। वह नई परिस्थितियों के अनुसार माघ ममसकर अपने स्वाभावों की रखा करता है और रूप मनाता है। पुलिस और हाकिमों से अपना रमूष बनाता है। रिस्वत डालियाँ देता है। टाउ-बाठ रचना है। गतिक दृष्टि से बहुत पोखना है। चित्तादी है पर माघ ही पूरा अभिचार-भोग्य। अपने स्वाभावों की पुनि के लिए हर तरह का स्वांग रचा जाता है। यह जमींदार पूरा हृदयहीन जमींदार है। अपने अमायियों पर अन्धाकार गत जरा भी नहीं हिचकना। इनक पतन की विस्तृत कज्ञानी ही ‘प्रेमायम’ का मुख्य उपजीव्य है। प्रभावकुर न अम्प में धन जमींदार को भी हताश बसा में मृष्युपड के लिए बाध्य किया है। उनका बेदा मसरासकुर ही उनके मुँह सोड़ देता है। जिसके लिए उनसे अपना ईमान खाया अन्क हूर-केर और कुर्म क्रिय रही उनसे अलग हो जाता है।

माधानकुर बीबा बप है जो अरमनी हुई परिस्थितियों को समझ लेता है। जिसे गांधीवाद या गमाबपाय ने ममसतीना करने में ही अरना तथा रूपक-वर्ग का कस्बाय ममन दिया है। वह स्पेक्ष्य न अपनी रिवागत क्षिमाओं को दे देता है और

नाम पाया है। प्रेमचन्द जमींदारों का ऐसा ही हृदय-परिवर्तन चाहते हैं।

'प्रमाथम' में जमींदार का एक और रूप का उल्लेख विवेक बिना बात बहुरी रह जायगी। यह पाँचवाँ रूप है 'राय कमलानन्द' का। यह बिचारों की दृष्टि से 'गोदान' के रायसाहब अमरपालसिंह की तरह एकदम गमलदार और प्रगतिशील है। राय कमलानन्द और 'गोदान' के रायसाहब में अद्भुत साम्य है। रायकमलानन्द अपने वर्ग के लोगों की जैसी ही स्वीकारोक्ति करते हैं जैसी 'गोदान' के रायसाहब अमरपालसिंह। साफ़ आत्मचरित्र में वह स्पष्ट कहते हैं कि हम रियामल पर मरा क्या अधिकार है? यह मेरे पिताजी को बँसों की गहायला के बन्ध में मिली थी। मैं अपने परिश्रम से प्राप्त नहीं की। 'हम केवल लगान बमुस करने के लिए रत पड़े हैं। हमी बलासी के लिए हम लब्ध-भुम्हरे का धूल हैं अपने हाथ रँपते हैं।' —

'जमींदार का हागी रिवाजा की बड़ी दुर्बला होती है। मैं स्वयं इस विषय में सबका विरोध नहीं हूँ। केदार लगा है। डाँड बाँध भी लगा है। बरखमी या एजाब का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देना अमासिया पर अपना रीज बमाने के लिए अधिकारियों की लुभावध भी करता है।

एक जमींदारी को बुरा समझते हुए भी राय कमलानन्द इसे छोड़ नहीं सकते यही तो दिक्कत है। इस प्रथा के बाँधों से निकलना उनके लिए मुश्किल है। वह स्वयं कहते हैं — 'तुम कहोगे यह सब कोरी वदबाव है। गियापन इतनी बुरी चीज है कि उस छोड़ क्या मछी देते। हाँ यही तो रोना है कि हम रियामल ने हमें बिनामी आलगी और अवाहिज बना दिया। हम अब किसी काम के नहीं रहे।

यह जमींदार मारी राजनैतिक और राष्ट्रीय स्थिति को समझना-मुनठा है। अपने वर्ग की भृशवृत्तियाँ को अच्छी तरह जानता है और उनकी निन्दा भी करता है। पर तो भी उसमें रूढ़ता हुआ है। वह न तो आत्मचरित्र ही रहा है और न माया बहुरी बन पाया है।

इस प्रकार 'प्रमाथम' में जमींदारों के विभिन्न रूप प्रस्तुत करके प्रेमचन्द ने इस प्रथा के दुष्परिणामों का प्रकट विचार है और स्पष्ट लक्ष्य में इस वर्ग के अस्तित्व को अनावश्यक और अनिष्टकारी सिद्ध किया है।

'प्रमाथम' में कथा प्रबन्ध बना नहीं हो पाया जैसा 'सेवानन्द' में था। इसका कारण है कार्यक्रम का कँपास। इसमें प्रेमचन्द ने अनेक बिन्दु विवेक हैं और उनमें कुछ अनावश्यक या अलम्बित भी है। अनेक स्थानों पर बासिन्तार अधिक है। कुछ चरित्र प्रमत्त भी अधिभगनीय और अनावश्यक हैं। जैसे तेजबहादुर और पद्मबहादुर के अस्व-विश्राम और बगिचान की कथा राय कमलानन्द के जहर जाने पर भी कुछ अनर न होने की बात अटक पाया की इयागें लगान धर्म मया का अधिवेशन आदि

प्रमत्त और घटनाएँ ऐसी ही हैं। इसी पैसाव के कारण कला-सङ्कटन में निमित्तता भान है और रोचकता की हानि हुई है।

कुछ पात्रों के चरित्र चित्रण भी मनास-मानस दाय दिखाई देते हैं। राय बलमानन्द की सांसारिक प्रवृत्ति गारण और योग-वस में मध्यम मन्त्रिण ही है। आत्मज्ञान की आकांक्षा के बारे में तो हिन्दी प्रवा में पर्याप्त जागृकता ही बनी है। पात्रों की इतनी इरादों की लक्ष्य की कृमयता पर ध्यान ही है। इन भिन्न-भिन्न तरीकों का मन्त्रा है कि प्रवा प्रेमचन्द में प्रमत्त की विचार-वृत्ति समीर हुई है सामाजिक परिवर्तन की वृत्ति है। कुछ जीवन की समस्याओं और समाज-प्रवा का सर्वप्रथम चित्रण किया है। बहुत कला-निष्ठ में समाज-प्रवा में विकास की मन्त्रिण विमल दिखाई नहीं देता। प्रमाथम में कथारम और भाव-प्रवा की कुछ कमी रह गई जन्मदा वर रचना की प्रमत्त के चरित्र का चरित्र की मन्त्रिण ही। कुछ लोग प्रमत्त का सर्वप्रथम उपन्यास मानते हैं। एक आभाषक का कथन उपन्यास है— प्रमत्त का सर्वप्रथम कृति कौन भी है वह प्रमत्त जब उठता है तो लोग 'आभाषक और आकांक्षा' के साथ प्रमाथम का नाम भी लेते हैं। प्रमत्त विवाहात्मक में सर्वप्रथम है और नीला उपन्यासों की अपनी जन्म जन्म विमल गाँ है किन्तु समाहित प्रमाथ चरित्र चित्रण की कलात्मकता और मनोवैज्ञानिकता एक कथारम की वृत्ति से 'प्रमाथम' का ही विचार-वृत्ति की वृत्ति मानती है।

डा० राजेश्वर मुख का उपन्यास कथन बहुत आभाषक है। हमारे जाने आभाष ही किन्ता में 'आकांक्षा' का प्रमत्त की सर्वप्रथम रचना कहा है। दूसरे, राजेश्वर मुख ने 'प्रमाथम' को विम आभाष पर प्रमत्त की सर्वप्रथम रचना माना है आभाष वही उसकी कृमयता के अन्त है। 'प्रमाथम' में समाहित प्रमाथ चरित्र के कारण बीना नहीं रहा है। बीना 'आभाष' में चरित्र-चित्रण का वृत्ति से तो यह रचना कई रचनाओं में पीछे है। इसी प्रकार मनास-मानिकता और कला-सङ्कटन की 'प्रमाथम' के प्रमत्त-वृत्ति उत्पन्न नहीं है किन्तु प्रमाथ पर उस अन्य रचनाओं से अलग माना जा सक। अन्त की बात यह है कि अपने कथन की पुष्टि उन्हीं 'विमल' रचनाओं (?) के नाम पर करवा जाती है।

आभाष में 'प्रमाथम' की शक्ति उन्हीं कला-वृत्ति में नहीं है। उनमें तो यह पुराना है। किन्तु उसकी शक्ति है उसका बीमल रचना-प्रधान होने में। प्रमत्त में बीमल-वृत्ति प्रवा के बीमल रूप का विमल चित्रण किया है। रचना के नाम में बीमल-वृत्ति आभाषिक आभाषका में इस विमल-वृत्ति है कि अन्त हमारे कथन की आभाष-प्रधान है। 'प्रमाथम' हमारे महान् है कि अन्त का उद्देश्य महान् है। उद्देश्य की

महानता अपने में कुछ न होती यदि वह रंग रूप में न होती। यह रम-रूप न महानता बीमरग से का स्वरूप लेकर प्रकट हुई है। जानमन्दार का दुष्परिणाम अत्याचार, निर्बलता गायत्री को फलामा राय कमजानम्ब का बहुर देना आदि कुछ अन्तर्मयों की रिक्तता-छोरी तथा गरीबी हैं। मयाय अन्तर्मयों के साथ आए टिप्पणी। अपराधियों आदि की व्यावृत्तियों कारिणियों की मनमानी आदि अनेकों विषय आठ से अन्त तक हमारे धृणा माय को जवाबे और तीव्र करते हैं। इन सब धोपका प्रति पाठक धृणा से भर जाता है और गरीबों के प्रति कृपा और सहानुभूति मन जाता है। यही प्रथमम्ब की सफलता है। यही उद्देश्य की निधि है। यही रम-रंग बीमरग रस-अनुभूति है। यदि हममें कन्धारमक बोध (जो ऊपर बताया गए है) न आ तो 'प्रेमप्रथम प्रेमचन्द की गोशाल की टक्कर की रचना बन जाती।

### निर्मला (सन् १९२३ ई०)

'निर्मला' प्रेमचन्द का एक छोटा—उनके सब उपन्यासों में छोटा—सामाजिक उपन्यास है। इसमें युवा समस्या है अनेक विवाह और उससे लगे हुए दुष्परिणाम इसमें मारी-जीवन की कठनायक कहानी है। यह रचना कवचरस प्रदान है। प्रेम चन्दजी ने हमारी वैवाहिक पद्धति के बाया को अपनी रचनाओं में खूब प्रकट किया है। विवाह हमारे यहाँ एक इकोनमा बन गया है। समा की बैलियों से सौते तम भिन्ने जाते हैं। सड़के-सड़की के स्वभाव आदिति प्रकृति बय आदि का कोई मिमाण बहरी नहीं है। समाज में बहने की प्रथा से अन्तर्ग हा रहा है। इसी के कारण एक पत्रह वर्षीया कलियत्र—निर्मला—का विवाह उसकी विधवा माता को एक ४ से भी अधिक बय के कुत्तप लोम्ब, बुहाकु किन्तु सम्पन्न बकीस लाला दोतायम से करना पड़ता है। इस सामाजिक समस्या के कारण पारिवारिक जीवन की अनक विषमताएँ उत्पन्न होती हैं। तोताराम के तीन बच्चों की विमाता के रूप में निर्मला को बच्चों से पूरा स्नेह होने पर भी नाशिल किया जाता है। उस युवा जनव की कोप-रहि और ईर्ष्या का निकार बनना पड़ता है। युवा पति के छाय और विषम परिस्थितियों से भर तमाह हो जाता है।

'निर्मला' में माय-समनता पूरा पाई जाती है। कथा-सङ्गटन की दृष्टि से भी यह रचना उत्तम है। कुछ अस्वाभाविक संयोगों और अनमोर्वैवाहिक स्थितियों का कोप अन्तर्मय पाया जाता है। सामाजिक परिवेश भी सीमित है। पर सीमित पारिवारिक-सामाजिक परिवेश में प्रेमचन्द ने संवेदनशीलों की गहराई भरल रा बहुत सफल प्रयास किया है। यही हम रचना की विशेषता है।

### रङ्ग-भूमि (सन् १९२४ ई०)

'रङ्गभूमि' प्रेमचन्द का सबसे बड़ा उपन्यास है। कुछ छोटे इस उपन्यास की

‘लोदान’ से भी ऊँची रचना मानते हैं। परन्तु हम समझते हैं कि ‘रत्नभूमि’ में लोदान जैसा संवेदना की सन्नता नहीं पाई जाती। जगका बड़ा कलश ही उसके भाव को बिखरा रहा है। हाँ जगम सन्तुष्ट नहीं बि प्रेमबन्ध की दृष्टि इस रचना में बहुत व्यापकता मिल रहा है। इस ‘पन्नाम’ में प्रेमबन्ध न पहली बार देवी रिया वनों की बिगड़ी स्थिति राजाभा के अन्धाकार और अन्धकार को प्रमत्त करके इस मोर का ध्यान आकर्षित किया। इसी रियामना में बच्चे किमाना को और भी कुरी बख्शा है। प्रेमबन्ध ने पीड़ित प्रजा के साथ अपनी सभी सहानुभूति दिखाई है।

‘रत्नभूमि’ में भी पहली बार प्रेमबन्ध न पूँजीवाद के अगमन और पूँजीवादी पद्धति के दोषों का प्रकाश किया है। यह पूँजीवादी पद्धति सामन्तवाद या अमीनारी पद्धति से भी अधिक हानिकारक और खतरनाक है। सामन्तवाद ने दयनीय अवस्था ही बनाई थी पर यह पूँजीवाद तो अस्तित्व के लिए ही खतरा बनकर आया है। गरीबों की आर्थार्थी को उखाड़ कर यह कल-कारखान बना रहा है। गाँवों का सरस निष्कपट और उस नैतिक जीवन सब कुछ यह पूँजीवाद उसे कलुषित कर रहा है। पूँजीवादी आनन्दन मूरदास की अमीन बना बाहना है—निषेध का बड़ा कारखाना खोलना चाहता है। मूरदास विरोध करता है। राजा महेंद्रपाल भी अपने स्वार्थ को खानि आनन्दन की नरकवादी करना है और अमीन विमान में उसका सहायक एवं मूरदास का प्रतिद्वन्दी बन जाता है। मूरदास कहता है— सरकार बहुत ग्रीक कहने है मुझसे की रोक बन्द कर जायगी (मिल मगने में) रोजगारी में लोगों को कामना की बुझ होया। संकलन जहाँ यह रोक बंदगी बड़ा ताँ-मराब का भी तो परफार बंद जायमा कमविदा भी ता बाकर बन जायमी परबलीबायमा हमारी यह बर्तियों को पूरेण। बिछता धनरम हागा। बिहात के किमान अपना काम छोड़कर सब दूरी के मानन से ही न यहाँ दूरी-दूरी बात सीखने और दूरी आचरण अपने दाँव में फेंकावेन। देहानों की लम्कियाँ बहुत मकुरी करने जायमी और यहाँ पैस के मोम में अन्त धरम बिगाँगी। यही चीनर महरों में है। यही यहाँ हो जायमी।

सन् १९२४ के इस उपन्यास पर गाँधीबादी प्रभाव सर्वाधिक नजर आता है। मूरदास गाँधीवाद का ही प्रतिरूप है। यह अमीनी जीघोलीकरण और पूँजीवाद का विरोध करता है महरों के कान्ताहममद दूषित बातावरण से धर्मों व मानि-मुन पवित्र बातावरण को उत्तम समझता हुआ ग्राम-मन्दिर की रक्षा करना चाहता है। संघर्ष मोमद मान गाँधीबादी है। मध्य अहिंसा मन्पाह अहमहोय आत्म-त्याग भादि ही उसका साधन है। यह पूरी दृष्टि के साथ संघर्ष करता है। और इस संघर्ष में यद्यपि धमकन रहता है पर हार नहीं मानता। सन् १९२१ के अहमहोय आन्दोलन में भी गाँधीजी की राय को अन्तर्गत धिमान में मने ही अन्तर्गत रहे हों पर

उन्होंने मरप नहीं छोड़ा हतोत्साह नहीं हारा, मर का नहीं हारा। पावर फ़ैल भूमिका में प्रेमचन्द न मुरे के महर्षि को प्रस्तुत किया है। वह अपने महर्षि में हार जाता है पूजाबार की बिजय हानी है। गाँव की घरती पर पूजापति का मित्र स्थापित हो जाता है मजदूरों का अधिक पतन होता है जुआ संगम का हलक मरने लगता है सारा आन्दोलन बिजय हो जाता है। पर बिनाबी मुरा बहता है— तुम बीते में हारा। वह बाजी तुम्हारे हाथ रहे। मुक्त भयते नहीं बना। तुम मी हुए बिनाड़ी न। दम नहीं उच्छ्रिता। बिनाडिया का मिनाकर नेमते हो और तुम्हारा उत्साह भी बूझ है। हमारा दम उच्छ्र जाता है हाँफने लगे हैं और बिनाडिया का मिनाकर नहीं नेमते। आत्म में संग्रहते हैं पानी-गलीच मारनी बरते हैं कोई किसी की नहीं मानता। हम हारे तो क्या जीवन में मान तो नहीं रोम तो नहीं छोड़नी तो नहीं की। फिर खेमे में बरा दम मने हो। हार-हार कर तुम्ही म खनता मीचने और एक-एक दिन हमारी जीन होगी—अवश्य होगी।

विश्राम हुए कमबीर का मरने हुए मजदूरों का विरता हल आत्म-विश्राम है। निधर श्री प्रेमचन्द ने भारतीय राजनीतिक महर्षि को इस रचना-द्वारा आत्मबल प्रदान किया था। जीवन को नेम की दाजी खमल कर नेमता प्रेमचन्द का जीवन दर्शन बन गया था।

प्रेमचन्द ने जिस जहरी मज्जा और बिकासमान पूजाबार की लोकी अपने 'गोदान' में प्रकट की है उसका पूरा रूप और पूर्वाभास हम 'रत्नभूमि' में प्राप्त हो जाता है। 'रत्नभूमि' में भी जहरी मज्जा का बिचार हो रहा है। 'सहर मनीरों के रहने और काम-बिक्रय का स्थान है। उसके बाहर की भूमि उनके मनोरञ्जन और बिमोद की जगह है। उसके मध्यभाग में उनके मजदूरों की पाठशाळाएँ और उनकी मुकदमेबाजी के अखाड़े होते हैं जहाँ न्याय न बहाने गरीबा का गया बोना पाठा है। सहर के आसपास गरीबों की बस्तियाँ हानी हैं। गाँवों की पुरातन पवित्र आत्मनिर्मरता और संस्कृति समाप्त हो रही है। सहर का पूजापति गाँव की जमीन पर अपने कारखाने बना रहा है। गाँव का सामूहिक जीवन बिखर रहा है और किसान मजदूर बनता जा रहा है। पूजापति अत्यधिक मुनाफा कमा रहा है। उसका पादू बल रहा है। उसके पास लक्ष-वर्ष भी है। वह बहता है— हमारी जाति न उधार बना कोमल और उद्योग की उद्यति में है। इस विगरे के कारखाने से बर से-कम एक हजार आशिया के जीवन की समस्या हल हो जायगी और ललों के लिए न उनका बीम टल जायगा। इस पूजापति आत्मसेवक को धन न बड़ा प्रम है।

परन्तु प्रेमचन्द धन के महर्षि को अवश्य प्रकट करने हैं। 'गोदान' में बिना की मित्र बन जाती है। उनके पारिवारिक जीवन में अछाति मिटती है।

प्रेमचन्द ने दिखाया है कि घन ही अनेक कुरान्तों की जड़ बनता है। इसी प्रकार 'रङ्गभूमि' का जानसेबक भी अनुभव करता है कि यह कारखाना एक असाध्य रोम ही लग गया है। इसके कारण पारिवारिक अस्थिति उत्पन्न हुई। सारा कुनबा बिखर गया लकड़ी सोफिया बर से जमी गई मक्का प्रभुसेवक विरोधी हो गया। दाहुर में बहनामी हुई। सहर और चौब में इन कारखाने के बिकट मान्योमन लडा हा गया है। कारोवन और कुसी भी बाय छोडकर अपने घर जाने की छमकी देते रहन है।

देवी रियासतों की कुरी अवस्था को भी प्रेमचन्द ने अच्छी तरह दर्शाया है। नम्रज रेजिडन्ट के सामन राजा की दबा गुमाओ-बैनी है। इनमें कोई दम नहीं रहा। स्वयं राजा अपनी हासत बताता हुआ कहता है—'हमारी दमा साधारण जन राधियों से भी गई-बीनी है। उन्हें तो सफाई देने का जबसर दिया जाता है हमसे कौन सफाई लेता है? हमारे लिए न कोई कानून है न कोई धारा। जो अपराध चाहता बना दिया। जो दण्ड चाहता दे दिया। न कही अपील है न परिवाद।

इन राजाओं और रियासती कर्मचारियों का एक और बिल काम्तिकारी बीरपानसिंह प्रस्तुत करता है—'वे सोय (राज्य-कर्मचारी) प्रजा को दानो हाथों सूट रहे हैं। इनमें न दमा है न धर्म 'चोरी कीजिए डाके डालिए, पटों में आप लगाइव कोई आपसे न बोझया। बस कर्मचारियों की मुट्टी गरम करते रहिये। दिनबट्टाके फूल कीजिए, पर पुमिस का पूरा कर दीजिए, आप बैदाय छूट जायेंगे। आपके घरम कोई बैकसूर फासी पर लटका दिया जायगा'—'यह ममज सीजिए कि हिमज वस्तुजो का एक गोव है। सबके सब मिलकर बिकार करते हैं और मिल जुम कर करते हैं। राजा है वह काज का तस्कर'—'या तो बिभावन की संर करेया या बही बैवेजों के माथ बिकार सगया सारे दिन उन्ही की पूतियां मीठी करेया। इनके सिवा उस कोई काम नहीं। प्रजा बिये या मरे, उसकी बला से।

प्रेमचन्द की 'रङ्गभूमि' की एक बड़ी विशेषता इन बात में है कि यही रचना राजनैतिक मर्षों के लिए सर्वाधिक प्रेरक सिद्ध हुई। जन-साधारण में अनन्तोप और बिनेह की भावना जगान का सर्वाधिक उपक्रम इसी रचना में पाया जाना है। मूरा विनम प्रभुसेवक माफिया भावि कितने ही कर्मवीर जनता को जाग्रत करने हैं। अजाय का डट कर मुकाबिला करने की हिम्मत रखते हैं। पशुबन के सामन वारम बम प्रक्षालित करने हैं। प्रभुसेवक रिश्वतखोर कर्मचारियों जासिम जमींदारों म्बार्थी अधिकारियों पर गर्दैव ताक सगाये रहने' सगने हैं। 'उमका बिकार या कि मजा में अनन्तोप पैदा करया भी सबकों और केनाओं का कर्त्तव्य है।'

'रङ्गभूमि' के अन्त में डा० मौमुनी स्पष्ट शब्दों में अंतिम दबर्नर से कहने हैं—  
"बाद लेने बिम ने यह विश्वास उठ गया जो यह बासीम बपों से जमा हुआ या कि



गर्भमण्डल हमारे ऊपर स्थापित न हो प्राप्त करता जाही है। ... अतः हम सब दिव्या देवता है कि कवन हमको पीकार नैत भिक्तान के लिए, हमारा अन्तिम मित्र के लिए हमारी सम्पत्ति और हमारे अनुप्राप्त की हत्या करने के लिए, हमको अन्तकाल तक अपनी वादी बनाये रखने के लिए हमारे ऊपर राज्य किया जा रहा है।

प्रमचन्द हम के खों का हर स्थान पर सज्जा-पो करते हैं। 'रङ्गभूमि' में मोक्षिया और प्रभुनेश्वर दोनों छामिऊ पाण्डु की छिड़ी डाले हैं। उनके माता-पिता का धर्म ब्रह्मगमा है बादा का छामिऊ रूप बारा पाण्डु है। पिता जान्नेवक सातवें दिन गिरजा आते हैं पर वहाँ भी धन के देवता की मूर्ति का ही आग करत हैं। बादा ईश्वरनेश्वर ईश्वरमणि का धर्म रखता है पर है परसे दरज का दुष्ट और कबूत।

'रङ्गभूमि' में एक छान्दन बायी धान यह है कि प्रमचन्द ने प्राय सभी नियम के सम्बन्धी पाना में बिरोध प्रस्तुत किया है। कहीं पत्नी पति के मित्र है जैसे राजा महेंद्रव मारंगिह अमल पदा है तो उनकी पत्नी इन्डु उनके सर्वथा बिगड़ मल पदा की है यही बात भरों और उनकी पत्नी सुभाषी के बारे में कही जा सकती है कही माँ-बाप के बिरोधी बड़ा-बेटी दिखाये गए हैं जैसे छामिऊ और प्रभुनेश्वर बाले माता पिता की बिचारणारा और बायों के सर्वथा बिगड़ है—माँ-बाप अमल पदा के है तो धना-धेनी मल पदा के। महेंद्रकुमारमिह के बिगड़ उनका माता बिगव है। है। इसमें मन्नेह नहीं कि ऐन उदाहरण जीवन में पर्याप्त मित्र है पर एक उपन्यास में ऐसे अनक उद्घ प्रस्तुत करना कुछ अस्वाभाविक-ता प्रतीत होता लगता है। चरित्र-चित्रण में कुछ अन्य लक्ष्यों की पाई जाती हैं। जय प्रमचन्दकी अपा आदतों और सिद्धांतों के मोड़ में चरित्र को इनका अनिर्दिष्टता लग दे दते हैं जो अमनो-बैधानिक-सा बन जाता है। रानी जाङ्गली आदर्श माता है सम्बेह नहीं पर उनका आदर्श यही तक चला जाता है कि अपने पुत्र की मृत्यु के पश्चात् 'उनका सन्तुष्टाह बुलता हो गया। वह पहल से कभी 'माता' नियामीन हा गई। उनके रोम रोम में अमाधारण स्फूर्ति का बिचाम हुआ। यत्र स्थिति उमक मानस की हत्या हो कर होती है। इसी प्रकार मोक्षिया की माता का कामा रूप अनिर्दिष्ट है जो एक माता के लिए स्वाभाविक नहीं लगता।

कुमरी कमजोरी है बिस्तर। जैसे कि पहल कहा जा चुका है हम बिस्तर के कारण प्रभाव बिखर गया है सपना प्रभाव नहीं उन्मत्त हो गया। य तो के पूरबी बाद के बिनीने रूप को अच्छी तरह प्रस्तुत कर गये और न ही बेगी रिपाणतों को आत्मरिक्त बना और राजा-प्रजा के आपक-मोषिन रूप का भासिक बिचल कर गये।

पू. जीवादी पद्धति का जैसा यांत्रिक विवरण 'योगान' में है और रियासतों को आन्तरिक परिस्थिति और राजा प्रजा के सम्बन्ध का जैसा सूक्ष्म विवरण 'कामाकरूप' में है वह 'रङ्गभूमि' में नहीं प्रकट हो सता। यद्यपि यह है कि जैनास के कारण प्रत्यक्ष व्यापकत्व का पूरी तरह नहीं रंग सके। यही कारण है कि न ता पू. जीवादी के प्रति पूरी तरह कृपा आगुन होनी है और न ही यांत्रिकता भावि का समिधान इतना कठोरानुसृत बन पाया है। फिर भी 'रङ्गभूमि' में जीवम्य रस और कदम रस का पर्याप्त प्रसार पाया जाता है।

### कामाकरूप ( सन् १६२८ )

कथा-प्रबन्ध की दृष्टि से 'कामाकरूप' प्रमथन् की की सर्वाधिक विविध और जटिल रचना है। 'रङ्गभूमि' में ता फिर भी मुहम्मद के मनुष्य की आधिकारिक कथा निम्न ही बचपि विनय और मोक्ष की प्रायश्चित्त कथा भी पर्याप्त विस्तृत की पर 'कामाकरूप' में केन्द्रीय कथा सर्वथा अनिर्दिष्ट है। रानी देवप्रिया के जन्मप्रसन्नान्तर और कामाकरूप में उसे जन्म भी बना लिया है। फिर भी प्रमथन् में इस रचना में जीवन के उद्देश्यों को स्पष्ट और निर्दिष्ट रखा है। इनमें प्रमथन् मुख्य रूप से वह सिद्ध करता चाहते हैं कि सभी मानसिक भावों में है कामना में नहीं। कामना सदा अनृत और बेचैन रहती है। रानी देवप्रिया के जीवन में यही निष्ठ होता है। उसे माता मुम-मुम की कामना-पियाया है। वह अनृति की शक्ति में जानी रहती है। प्रमथन् के रूप में वह पाङ्कज के पानी है। पर जैसे ही जलो कामना के आसक्त में आवस्य होते हैं पाङ्कज की जीवन-नीला समस्त होने लगती है। वह कहता है— 'श्रीमं फिर मिले। यह नीला ( कामना मृत करने के लिए बार-बार जन्म लेते और मितन की नीला ) उस दिन समाप्त होगा जब प्रमथन् कामना न रहेगी।' वह देवप्रिया को विनोद और विमाम का ही सब कुछ मानती की अनृत कामना को वृत्ति देने के लिए मोक्ष विमर्शमिह और पाङ्कज रूप में कई पत्तियों को नए-नए जन्मों में पानी है और भूरी रहती है, यही इस कथा का सच हो जाती है और उपस्थिती बन जाती है। उसकी मोह-संग्रह लग्न हो जाती है। वह जीवन-मुक्त हो जाती है। मृत्पात्रों और कामनाओं में वृत्ति ही ना जीवन-मुक्ति है यही तो कथा कामाकरूप है।

इस विनाश-वाधता का कारण है धन-मत्पत्ति। धन-मत्पत्ति से ही विनाश कामना मुझती है। प्रमथन् ने इस सम्बन्ध में जैसी राश्यों की 'काव्य-कोटि' का चित्त प्रस्तुत किया है। 'रङ्गभूमि' में प्रमथन् में राजाओं के विनाशपूर्ण जीवन का उल्लेख-भाव दिया था यहाँ 'कामाकरूप' में उनकी विनाशिता का मन्त्र चित्त प्रस्तुत किया है। रानी देवप्रिया के लिए रियासत मोक्ष-विनाश का माधन माध है। अपने वैवाहिक विनाश के लिए उन्हें जितने अपने पाहिये विनाश के मैदान का कत्त व्य

है कि तुरन्त जुटाय—चाहे जहाँ से—खोरी करे सबका प्रजा का गया काट कर दे। राती को ज्यसे कोई मतमव नहीं। जनता पर क्या बीगती है, इस जानने की उसे अवसर ही नहीं। इसी प्रमथ में प्रमथम्बजी ने जनता के निम्न जीवन की कथा कहानी प्रमथ की है। जिसकी धोर विषयता है—एक ओर विनाश का मल भुन हो रहा है दूसरी ओर किमान मजदूर भूने मर रहे हैं। इनके धम का राजा-मामल गुलछरें उड़ाते हैं उन्हें एक जुन भी पैर भरने को जीवन नहीं मिलता उन डरने को क्या नहीं प्राप्त होता।

प्रमथम्बजी ने अपने और सम्पत्ति के अनर्थ का गबन प्रकट किया है। 'बाब-कल्प' में स्पष्ट दिखाया है कि यह धन-सम्पत्ति और अधिकार या वैभव जिस प्रकार मनुष्य को बहल देता है। उनका नतिक पतन हो जाता है। साम्राज्यार पाते हैं पूर्व राजा विजयसिंह अत्यन्त उदार विचारों के सम्बन्ध और जनवादी व्यक्ति थे। परन्तु गद्दी पर बैठने के पश्चात् वह गिरमिट की तरह रग बरस जाते हैं। वही जनता से उत्सव का मजदुरा बभून दिया जाता है बेगार भी जानी है। पक्षधर स्पष्ट कथों में कहता है— राजा ताड़व की बात से योगा को केवी-कैवी आचार्य की सकल कमी गद्दी पर बैठे छ महीने भी नहीं हुए और उन्होंने भी बड़ी पुण्य बड़क अक्रियार कर दिया। प्रजा से कर्जों के ओर से अपने बसून किये जा रहे हैं और कोई परिचाय नहीं मुनता।

और जब विरोध बढ़ता है तो वह शोषक बीबरा उड़ता है— 'प्रजा मेरे पैरों की धून है। मुझे अधिकार है कि उसके साथ जैसा उचित समझूँ वैसा समुक्त करूँ। किसी को हमारे और हमारी प्रजा के बीच में बोझने का हक नहीं। इस पर चरघर उस फरफाटा हुआ बढ़ता है— 'आपको अपने मुह से ये छन्द निकालने हुए धर्म आनी चाहिए की। अगर संपत्ति से इतना पतन हो सकता है तो मैं कहूँगा कि इससे बुरी बीज संसार में कोई नहीं। आपके भाव कितने पवित्र थे आप कहेंगे मैं प्रजा को अपने पाम बेरोकटोक दाने दूँगा। मेरे कर्मचारी उनकी ओर टेढ़ी निपाह में भी देखते तो उनकी लायत जा जायगी। वे सारी जाने क्या आपने भूल गई ? और इतनी जल्दी ?

यही नहीं सम्पत्ति या अधिकार का लमा इस चरघर पर भी बढ़ता है जो इतना आदर्श पैना बना हुआ है। रियासत से सम्बन्ध हो जाने पर उसकी मनोवृत्ति भी बदलन लगती है। यही चरघर जो बेगार और शोषण के विरुद्ध लड़कर जेल जाना है बड़ी अब बेगार में मिलने पर रुक हो जाता है। अब उसकी मोर्द उभर जाती है और वह उसे डेन कर से अपने के लिए किसानों को आश्रय देता है तो उसकी जबरनगी का विरोध करने वाले एक किसान पर वह आयाचार कर डेटा है।

प्रमत्त की रचना है और उसका हाथ तोड़ डालना है। उसके इस आचरण का देखकर उस पर अज्ञा रखने वाला अज्ञानिह आश्चर्य भक्ति होकर बह उठता है—'यह तुम कैसे बदल पड़े ? अगर बाँझों में न देखा होता तो मुझे कभी विश्वास न आता। अगर तुम्हें कोई बोझ या आवश्याद भिन्न पड़े।

प्रमत्त अचर अनुभव करता है कि रियासत की बू किनी मुम और अनिष्ट रूप से उसमें समा रही है। 'जीवन में यह पहना ही अचर का कि उन्होंने एक निराल प्राणी पर हाथ उठाया था' जाहू मुम पर भी प्रमत्त का जाहू बन गया। अब मुम अनुभव हो गया कि इस आलावरण (रियासत के सामन्तीय विनाशपूर्ण) में रहकर मेरे लिए अपनी मनोवृत्तियों को स्थिर रखना असंभव है। और एक रात वह गुपचाप राजा विनाशमिह के महम को त्याग दंड है।

प्रमत्त ने इस पद्धति को ही बोधी माना है। प्रेमार्थ 'रज्जुभूमि' तथा 'आशास्य आदि सब रचनाओं में उन्होंने व्यक्तियों को बोधी ठहरान की बजाय सामन्तीय और अनीशारी पद्धति को ही बोधी ठहराया है। राजा विनाशमिह के प्रकट में भी वही बात प्रकट की गई है। राजा साहब बुने नहीं थे परिस्थितियाँ उन्हें बिचल करती हैं। वह कहते हैं—'ईश्वर आमत है मेरे मन में प्रमाहित के कस-कस होसल में। मैं अपनी रियासत में रामराज्य का मुम माना चाहता था पर दुर्भाग्य से परिस्थिति कुछ ऐसी होनी जाती है कि मुझे वे सभी काम करने पड़ते हैं जिनसे मुझे गुना की। न जाने वह क्यों-नी शक्ति है जो मुझ अपनी आत्मा के विरुद्ध आचरण करने के लिए मजबूर कर देती है। वह शक्ति कोई अनीकिक नहीं है, यही पद्धति है। राजा साहब कहते हैं कि 'मैं हिमक अनुजों से विचल हुआ हूँ। प्रमत्त न क्या रासकममाग्न और क्या रामसाहब अमर्यापतिह सबके मुख में यही कहलवाया है कि वह सारी पद्धति ही रूपित है।

पर विचल बात यह है कि अब प्रमत्त के सामने समस्या के हल का प्रश्न आता है तो वह आन्वीषारी प्रभाव से अर्थ-समन्वय पर विश्वास जताने लगते हैं। उनके विरुद्ध मूरखान अचर अमरकाय आदि सब नेता अर्थ-समन्वय के हामी हैं। अचर रास मन्त्रों में कहला है—'मैंने प्रजा को उनक अधिकार सबस्य समझाया है। लेकिन यह कभी नहीं कहा कि राजा को समार में रहने का कोई हक नहीं'। किन्तु प्रेमचन्द जाहू या हल जाहू उनकी रचनाओं ही विज्ञान-विज्ञान कर कह रही है कि इस पद्धति के आधुन परिवर्तन के बिना स्थिति सुधर नहीं सकती। जब रोग जड़ से ऊपर तक है तो किसी प्रकार के बीज-बजाव या समानि हृदय-परिवर्तन से काम नहीं चलता। सब कुछ बदलना होता। हम भी समझनाय मुम के इस मत से सहमत हैं कि एक सेतल सजाय रूप से अपनी रचना में जो उद्देश्य रखता है, यह

आवश्यक नहीं कि उसकी रचना स बही इतनी हो। सद्धान् जग स प्रेमचन्द सर्व समन्वय और समझोते-हृदय-परिचर्चन को—गांधीवादी दृष्टिकोण को अपनाकर बने हैं। पर उनकी रचनाओं में वांछित ही स्पष्ट च्यवि प्रकट होती है।

'दायादरूप में प्रमचन्द्र ने हिन्दू मुसलम धार्मिक साम्प्रदायिकता और अगड़ों का भी गजीब बिलब किया है। 'बाया-चन्द्र' की रचना के समय देश में साम्प्रदायिक दृष्टों का जोर था। हिन्दू मुसलमानों में आये दिन झगड़ा होता था। इस कलह का राजनीतिक प्रश्न एक बिन्दु समस्या बन गया था। सारा देश साम्प्रदायिकता की जगि में झुमर रहा था। स्वराज्य और समाज-सुधार की बातें पीछे पड गई थी। धर्मान्धता की खाड़ी में अन्धे-अन्धों की खाँचों में भूल भटक रही थी। 'जरा-जरा-भी बात पर दोनों दलों के छिर-फिरे जमा हो जाते और वो चारके अङ्ग पङ्ग हो जाते। कभी बलिये में कब्डी मार ली और मुसलमानों ने उसकी दुकान पर घावा कर दिया। कभी किसी जुगाहे ने किसी हिन्दू का बच्चा छू लिया और मुहल्ले में खौजखारी हो गई। एक मृत्पत्र में मोहन ने खीम का कनकौवा छूट लिया और इसी बात पर मुहल्ले के हिन्दुओं का चर नुन गये। हमारे मुहल्ले में वो कुत्तों की मड़ाई पर सँकड़ों आबमी घायल हुए क्योंकि एक मोहन का कुत्ता था दूसरा मईब का। निज के सड़े झगड़े साम्प्रदायिक संघाम के खेल में जीब जाये जाते थे। दोनों ही बल पजहल के मये में भूर थे। मुबल्ल वो ख्याला साहब हाकिम निमा को सत्याम करने जाते गाम को बाबू यमोबानन्दन। दोनों अपनी राज भक्ति का राम बनापते।

प्रेमचन्द्र ने साम्प्रदायिकता के इन भूत की भी कुछ खबर ली है। धर्म के पाबण्ड की भी चिन्सी सड़ाई है। प्रमचन्द्र इस सारी स्थिति के लिए भी व्यक्तियों को जिम्मेदार न ठहराकर धर्म के नशे और सासन को बोपी ठहराते हैं। बाबू यमोबानन्दन और ख्याला महमूद दोनों अपने कामेज-जीवन में सदार बिचारों के चलबाही छल-जेता थे। पर अब पजहल क्यों के बाद साम्प्रदायिकता की हवा में बहकर दोनों साम्प्रदायिक नेता बन जाते हैं एक-दूसरे के लाल बमकर आमने-सामने खड़े हो जाते हैं। दोनों अपने-अपने क्यों को मजकाले हैं। सारे दले दिखाव के बाद ख्याला महमूद कहते हैं—'सदा बचाहू है मीने हमेजा इतहास की कोलिम की। अब भी मेरा यह ईमान है कि इतहास ही ने हम बहनसीब कीम की गजात होपी। यमोबा भी इतहास का छतना ही हापी था जितना मैं जायद मुज में भी गया। लेकिन फुदा जान यह कील-सी ताकत थी जो हम दोनों को बरसरे-जङ्ग रखती थी। हम दोनों बिस से येम करना चाहते थे पर हमारी मर्फी के बिमाफ कोई दबी ताकत हमको सड़ाती रहती थी। निश्चय ही यह गीबी ताकत 'धर्म' या गजा और

बङ्गरेजी साहब का जो हिन्दू युगलमार्गों को पगलकर ही अपने राग्य की नींव रख करता चाहता था। धर्म का पट्टा भी बहुत कड़ा था।

कायाकल्प में जन्म जन्मान्तरबाध और अलौकिक चमत्कार सभी वैज्ञानिक दृष्टि से सम्बन्धित ही हैं। यदि रानी देवप्रिया और उसके पतियों के बिना मिश्र जगमों की बात एक बपक माम की जाय तो प्रेमचन्द की यह रचना भी अत्यन्त मफ़फ़ सिद्ध होती है। यदि कथा के चमत्कारों जगमों का बपक माम मान लिया जाय तो कथा-सङ्कलन में निर्विषयता होती हुए भी कथा में रोचकता मरुतु है। इस रोचकता का सबसे बड़ा कारण है रस-परिणाद। बीमल शङ्कर और कल्प रम्य की सुन्दर मिलेबी इस रचना की बड़ी शक्ति है।

गवम ( सन् १९३० ई० )

गवम में प्रेमचन्द ने मध्यमवर्ग वर्ग के पचास जीवन और मनुष्यवृत्तियों का चित्रण किया है। प्रेमचन्द ने पहली बार गवम में इन वर्ग की समस्याओं को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। इस वर्ग की सामाजिक आय कम है पर अपनी झूठी शान रखने के लिये इस वर्ग के साथ अपनी हैभियन से बहुत अधिक खर्च करते हैं और आय तथा व्यय के असंतुलन को बेईमानी रिश्तों से पूरा करना चाहते हैं। मुन्गी दीनदयाल अपनी बड़की बालिका की भारी महासम बबानाथ के पुत्र गमानाथ से करते हैं। बागदबाव दिन खोसकर खर्च करते हैं क्योंकि उसका बेटा बाड़े केवल पाँच रुपये का पर ऊपर की बामरनी का कोई हिसाब नहीं था। दूसरी ओर गमानाथ सुन्दर मजीमा बवानाथ है। उसके पिता महासम बवानाथ बड़े ईमानदार बामरी हैं। उन्होंने कभी एक पता भी रिश्तों का नहीं लिया। वह ऐसी पाप की कमाई से गुला करते हैं। पर बड़का बई रोसनी का फैयनेबुल मुक है। वह मजी बेकार है पर बार-गोस्तो में बैठने-उठने के कारण उसकी छाने-उड़ाने की इच्छा प्रबल हो चुकी है। वह बारी में बूब खर्च करा देता है। बवानाथ भी उसकी तथा अपनी पत्नी की बातों में आकर हैसियत से बहुत बड़-बड़कर खर्च कर देते हैं। मरुत से उधार गहने या बाने हैं। दिलाने के लिए और भी कई तरह का खर्च बूब बड़-बड़कर किया जाता है। यही खर्च उनके लिए समस्या बन जाता है।

गमानाथ अपनी पत्नी बामपा से घर की रिचति छिया कर रखता है। वह उसका बहुत भीर उड़ाता है—बहुत धन है जायदाद है बैंकों में धरया पडा है। वह अपनी पत्नी का गुल रखने के लिए उसकी परमाइमें पूरा करता चाहता है। मरुत के लकाव होने से उसे अपनी पत्नी के बबर बुरान पड़ते हैं। स्वयं बेबर बुरा कर बाप-बेटा उड़ाते यह है कि बेबर ओर बुरा न गये। इस वर्ग के कृतिम जीवन

की बहुत मुन्बर झाँकी प्रेमचन्द स प्रस्तुत की है। इस उपग्राम की मुख्य समस्या मारी का आभूषण-प्रेम नहीं है जैसा कि कुछ आलोचन कहा करते हैं। आभूषण प्रेम तो गौण बात है। जामपा के मन में चण्डहार की सामया बचपन स भी और हममें संदेह नहीं कि उसके बेबर बसे जाने पर वह निर्जीव-सी उशाम रहने लगी थी और जब रमानाब फिर सराफे से उसके लिये बाज़न और हार उधार लाता है तभी वह प्रसन्न होती है। परन्तु इस सारी परिस्थिति के पीछे पति द्वारा वास्तविकता से दुराव है। यदि उसे मान्य हो जाता कि जबर उधार में आए हैं और घर की वास्तविक स्थिति वह नहीं जो रमानाब देखी में बतावा करता था तो वह कभी बचपों के लिए साग्रह न करनी।

रमानाब स्वयं अपने काम में फँसता है। अपने जीवन को वह विरता और स्वरूपूर्ण और कृत्रिम बना लेता है। वह अपनी गान रखने के लिए फँसल करता है। अपनी पत्नी को फँसल में रखता है। अपनी पत्नी को अपना बहन अधिक बताता है। रिश्तत भूष उड़ाता है। रतन के सामने अपनी झूठी गान बताता है। हेरा-केरी से अपनी बात रखना चाहता है। रतन ने कयन बचपन के लिए जो रुपये दिये थे उन्हें सराफे से लेकर अपनी साध रखना चाहता है। रतन को झूठ बोल-बोल कर टालता जाता है। पर जब रतन की छाछ बड़ जाती है वह कडा तकावा करती है तो वह चुकरी के रूपों से रतन को बे देता है और मरकारी बहन के मन स प्राण जाता है।

प्रेमचन्द ने मध्यमार्ग के जोखम जीवन की सजीव झाँकी प्रस्तुत की है। इस आध्वर्यपूर्ण कृत्रिम और दिखावटी जीवन का निपटारे के लिए इस वर्ग के लोगों को कितने स्वाँग रखने पड़ते हैं। किन्ती भी प्रकार का पाप-बन्ध स कर सकते हैं बसों कि वह छिपा रहे। बोरी रिश्ततबोरी झूठ करेब हेरा-केरी गबन सब-कुछ सम्भव है। बचपि रमानाब की समस्या व्यक्ति की समस्या है पर यह समूचे मध्यम पर भी लागू होती है। प्रेमचन्द न उपरुक्त मुख्य समस्या के अतिरिक्त विविध पुलिस-पद्धति के हथकण्डों का इस रचना में कुप्य परीक्षा किया है। पुलिस किस प्रकार झूठ बहाव बनाती है- निर्दोष बिलेस जावि को फँसाली है। गवाही को प्रलोभन देकर, उनका नैतिक पतन करके अपने काम में फँसाया जाता है। रिश्तत का बाजार गरम है। मन्दापहियों और देशभक्तों को कुचसा जाता है। वैनीबीन छटीक के बचन से देहदेसी आन्दोलन में पुलिस की लाठिया का लिकार हुए थे। प्रेमचन्दजी ने इस रचना में भी अनमेस विवाह का एक कथ प्ररिणाम प्रस्तुत किया है। रतन लक्ष्मिबती एक सम्भव रूप बनील की पत्नी है। यद्यपि वह अपनी पति से सम्पुष्ट है और उसकी अदृष्ट सामया घाने-घरने से बची रहती है पर प्रेमचन्द ने दो कर्णों में उसकी कथ

स्थिति में न्य भर है। पहली स्थिति है उसके अभावग्रस्त मानुष्य पर कीर्तन। दूसरी है बृद्ध और रोमी पनि की जीव्य मृष्यु और उसका परिणाम।

यहाँ प्रेमचन्द ने हिन्दू विधवा रत्न की अमहाय दशा दर्शा कर समाज को बिचारने के लिए बाध्य कर दिया है। पति की मृष्यु के बाद उसके अधिकार छिन जात है। उसका घनीबाड़ी छत्र-कपट से गरी मर्यादा हड़प कर जाता है और वह एकलव्य बन जाता है। यह इस समय वैवाहिक पद्धति का दुष्परिणाम जब हमारे समाज में गरीबी की घनीबाड़ी दशा का करमाधुन्य चित है।

गहन में श्री प्रेमचन्द ने पुनर्जन्म यन्त्रार्थ का धारण करके आत्म में परिवर्तन की है। अन्त तक पहुँचते-पहुँचते सब पाप आधर्मवादी बन जात है। रमानाथ अपनी पत्नी आनपा के प्रभाव से बहल जाता है। वह अपना ब्याज बस देता है और विधोप अधिभुक्तों को छटा सेठा है। वह पुनर्जन्म के प्रलोभन का ठुकरा देता है। यहाँ तक कि जोहरा बेक्या भी बन जातो है। वह अपनी बेक्यावृत्ति छोड़कर सेवा और त्याग का जीवन बिताते समर्पित है। प्रेमचन्द ने रत्न जोहरा रमानाथ आनपा देवीदीन आदि सब पात्रों को अन्त में सेवा और त्याग का आत्म जीवन बिताते दिखाया है। ये सब अपना एक आदम मंवार बनाने हैं जहाँ छत्र-कपट अस्तर अन्त्याप वादि के स्वान पर सेवा सत्य अहिंसा और प्रेम का राज्य है। किन्तु 'यवन' में यह आदम परिवर्तन किसी प्रकार की अन्त्यापविक्रम या अमरुति प्रणीत नहीं होनी। वास्तव में प्रेमचन्द ही मगर के प्रपञ्चात्मक जीवन से ऊब कर अपने प्रिय धाम-जीवन के सरल आतिथ्य वातावरण में आने प्रणीत होते हैं।

कथा-मद्गल की हृदि में श्री गहन प्रेमचन्द की सफल कृति है। इसमें कथावस्तु विस्तार या भरती के प्रसंगों का कोई दोष नहीं है। चरित्र-चित्रण भी बहुत मजबूत है। आनपा और रमानाथ के अनिर्गल देवीदीन के चरित्र चित्रण में प्रेमचन्द ने बहुत काम किया है। जोहरा के चरित्र-परिचयन में वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि और चरित्र प्रकाशना का अच्छा रहता। उसकी बात में हल्का तो बहुत अन्त्यापविक्रम है। कुछ भिन्नकर कहा जा सकता है कि 'यवन' कथा की हृदि में प्रेमचन्द की पर्याप्त मजबूत रचना है।

प्रेमचन्द ने अर्थ के अभाव को अपने सब उपन्यासों में चिन्ती-मन्त्रिणी तरह मजबूत प्रस्तुत किया है। पूँजी को वह सब बुराईया की जड़ मान रहे हैं। आज की पूँजीवादी व्यवस्था में धन ही धर्म बना हुआ है। इस पूँजीवादी संस्कृति में वास्तविक धर्म भुग हा गया है टका-धर्म ही बायू है। धर्म के इकोमने को प्रेमचन्द यहाँ यही धर्म पट्टाकारते रहें हैं। देवीदीन एवं पूँजीवादी धर्म वास्तविक के बाद धर्म की नील कोमला बना रहता है— उस दानी रहता चाहिए, महापापी! दया तो



उगके पास से होकर ही नहीं निकली। उसी जून की मिन है। मजदूरों के घर जितनी निर्धनता उस मिन में होती है और कही नहीं होती। आरमियों को हथों से गिरवाता है। हथों से। चरबी-मिठा भी बेचकर उमने माखों कमा लिये। कोई मोटर एक मिनट की भी बैर करने तो तुरन्त तमन काट जाता है। अगर छान में से पार हुआ जान न करवे तो पाप का धन पचने कैसे ?

'गहन' में प्रेमचन्द ने नेताओं की भी खबर भी है। आज जबकि राजनैतिक अज्ञाकार हमारी एक प्रमुख समस्या बन गया है और नेता नामों के स्वार्थों के कारण हमारे स्वराज्य की मुख-कल्पना बुरी मिट हो रही है तो हमें प्रेमचन्द का सन् १९३० का यह कथन कितना सत्य प्रतीत होता है। देखी-देखी कहता है— इन बड़े बड़े आरमियों के किये कुछ न हुआ। इन्हे कम रोना जाता है। बड़े-बड़े देश-सत्तों को बिना बिनायती सराब क बैन नहीं जाता। उनके घर में जाकर देखो तो एक भी देशी चीज न मिलेगी। दिखान को हम-बीस कुरते गाड़ के बनवा लिये। घर का भी सब सामान बिलायती है। बिनायती सराब उठाओ बिनायती मोटरों से। जो बिनायती मुरम्ब और अपार बड़ो बिनायती बर्तनों में बानो बिनायती रवानिया पीओ पर देश के नाम को रोये बानो। एक बार यहाँ एक बड़ा घरी जमना हुआ। एक साहब बहादुर बड़े होकर बूब उछल-पूरे। जब बड़ नीचे जान तब मैंने उनसे पूछा साहब सब बानो जब तुम सुराब का नाम मेंते हो तब कौन सा रूप तुम्हारी आँखा के सामन जाता है। तुम भी बही तमन सोये तुम भी अचेजों की तरह बैयलों में रह्याये। पहारों की ज्वा बाओये अँधेरी रात बनाम भूमोये इस सुराब में देश का क्या नस्यान होगा ? तुम्हारी और तुम्हारे पार्न-बन्धों की जितनी सब आछम और ठाठ में गुजरे पर देश का तो कोई भना न होया। बस बगने झारुते लगे। तुम दिन में पीब बैर आना चाहत हो और वह भी बड़िया मान। यरीब किमान जो एक जून लबेना भी नहीं मिलता। अभी तुम्हारा राज नहीं है तब तो तुम भोग बिनाम पर इनना मरने हो जब तुम्हारा राज हो बावना तब तो तुम गरीबों को पीमकर पी जावागे।

'जब' के अध्ययन से प्रमाणित हो जाता है कि प्रेमचन्द भूखन सामाजिक उपन्यासकार है। उन्होंने व्यक्ति की समस्याओं को भी सामाजिक समस्याओं के रूप में जपताया है। यद्यपि 'गहन' की गुण्य कथा का सामाजिक परिवेज सीमित है पर प्रेमचन्द प्रासंगिक रूप से समाज की अनेक शीकियाँ प्रस्तुत करने में नहीं बूके हैं।

कर्मसूत्र—( सन् १९३२ ) 'कर्मसूत्र' भीकबा-मङ्गलन की दृष्टि से प्रेमचन्द की निबन्ध रचना है। इसमें सहर की और बाँध की दो जगमग कथाएँ हैं और दोनों का सम्बन्ध-भूख 'गोदान' की कथा की तरह अव्यन्त शीज है। इस उपन्यास में

प्रेमचन्द ने व्यङ्ग्य-समस्या को प्रमुखता दी है। इसके माब ही क्रिया ( ओपिन ) को समस्या बुझो हुई है। मन्दिरों में बेचारे मजूरी-बमारा की छाया भी नहीं प ने दी जाती। उनका सबसे पीछे जलम बैठता भी नागवार मासून देता है। पुत्रारी और बहाबारी माया पीट बेते हैं। उनकी उरस्तिनि धर्मभावों को अनइर हो गयी। कई बारभी बूने मेकर उन गरीबों पर विष पडत है। मना इन्हे बइरर और अपर्म गया हा सपता है ? ये राज सबको छुन है। उनकी छाया प्रयास पर पानी है। डा० मान्ति-कुमारइन मत्तों को छिकारते हैं— 'बाह दे ईश्वरधन्ने' बाह गया कहना है तुम्हारी मक्ति का। जो जिनने बूने मारेमा मयवान् उन पर उनने ही प्रगप्त होमि और तुम ( बमारा से ) तुम्हें इतनी छतर नहीं कि यहाँ से महाबनों के मयवान् रहते हैं तुम्हारे मयवान् कहीं किसी ओपई में पा वे नर होते, कया बरतर ब्यय है। साथ ही स्पष्ट है प्रेमचन्द बच्चों की समस्या को केबन जाधि मेर ( बल मेर ) ही नहीं मानते अपितु सर्व विषमता की इसके मूल में स्वीकार करते हैं।

प्रेमचन्द ने धर्म का सामन्तीम ओपई कर 'वैशामदन' में महन् रामनाथ का चित्रण करके प्रकट किया था। 'कर्मभूमि' में भी महन् आधाराभगिनि मगाधीन बने हुए हैं। प्रेमचन्द ने उनके राजनी म्म का बहुत सुन्दर विषय किया है। अमरचान्त मुखिम म ही महन् महाराज के बजन कर पाना है। सोने की कुर्नी और मधमम क बह पर महन् महागज विराजमान हुने हैं। उनक विलासपूर्ण मण्डार को देखकर अमरकान्त मन में कहता है— 'छाकुरजा क माम पर छर का किनता अव्यय होना है। इस महन् की बमीनगी में भी गरीब किनाता पर अथाबार धारे जाते हैं बबरदस्ती सभान बमम किम जाने हैं। धम का यह रूप भी पूजी और सत्ता के सामन्तीम बोया न बरा है। इनके विरुद्ध जगत का अममोप मइयता है। इन कुश्चमि पण्ड-पुत्राणि और महन्ता की पाम खोयता नुमा छर बछून चौकरी कहना है— 'महाँ के पण्ड-पुत्राणिों के बरिम मुनो ना दानों-मम उँमरी दबानो पर म बहाँ के मासिक है और हम धीतर बरम महीं रय मकते।

प्रेमचन्द के कितने ही आलोचका ने प्रेमचन्द को आत्मचारी मानकर उनके गोपीगानी आदर्शवाद की छिछ्री उड़ाई है। पर हमें तो 'कर्मभूमि' प्रेमचन्द की यथार्थ रचना प्रतीत होनी है। हममें मन्देह नहीं कि 'कर्मभूमि' में समझीरा हृदय परिवर्तन और अहिमा मादि मय तत्त्व गांधीवाणी हैं। किन्तु प्रेमचन्द ने इनका प्रबोध इसीमिण किया है कि देश की तात्कालिक राजनीति का ऐसा ही रूप था। एक बलुवाही मयार के नाते प्रेमचन्द ने जो-कुछ देखा जिन रूप में देखा वही चित्रित कर दिया। गोपीजी क प्रयास में देश-भर की नेतागिरी का यही रूप बना

हुमा बा । जिस नीति ने गांधी-इरविन पकट को जन्म दिया जिस नीति ने भगतसिंह और उनके साथियों को फाँसी दिया जाना व्याप-सङ्कृत माना जिस नीति के कारण स्वामी और बोंमी पू भीपनि और जमींदार भी राष्ट्र धलत बन गए उसी नीति का उच्चारण तो प्रेमचन्द ने अपनी रचना में प्रस्तुत किया है । उनका जाद्वर्न पात्र अमर कामन संघर्ष में पड़ता है जोरित जनता को जगाता है । मङ्गल के अन्धाकारों के विरुद्ध साग सङ्गठित हो जाने हैं । जनता उत्त जिस हो जाती है । स्वामी आत्मानन्द तैयार करते हुए कहते हैं— 'आधो आन हय नय बनकर मङ्गलजी का भजन और ठाकुरदास पिर में और जब ठा वह सगल विन्कुल न छोड़ दें कोई उत्सव न होने दें ।' लोग कर गुजारने को तैयार हो जाते हैं । पर अमरवांस छिर पीट भठा है और इस सत बना को ठण्डा करता हुआ रहता है— 'जिस रास्ते पर तुम जा रह हो वह उबार का रास्ता नहीं है सर्वनाश का रास्ता है ।' निश्चय ही उस दुम का नेता उस समय यही कर रहा था । वह हर स्थान की उस बना को समझाते से धान्य करते में प्रयत्नशील था । बिहोहियों और कामिफारियों को वह आनेय नेकों से देखता था अवांछित प्राची समझता था । अमरकान भी आत्मानन्द के बारे में बड़ी सोचता है । 'उचमुच आत्मानन्द आय मगा रहा है । अगर वह निरपहार हो जाय तो इसाके में आश्रित हो जाय । स्वामी माहसी है यथार्थ बछा है देश का सच्चा सेवक है लेकिन इस वक्त उसका गिरफ्तार हो जाना ही अच्छा । क्या हम समय के कांछी नेताओं और स्वयं महात्मा गांधी की बिहोहियों और माहसी कामिफारियों के प्रति बड़ी अनोकृति नहीं थी ? प्रेमचन्द ने जो देखा वही धिबित कर दिया । उस समय इसी समझौतावादी नीति का बोलबाला था । एक तरह से यह लक्ष्-कुटि पर भी बरी उतर रही थी । बिहोह और मजदूम लालिन ने असेबी आत्मन को हटला असम्भव-सा प्रतीत हो रहा था । इसीसे गांधीजी ने मर्यादाह समझौता और नयं समन्ध का शस्ता अपनाया था । उन्हें असेबी की छति का भय था । यही भय प्रेमचन्द के अमरकान्त को है और इसी भय से वह जनता के आदेश को ठण्डा करता है— अगर धर्म से काम लाये तो सब-कुछ हो जायगा । हुस्नइ मचाओगे तो कुछ न होया । उस्टे और उच्छ प ये । प्रेमचन्द आरम्भ से ही सुमह-लालिन की नीति को अपनाये हुए थे जिस उ होंमि टाक्सगाय से मिया गांधी से मिया । और उसी नीति का जापू वह प्रारम्भ देख रहे थे अतः उसी का निस्तव उन्हुनि अपन उपन्यासों में किया है ।

प्रेमचन्द ने आज भी निराशा की भी आलोचना की है । 'हमने ठानीम को भी एक व्यापार बना लिया है । कच्हरियों में पस का राज है यहाँ उठाये नहीं बटोर नहीं निबय । देश से आये तो बुर्घाना नितामें न करीब छविने तो बुर्घानि

कोई अपराध हो जाय तो जुर्माना। जिआलय क्या है। जुर्मानालय है। यदि ऐसे सिधामनों से ऐसे पर जान देने वाले पैस के लिए गरीबों का सारा घोंटम बांटे ऐसे के लिए जात्या को बेच देने वाले छान निकसते हैं तो आश्चर्य क्या है ?” यह मईसी टापीय गरीबों के लिए तो अमरभय ही है। हममें कितना खर्च करा अपना ही बड़ा जोहड़ा मिलता है। और बानावरण भी इसका तड़क मड़क और फेंकन का है। स्वयं हमारे सम्पापक छहन के कुलाम हैं। ‘सादा जीवन और उच्च विचार’ का सिद्धान्त यहाँ से कौनों दूर है।

‘कर्म-मुक्ति’ में भारतीय मारी के जागरण का आह्वान भी पाया जाता है। सुखदा सक्तीता और नैना बाचन भारत की नारियाँ हैं।

कला की दृष्टि से कला की जिविमता के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने चरित्र-विकास में भी कुछ मूलों की हैं। मुसी और सक्तीता के परिवर्तन में मनोवैज्ञानिक आधार पर्याप्त पुष्ट नहीं है। कुछ अन्य पात्रों का चरित्र चित्रण भी सजीव नहीं बन सका।

इस प्रकार प्रेमचन्द के ‘गोदान’ से पूब के उपन्यासों के उपर्युक्त सतित अध्ययन से उनकी औपन्यासिक चेतना तथा मनोवैज्ञानिक का परिचय हुआ होगा। प्रेमचन्द की सामाजिक चेतना कितनी व्यापक थी यह उनके विभिन्न विभिन्न उपन्यासों में व्याप्त सामाजिक समस्याओं से स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने हमारे जीवन की प्रायः समस्त बुराइयों को अपनी रचनाओं में उबार कर रख दिया। समस्याओं के हम के जो-जो सुझाव या संकेत उन्होंने दिये हैं, उनमें बाहे कोई सहमत न हो—और मैं समझता हूँ कि प्रेमचन्द स्वयं अपने सुझाव और संकेतों से अन्त तक बाँटे-बाँटे सहमत नहीं रहे थे—पर समस्याओं के कारणों की खोज-बीन में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी। एक अनुपासी कलाकार के नाते वह जो कुछ जीवन में अनुभव करते थे उसे अपने उपन्यासों में उतारते गए। ‘गोदान’ में उनकी समाज-चेतना और कला में विकास की एक और महत्वपूर्ण चय की। ‘सेवासदन’ मोड़ का एक पत्रकार था—म केवल प्रेमचन्द के मनोवैज्ञानिक का और औपन्यासिक चेतना का बल्कि समग्र हिन्दी साहित्य का मोड़ का पत्रकार था—प्रभावशाली सुमरा मोड़ का जिसने कृष्ण जीवन और जमींदारी पद्धति का आका प्रस्तुत किया ‘रङ्गभूमि’ सीसरा मोड़ बना जिसने पूर्वीबाद और सामन्तवादी के विरुद्ध सङ्घर्ष की राजनैतिक चेतना उत्पन्न की और ‘गोदान’ चौथा मोड़ है जिसमें हम उनकी कला और सामाजिक चेतना दोनों में विकास की नई दिशा पाते हैं जो न केवल प्रेमचन्द की औपन्यासिक चेतना का मया मोड़ है, अपितु समग्र हिन्दी साहित्य की दिशा-परिवर्तनकारी रचना कही जा सकती है।

## गोदान में नया मोड़—कला का चरमोत्कर्ष

### विद्युत् से बापों का परिहार

‘गोदान’ प्रेमचन्द की अन्तिम पुण रचना है और निर्विवाद-रूप से सर्वश्रेष्ठ है। इसमें प्रेमचन्द की कला अपने चरम बिम्बाग पर है। प्रेमचन्द ने इससे पूर्व अपनी उपन्यासों में कला और चिन्तन-सम्बन्धी को कुछ सोच रह गए थे प्रेमचन्द ने उन बापों का परिहार भी इस रचना में किया है यही नहीं गोदान हिन्दी पाठ्यपुस्तक का एक युग-प्रवर्तनकारी रचना है।

आलोचकों ने प्रेमचन्द की डायरी-रचना पर कई आक्षेप किये हैं। शुक्रजी ने कहा था—‘प्रेमचन्द समाज सुधारक का बहुत बौद्धिक आदमी है। प्रायः सभी समीक्षकों को यह बात मखरी है कि प्रेमचन्द बचपन से धर्म के अनेक उपदेशों को एक विशेष ढंग के कान्तिवाद के अन्तर्गत—‘नयी धारणा, सत्य या सुधार के यूटोपिया’ (utopian) पुनः प्राप्त करने का समझौता-हृदय परिचयन के कर में समाहित करते हैं। फलतः उपन्यास के अन्त में ही कला का अन्तर्गतक पाया गया।

श्री मधुसूदने बाबोयी के निम्न आशय हैं—(१) प्रेमचन्द का कोई स्वतन्त्र स्वानुभूत दर्शन नहीं है। केवल सामयिकता का अवलोकन है। (२) उनके ‘सामयिक सङ्कटन में कल्पना का अभाव है। कल्पना के अभाव के साथ उनमें तीव्र बौद्धिक दृष्टि और उसके फलस्वरूप निमित्त होने वाले व्यथितता जीवन दर्शन का अभाव है। प्रेमचन्दजी किसी सांत्विक निष्कप लेखक नहीं पहुँचे। (३) उनका कहना है कि ‘समय ने प्रेमचन्द का उत्तम साधन बना दिया जिसने प्रेमचन्द ने समय का दिया है। अर्थात् व्यथित-रूप में बाबोयीजी ने कहा है कि प्रेमचन्द की रचनाएँ सामयिक हैं। वे सामयिक जाँची के साथ उलट रूप आ सकते हैं। जाँची में ऊपर उठकर स्वच्छ वातावरण में वे स्थिति का अध्ययन करती कर सकती हैं और वे उनके परिणाम हमें अवगत कर सकते हैं। (४) ‘अन्तर्-बाह्य और बचने का अन्तर्-व्यक्त विस्तार उनमें बहुत अधिक है। इसलिए उनकी कला में स्फुटता आती है। (५) ‘अन्तर्-का निर्माण मूल्य भोगविषयों की पहचान और कला का गीष्म



मिए तैयार हो जाती है और पाठक भी यही चाहता है कि बनता अपना अस्तित्व उस रूप में प्रकट करे, वहाँ प्रेमचन्द अवरकान्त-द्वारा जामित का पाठ पढ़ा कर सारे उल्हाह और जोश को ठण्डा कर देते हैं। यह रस-बोप नहीं तो क्या है? ऐसी स्थितियाँ 'जायाकल्प' और 'रक्तभूमि' में भी एकाधिक स्थानों पर पाई जाती हैं।

'गोदान' में न सुधारवादी दृष्टि है न प्रचारवादी। यहाँ न किसी आश्रम की स्थापना हुई है और न ही किसी गांधीवादी नेता की अवतारणा। यहाँ प्रेमचन्द की दृष्टि यथार्थवादी सत्य से ओतप्रोत है। यहाँ होरी क लाग के सिवा किसी भी तरह की कल्पना नहीं की गई। उसे अपनी जीवन-नीका को स्वयं खेने दिया है। 'गोदान' एक झुक मथार्थवादी कथाकृति है। यहाँ प्रेमचन्द यादीवादी विचारधारा से आगे स्वतन्त्र जीवन-दर्शन प्रस्तुत करते हैं। महला का जीवन-दर्शन उनकी सीध बौद्धिक दृष्टि का परिचायक है जिसके अभाव का आशय आचार्य गन्धुसारे बाबूजी ने बताया था। यह दर्शन केवल गांधीजी-द्वारा सिखाया गया दर्शन नहीं है। चिन्तन और मनन का निजीपन इसमें पाया जाता है। 'गोदान' को सामयिक रचना भी कहाँ नहीं कहा जा सकता। प्रेमचन्द ने उसके सामयिक रूप को युग-युग के मानवीय सत्य का रूप दिया है। यद्यपि सामयिकता का बहुत बड़ा बोध उनकी पूर्व की रचनाओं में भी नहीं है, फिर भी आन्दोलनों का एक जैसा रूप समस्याओं की समान रूप देना नेताजी की एक-जैसा रूप कुछ रचनाओं में ठकुरसता का बोध अवश्य उत्पन्न करता है। 'गोदान' में यह बात नहीं है।

श्री इमाचन्द्र जोशी ने 'गोदान' से बहुत पहले प्रेमचन्द पर 'मनोविज्ञान के कच्चे होने का बोध समया था। यह बात भी कुछ बड़ों तक सत्य है। कई स्थानों पर प्रेमचन्द ने चरित चित्रण-सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक भूल की थी। कई पानों के चरित परिवर्तन में वह पर्याप्त मनोवैज्ञानिक कारण नहीं दिखा सके। जैसे 'कर्मभूमि' के मुसीबकीला खनीस 'गवन' की जोहरा 'सेवानन्द' व कृष्णचन्द्र आदि पात्रों का चरित-परिवर्तन ऐसा ही है। 'निर्मला' में गैंगीजीबाई पहले तो बड़े जोर से कहती हैं कि हम निर्मला से अपने पुत्र का विवाह नहीं करेंगे किन्तु निर्मला की माता का पत पड़ कर वह तुरन्त विधवा के प्रति उदारता दिवान और निर्मला का हाथ लने का आग्रह करने लगती है। यह स्थिति मनोवैज्ञानिक ही है। इन तरह की भूलों पहले उपन्यासों में कई स्थानों पर दिखाई देना है। 'प्रमाथम' में जालमहूर की आत्महत्या तो मनोवैज्ञानिक है ही अन्य पात्रों की इनकी हत्याओं में भी कोई तुर नहीं दिखाई देती। प्रेमचन्द ने कई स्थानों पर अपने आशयों या उद्देश्यों के विरुद्ध पड़ने वाले पात्रों की अस्वाभाविक हत्याएँ करा दी हैं। कहीं-कहीं समस्या को न भुलसता पाकर आत्महत्या करा देने है। 'रक्तभूमि' में चिन्म और सोफी की हत्याएँ ऐसी ही हैं।

‘प्रेमाश्रम’ के राय कमलानन्द और ‘कायाकल्प’ की देवप्रिया-जैसे विचित्र पाल भी किसी किसी रचना में ऐसे हैं जो भाषण ही कहीं इस घण्टी पर दिखाई दें। राय कमलानन्द प्रचण्ड झुलमती परमी में भी मोटा ऊनी बम्बल खोदत हैं। ‘परमी में आम खाते हैं भाग पीते हैं। बिप को बहू कुछ-भी ममसता है। ‘जात्रे में हिमचणों का सेवन’ करता है।

रङ्ग मूर्ति के पात्रों में एक और अस्वाभाविकता यह खोजती है कि कई मित्र-तम सम्बन्धी पात्रों का जानबूझकर विरोधी पक्षों में जडा कर दिया गया है। राजा महेन्द्रकुमारसिंह जउत् पक्ष के हैं उनकी पत्नी इन्दु सत् पक्ष की। भैरों और उसकी पत्नी का भी यही हाम है। विनय और उनके बहनोई महेन्द्रकुमारसिंह जानसेवक और उसके बटा-बेटा से भी यही विरोध और बिपमता है। यह कुछ अस्वाभाविक-सा लगता है। मानो अपने उद्देश्य की भरम पूति के लिए लज्जक से जान-बूझकर ऐसी सृष्टि कर ली हो। ‘बोधान’ में ऐसी अस्वाभाविकता प्रायः नहीं है। चरित्र-चित्रण पर हम रचना में प्रेमचन्द ने बल दिया है। पहले उपन्यासों में कुछ पात्रों का चरित्र बिपक्ष समस्या के बीच बल गया था। परन्तु बोधान में ऐसा कुछ नहीं। ‘बोधान’ में प्रेमचन्द के चरित्र चित्रण की विशेषताएँ हमने आगे प्रकाश की हैं। उसकी मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म दृष्टि पात्रों के व्यक्तित्व को उभारने का सफल प्रयत्न ‘बोधान’ में पाया जाता है। यहाँ पात्र केवल बगवत नहीं हैं उनमें व्यक्तित्व की सजीव रेखाएँ हैं।

प्रेमचन्द ने अपने आरम्भिक जीवन में चरित्र-वैचित्र्य-वैज्ञान उपन्यास और किस्से लूब पढ़े थे। यद्यपि वह उस रास्ते पर न चले और जीवन की यथार्थ अनुभूतियों को ही उन्होंने अपने उपन्यासों में अपनाया पर फिर भी आरम्भिक रचनाओं में कथा-वचित्र्य और असुगत घटना-वक्र प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति उनमें थोड़ी बहुत उगी प्रमाण से बनी रही। उसकी रचनाओं के अध्ययन से यह सामान्य धारणा बनस बनती है कि वह अपने कथानकों में वैचित्र्य उत्पन्न करने के उद्देश्य में जहाँ-तहाँ घबरा पड़ते रहे हैं। ‘कामाकल्प’ तो इस प्रवृत्ति का विचित्र उदाहरण है। ‘प्रेमाश्रम’ निमसा ‘कायाकल्प’ आदि रचनाओं में आकस्मिक घटनाओं और संयोगों (Coincidences) से उन्होंने बहुत काम बनाया है। उन आरम्भिक युग में सम्भवतः यह समझारी बड़ा मध्या ममसा जाता था। ‘निमसा’ में बाबू उदयमानदास की मृत्यु के संभाव को कथा विकास का आधार बनाया गया है। पर प्रेमचन्द इन संयोगों को बहुत दूर स्वाभाविक ढङ्ग से प्रस्तुत नहीं कर सके। बाबू उदयमानदास की मृत्यु के संयोग में लज्जता है कि जैसे देवक ने अपनी कथा की आवश्यकता-मूर्ति के लिए जबरदस्ती की है। ‘प्रेमाश्रम’ की अत्यधिक हल्काएँ भी इन दोष से मुक्त नहीं हैं। ‘गोशाल’ में दलिक संघाय और आकस्मिक घटनाएँ नहीं हैं। प्रायः सब घटनाओं के मूल में मानव चरित्र की स्वाभाविक विचित्रता है। इसमें पात्र ही घटनाओं को जन्म





ही बाबजू उन्हें हरसम उद्दिग्ध कर रही है। कुछ पत्तों के बाग ही पाठक के सामने अनिष्ट प्रस्तुत हो जाता है। इस तरह के किन्तु ही उदाहरण प्रेमचन्द के उपन्यासों से दिये जा सकते हैं।

परन्तु 'गोदान' में अन्ततः तो ऐसे संकेत हैं ही नहीं। प्रेमचन्द ने पुरानी बात छोड़ दी है। यदि कहीं कोई एकाग्र है तो वह अकारण और अस्वाभाविक तो निश्चित नहीं है। एक उदाहरण देखिए—हारी में माय भी है। उसकी फिर अनिमाया पूरी हो रही है। वह उत्साह से मरा है। वह माय की द्वार के आगे बाँधना चाहता है। ऐसी माय को देखकर ही तो भोगों को मायूम होना मह होती महों का घर है। यह पुरण का मनोविज्ञान है। पर धनिया के भीड़ गरी हृदय का सचीव मनोविज्ञान भी प्रकट हुआ है। माय के आगे स धनिया अपने उत्साह को दबाने रखती है। इतनी बड़ी सम्पदा अपने साथ कोई बड़ी बाधा न सामे वह बाबजू उसके हृदय में कम्पन जान रही थी। यानी वह अन्ततः को भी धोखा देना चाहती थी। भगवान् को भी रिखाना चाहती थी कि इस माय के आगे से उसे इतना आनन्द नहीं हुआ कि ईर्ष्यान्तु भगवान् कोई नहीं बिपत्ति न भेज दें। होरी माय को बाहर बाँधना चाहता है पर वह बिह करके माय को साथ परदों के भीतर छिपाकर रखना चाहती है भीतर बाँधती है। कहीं किमी की नजर न सम जाय। बातादीन माय देखने आते हैं। होरी भूख प्रमत्ता करना हुआ माय के नीचे का दूध बनाता है। तब धनिया का आकर कहती है—अरे! इतना कहाँ है! उसका गरी-हृदय किन्ता मजबूत है। उसे नजर लग जान का घर है। बातादीन उसकी बात धीप कर जाती हुए कहने हैं—बाहर न बाँधना इतना कह देत हैं।

इत प्रसङ्ग से यद्यपि भावी अनिष्ट की कुछ बाबजू या बाधात पाठक को होल सयना है पर वह किन्ता मनोवैज्ञानिक है। अकारण तो कुछ कहा ही नहीं गया। धनिया का 'नजर' से करने वाला स्वाभाविक गरी-हृदय किन्ता मनोवैज्ञानिक सत्य लेकर जाता है। बातादीन का कवन भी कार्य-कारण रूप से प्रकट हुआ है। हमने पाठक के मनमें कोई पूर्व धारणा इत नहीं हो पानी। प्रसङ्ग धीरे धीरे बन रहा है।

'रुने उपन्यासों में घटनाओं की पुनरावृत्ति भी होती है। 'प्रेमचन्द' में घुमन यज्ञा में होने वाली है और फिर सौट जाती है। हृदयचन्द्र होने आते हैं और जाने हैं। 'प्रेमचन्द' में भी भटा होने जाती है। प्रेमचन्द उसे बचा कर लौटा लाते हैं। जानकर एक बार तो पानी से निकल जाता है पर दूसरी बार नदी में डूबकर ही सदा के लिए हृदय-बाह को जाग कर देता है। 'प्रेमचन्द' में प्रेमचन्द को जो जानी पड़ती है। 'एकपुत्री' में विषय बायम होता है, 'आपादक' में अन्ततः के

कल्प में सजीवन पुगती है और 'कर्मभूमि' में श्यामिकुमार जायम होते हैं—मरके सब एक ही सी परिस्थिति में पड़कर—जनता और जनता के ऊपर अन्धधार करने वालों के बीच में पड़कर। कर्मभूमि में अधिकृत मरामत और अधिवोग का स्थिति-भित प्राय वेसा ही है जैसाकि 'गहन' 'कायाकल्प' और 'प्रेमाश्रम' में।<sup>१</sup> श्री बनार्दन प्रसाद झा के इस कथन में भी पर्याप्त सरपता है और जैसा कि हम कह चुके हैं यह पुनरावृत्ति सभी विशेष गांधीवादी दृष्टिकोण के कारण ही विशेष रूप से आई है। परन्तु 'गोदान' की सम्पूर्ण विषय-सामग्री नहीं है समस्त बट्नाएँ नवीन हैं। कहीं पर भी ऐसा आभासित नहीं होता कि प्रेमचन्द ने पुरानी बातें ही दोहराई हैं। पहले उपन्यासों में पात्रों की चरित्र-परम्परा भी एक-सी थी। अपने सिद्धांतों मनोवृत्ति और प्रवृत्ति के नाते अधिनाशन पात्र एक जैसे हैं। चरित्र-निरूपण एक ही ढर्रे का है। परन्तु 'गोदान' में यह दोष भी पर्याप्त मात्रा में दूर हुआ है।

प्रेमचन्द की सामाजिक दृष्टि भी गोदान में सर्वाधिक बढ़ी बढ़ी है। समाज की समस्याओं का जितना अधिक व्यापक और गहन रूप 'गोदान' में है वैसा पहले की किसी एक रचना में नहीं मिलता। वर्ग-विषमता का वैसा सजीव चित्रण 'गोदान' में है वैसा पहले किसी रचना में नहीं आ सका। इसी कारण साव-मनोवृत्ति भी 'गोदान' में अत्यन्त गहरी है। भाव-मीथर्य और कला का जैसा सुन्दर सामन्वय गोदान में है वैसा अन्य रचनाओं में नहीं। 'गोदान' की भाषा-शैली अत्यन्त उत्कृष्ट है। उसमें लालजिह्वा मूर्तिमत्ता और व्यंग्यात्मक व्यंग्यता बहुत सुन्दर है। पहले की रचनाओं में प्रेमचन्द मुसलमान पात्रों से अनावश्यक रूप में उबू शब्दों का अधिक प्रयोग करते थे। भाषा का यह भेद भी प्रेमचन्द ने 'गोदान' में हटा दिया।

निश्चित ही 'गोदान' अपनी यथार्थवादी दृष्टि से हिन्दी-साहित्य में एक नया तरह का रचना सिद्ध हुई। साहित्य में पहली बार एक धीमधीन निम्नवर्ग के किसान को नामक बनाकर उसके जीवन की सामिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ। 'गोदान' कृषक जीवन की मोह-संस्कृति का प्रतीक है। यह भारत की ८० प्रतिशत जनता की मूक बानी का चिह्नार बना है। इनके बड़े सामाजिक चित्रण पर भारतीय साहित्य की यह पहली अद्भुत रचना बनी जा सकती है। रवि दास, शरद तथा कन्हैयालाल मुन्शी-जैसे यह भारतीय साहित्यकारों की रचनाएँ भी इतने विस्तृत चित्रण को नहीं छू सकती।

## गोदान की तात्त्विक समीक्षा

### १ भाव और रस रसवादी समीक्षा

रस भाव साहित्य का प्राण-रूप अनिवार्य तत्त्व है। इसके बिना कोई रचना साहित्य (काव्य) की परिधि में आ ही नहीं सकती। बहुत-से आधुनिक आलोचक साहित्य-तथोप्रा विरोधकर आधुनिक साहित्य की समीक्षा में रस-तत्त्व की अवहेलना करने लगे हैं। उनका विचार है कि रस के बड़े-बड़े चोखे से सब-साहित्य की परख नहीं हो सकती। प्रगतिवादी आलोचक भारतीय रस-सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध हैं। डा० रामविनायक धर्मा ने अपने एक लेख 'रस सिद्धान्त और आधुनिक साहित्य' में कहा है— 'साहित्य विकासमान है और वह एक महान् सामाजिक क्रिया है, इसका सबसे बड़ा सबूत यह है कि प्राचीन आचार्यों ने अभिप्रेत देखकर जो सिद्धान्त बनाये हैं वे आज भी साहित्य पर पूरी-पूरी तरह लागू नहीं किये जा सकते। उन्हें लागू करने से या तो पैमाना टूट जायगा या फिर अपने ही 'रस'ों को छोड़ा तराकता पड़ेगा। काव्य के जो रसों से नये साहित्य की परख नहीं होती। जीवन की धाराएँ एक-दूसरे से इगमी मिली-जुली हैं कि जो रसों की मदद कर उन्हें अपने मन के मुताबिक नहीं बढ़ाया जा सकता। प्रसन्न के साहित्य ने यह सिद्ध कर दिया है कि हम नये साहित्य को परखने के लिए युग के अनुकूल नये सिद्धांत ढूँढ़ने होंगे।'— 'इसलिए साहित्य के सामने यह समस्या नहीं है कि रस मौजूद है या इसका अभाव और 'रस' में श्रद्धा है या रसभाव। इन सच्चाई-अभिप्रायों धारों को रट-रट कर हम अपने विचारधाराओं को साहित्य की प्रगति से दूर रखने का विषम प्रयास कर रहे हैं। साहित्यकार सामाजिक उत्तरदायित्व का भूलकर अमर आत्मा की मजकूरता और रस के स्वयंप्रकाश अलौकिक ज्ञानान्त-महोदर होने की भाँति बोहोला रहेगा या अर्थाहीन समाज के निर्माण में सहायक न हो सकेगा।

रस और रस-सिद्धान्त के बारे में इस धारणा के कई कारण हैं। एक तो रस के उदात्त रूप की प्रतिष्ठा—ऐसी कि जिसमें जीवन के प्रगतिशील तत्त्व समाहित रहते हैं—प्राचीन रस-आचार्य नहीं कर सके हैं। उनके लिए मध्यम शृङ्गाररस की वामुनवाण उक्ति थी रस का उदाहरण भी और त्याग वसव्य माहम आदि

उदात्त मानवार्थों से परिपूर्ण प्रेम का चिन्तन भी शृङ्गार रस का उदाहरण था। इन दोनों में अद्वैता की दृष्टि से परस्पर का विचार उनके सम्मुख था ही नहीं। इससे, आज तक हम अपनी रस-दृष्टि केवल इन बात में ही सीमित किए हुए हैं कि अमुक रचना में कौन-कौन सा रस है किस रस की प्रधानता है। अर्थात् हमारी रस-दृष्टि केवल रस-गिनाये तक ही सीमित रहती है। हम भावों और रसों की जीवन्तोपमो पिता तथा उनके आधार पर कवि या लेखक की संपूर्ण रचना प्रक्रिया का विश्लेषण नहीं करते और इस प्रकार रस सिद्धान्त एक सीमित समीक्षा सिद्धान्त प्रतीत होता है। ऐसा सपत्मा है कि उसका समाज और जीवन की प्रगति से विशेष सम्बन्ध नहीं कि वह वैयक्तिक आनन्दानुभूति-मात्र है।

हमने रस सिद्धान्त को समीक्षा का मानदण्ड सिद्ध करते हुए रसों के उदात्त रूप-स्वरूप की विस्तृत विवेचना और सब तत्त्वों से सम्बन्धित रसवादी समीक्षा की रूपरेखा तथा उसके आधार पर नवसाहित्य—विशेषतः नई कविता—की समीक्षा का प्रयत्न अपनी पुस्तक 'रसकारण और साहित्य-समीक्षा' में किया है। यहाँ तो हम केवल संक्षेप में यह कहना चाहते हैं कि रस की अवहेलना से काम न लेना। रसतत्त्व में जीवन की संपूर्ण उदात्तता को समाहित करने की शक्ति है। जीवन के वैयर्थ्य पर ध्रुव्य कल्याण या दुःखा से व्यापित हुए बिना अर्थात् मानवानुभूति या रसानुभूति के बिना कोई व्यक्ति वर्गहीन या वैयर्थ्यहीन समाज के निर्माण में प्रयुक्त हो ही नहीं सकता या जो कहें कि काव्य या साहित्य में सामाजिक विषमता के प्रति लेखक की भूगर्भमय तथा कस्यामय प्रतिक्रिया ही—जो निश्चय ही पाठक के लिए रसानुभूति होती है—वर्गहीन समाज के निर्माण में सहायक होगी। जब यह कहा जाता है कि 'गोदान' दुःख-जीवन की 'टू बेबी' है तो क्या इससे यह अनिप्राम है कि उसमें दुःख-जीवन की समस्याएँ प्रस्तुत की गई हैं? इससे निश्चित ही जीवन की कठना अनिप्रेत है जो कठण रस ही है। इसी प्रकार जब हम कहते हैं कि गोदान में जोषकों के अनेक रूप हैं तो इसका सीधा मतलब यह है कि 'गोदान' में दुःखा या बीमत्स रस के अनेक आलम्बन हैं। समाज की कुराहमी कुरीतियाँ अत्याचार बना आर, अत्याय सब को चिन्तित होते हैं वे दुःखा या बीमत्स रस के विषम ही तो हैं।

आज के हमारे अनेक आलोचक समीक्षा के कुछ बाह्य मानदण्डों या सिद्धान्तों को सरल मानकर समीक्षा करना चाहते हैं। साहित्य के मूल तत्त्व चाहे रस की अवहेलना करते प्रतीत होते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा आग्रह है कि साहित्य-समीक्षकों को युग-साहित्य के नियमों की विवेचना करते हुए साहित्य के मूलसूत्र साम्यत मान लें—रस या उदात्त भाव रस—को गहरी भुजाया चाहिए। चाहे हम महाकाव्य के लक्ष्यों या निमग्न की विवेचना कर रहे हों या उपन्यास के तत्त्वों की हमें सदा उन

उत्तमों को प्रमोदना देने की शक्ति आ साहित्य के मूल तत्त्व हैं। हमारे प्राचीन साधकों ने महाकाव्य के मसलों पर प्रकाश डालते हुए छन्द-निबन्ध सर्व-सम्पन्न मङ्गलाचरण आदि बाह्य बातों को भी उतना आवश्यक ठहराया जितना रस-परिपाक और उदात्तता आदि अन्तरङ्ग तत्त्वों को। महाकाव्य के ध्यापक और भाष्यन भावद्वयों के आधार पर उनके अनिवार्य अन्तरङ्ग तत्त्वों और परिवर्तनीय बाह्य तत्त्वों में भेद जनाकर पुनः विवचना साधकों में नहीं की। जब यदि कोई समीक्षक किसी आधुनिक महाकाव्य में मङ्गलाचरण या प्राचीन छन्द-निबन्ध आदि न पाकर उसे दुष्टि ठहराने में तब तो उसकी आलोचना किन्ती हास्यास्पद होगी? यह भी जान है कि बाह्य भी हम नहीं बलती होकर रहे हैं। उपन्यास कहानी आदि आधुनिक साहित्य-विधाओं के तत्त्व निरूपण में हम पाश्चात्य समीक्षकों के अनुकरण पर मूल तत्त्व का मुकाबला रहे हैं। उपन्यास-कहानी के तत्त्व प्रकाशित करते हुए बहुत-से आलोचक आलोचना-प्रति-रस-मात्र-तत्त्व—को पिताने लगे हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों की समीक्षा करते करते कई समीक्षकों ने पाश्चात्य-समीक्षकों की दृष्टि से मूल्यांकन छोड़ ही दिया है। क्या प्रेमचन्द की महानता केवल इन बातों में है कि उन्होंने समाज की विविध समस्याओं का बोध कराया जो कार्य कि एक समाज-शास्त्री भी कर सकता था? मैं समझता हूँ, प्रेमचन्द इसलिए महान् हैं कि उन्होंने जीवन के विषय-विषय पहलुओं पर हमारी भाव-मनोवैज्ञानिक समीक्षा जो पुनः के महान् सांस्कृतिक निर्माण से सम्बन्ध रखती है। अनुभूति-शक्त के सामर्थ्य के तत्त्व के माध्यम से ही प्रेमचन्द के प्रतिनिधीय तत्त्वों का अध्ययन करना समीचीन है। इसके बिना उनकी समीक्षा अधूरी ही रहती या मरुती है। प्रेमचन्द के उपन्यासों की मूल बातें जहाँ उनमें व्यक्त उदात्त भाव और रस हैं।

### आत्मसत्ता रस का प्रसार

प्रेमचन्द के उपन्यासों का बीच भाग हुआ है। उनके उपन्यासों में हमें समाज की विविधताओं के अनेक चित्र मिलते हैं। प्रेमचन्द ने समाज की इन विविधताओं के प्रति गुणा से धार कर ही साहित्य-रचना की। एक तरह से गुणा का भाव ही उनका मूल प्रेरक भाव है। स्वयं प्रेमचन्दजी ने स्पष्ट कहा है—‘पाषाण कुरीता, बन्धन बन्धन और ऐसी ही अन्य वृत्तियों के प्रति हमारे अन्दर जितनी ही प्रवृत्ति गुणा हो उगी ही बन्धनकारी होगी।’<sup>२</sup> इतने व्यापक चित्र-पट पर सामाजिक बुराइयों का लक्षणन आया ही किन्ती अन्य लेखक ने किया था। हमारी रीति-रिवाज की विविधता केवल विवाह शाद-विवाह वृद्ध-विवाह, दहेज-महा

१ शीतल-रस के साथ उप-रस के सम्बन्ध के लिए इनका विविध आत्मसत्ता रस और विन्दी साहित्य देखें।

२ प्रेमचन्द और क का पुनः का साहित्यिक शब्द—पृ० २२।

मारी का उत्पीड़न बेवशा-जीवन का कष्ट, विधवा जीवन की बिभ्रन्धना सामंतीय या जमींदारी तथा पूँजीवादी शोषण धार्मिक डान यहूतों और मठाधीनों की दुष्ट रिक्ता अत्याय और दुर्लभा सुभासुर का कलंक, बर्ब भेष तथा बारी अन्धविश्वास संकृषित गच्छीय मनोवृत्ति रिक्तातपोरी धर्म भेष हिन्दू मुगलिय तथा अन्य सामाजिक और धार्मिक साम्प्रदायिकता स्वार्थपरता राष्ट्रीय भावना का अभाव मृदु अहम् मृदु सी जान बताने की प्रवृत्ति पुनिसिद्धाता क हृदयकरी और अत्याचार विटिष पीकरबाही के पुन्य पाप का बिह्वल महाजनी पूँजीवार तथा अन्य अनेक सामाजिक और धार्मिक लक्ष्मि आदि अनेक सामाजिक बिह्विषा प्रमचन्द के उपन्यासों में उभर कर आई है। इन सब कुपद्यों के प्रति पूँजा उन्नत करके स्वतन्त्र समाज के निर्माण की प्रेरणा ही प्रमचन्द का उद्देश्य रहा है। बीमत्स रस के उपर्युक्त अनेक आत्मन्धन उनके उपन्यासों में पाये जाते हैं। यह बीम-स रस या उदात्त पूँजा भाव ही है जो प्रमचन्द के उपन्यासों को सबल और मजबूत रचगार्ण विष्ट करता है। इसी के आश्रय सामाजिक कुपद्यों के भूभोष्णवेष की प्रेरणा हमें प्राप्त होती है। उनके सेवामदन और प्रेमभाषम निश्चिन्त रूप से बीमत्स रस प्रभाव उपन्यास हैं। अन्य उपन्यासों में भी बीमत्स रस का गर्वात विस्तार पाया जाता है।

### दोषक शोषण के विविध रूप

गोदान में बीमत्स रस की प्रचुर सामग्री पाई जाती है। इसमें पूँजा के अनेक आत्मन्धनों का प्रसार है। यद्यपि इस रचना का प्रधान रस करुण ही है तथापि बीम भाव पूँजा ही है। महाजनी शोषण जमींदारी शोषण धार्मिक शोषण और बर्ब विषमता की यह मुहु-बीमती तस्वीर है। 'गोदान' दोषक-जीवन की अत्यन्त करम कहानी है। कदल-परिस्थितियाँ अधिकतर मापन अत्याचार और अत्याय का परिचायक हैं। अतः इस उपन्यास में यद्यपि प्रधान रस करुण ही है किन्तु उसके साथ-साथ बीमत्स रस की व्याप्ति भी आच्छोषात् है। बीमत्स रस और करुणा का सह-अस्तित्व और उदात्त प्रसार ही गोदान की अर्धा शक्ति है। बीमत्स रस के अनेक प्रकार के आत्मन्धन प्रकट हुए हैं। गरीबों का शोषण करने वाला, बमार लेने वाला, लज्जत-लज्जित, रीढ़ तथा अपने धार्मिक या सामाजिक बिभोत के बिध गरीबों से अजबरादारी बन्दा लेने वाले रामसाहब अमरपापमिह उनके केन्मात्र आचारप्रवृत्ति और परीक किमानों पर बरपा चार करने वाला, लज्जत बमुनी की रतीत में देकर दुबारा बमुन करने वाले, बेमार लेने वाला और बरपचा व्यभिचार करनेवाले जोसेराम जैसे बरपिते, प्रकट साह पंडित शास्त्रीय तथा शिपुरीसह-जैसे मित्रमी मुरखोर महाजनी, पटेअरी जैसे स्वामी और लाली पटवारी परम्परापन्थी अन्धामी और स्वामी पन्थ, रिश्वतखोर स्वामी और अन्धामी पुनिसिद्धाता धर्म की ओट में मापन करने वाले नामवान तथा सुभासुर

उच्च-नीच और ज्ञान-मूल का भेद रखने वाले स्वामी पण्डित दानाशेन और उनके सम्पूर्ण पुत्र मातापीत क्रियाओं की ऊँच कम तोमर वाले मजदूरों का गोपन करने वाले और रमिक-लम्पट कैदियों मित्र-मानिक छात्रा तिथकशरी होंगी और सम्पद प्राकृत्य कामीरी मयू की स्वच्छन्द नृत्तिकों स्वामी और दुष्कर्म-प्रवृत्ति पक्षकार औरकारनाह आदि अनेक पाप धृष्टा के पूर्ण आत्ममर्दन हैं ।

‘साक्षर’ में गोपय के विविध रूप मिलते हैं । १ सामन्तीय छोट का जमीनदारी बढाने-ढाट गोपय । इसके अन्वयन रायमाह्व अमरपालमिहू र्भने जमीनदार और उनके आदिम्वे आते हैं । रायमाह्व अन्यायनुक संमान वसूध करता है वस्तुतः करता है और अमानियों को वसू करता है उनसे बचाने बना है जोह मजदूर नम्रगत वसूध करता है । उसका एक बीजस्य विन दक्षिण । रायमाह्व अपने आत्मिक और सामाजिक होंह और विनोद के लिए समुद्र-यज्ञ की र्त्तपारिषी करत रहू हैं । अथवा अमानियों से बचाने न रहू हैं । एक अपराधी आकर बहना है—‘सरकार केमारा न काम करने न इन्कार कर दिया है । कहने हैं अबतक हमें जाने को न मिलेया हम काम न करेये ।’

‘राय साहब के मास पर बन पड़ पय । आदि निवास कर बोल—‘उन दुष्टों को ठीक करता है । अब कभी जाने को नहीं दिया गया तो आज यह नई बात क्यों ? एक आन रोत्र क हिमाक स मजदूरी मिलनी जो हमेंमा मिलनी रही है और इन मजदूरी पर उन्हें काम करना होगा भीने कने या टेदे ।’

यह अन्वयो होंगी जमीनदार जो अभी-अभी हारी के आये नीति और जमें की बात कर रहा था एवम वैंडा बहस दया । ये जमीनदार जो अपनी सृनी बान रखने के लिए जमीन-आममान के कुपावे मिथान हैं कभी राष्ट्रवारी बनते हैं और कभी अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये राज-भक्त, शिवा दाम-धर्म कोरा पाकण्ड है गरीबों का मूल वृम कर को अपने सम्बन्धी परोजीको वृम को अन्वयो स पावता है जो पन-मिक्षाओं का मुँह बन्द रखने के लिए पनमुता अन्वा दया है हमारी तीव्र वृम बनाता है । राजा मूस प्रतापमिहू भी एम हो चुली हैं । महता उनके बारे में कहना है—‘अबतक में आप किसी बुकानदार, किसी अहमकार, किसी राष्ट्रपीर स पूत्रिये उनका नाम धुनकर मानिया गया ।’

और यह मोहराम ! बारिम्दा है ।’ केतन तो बन न्यय स अन्वा न का पर एक हजार छान की ऊपर की आमदनी भी मँकड़ों आशमियों पर दुष्कर्मण बार बार प्यारे हाकिम, अपार में नारा काम हा जाता था । कैदियों और वृम ! होरी में ममान का नारा हिमाक बृमना कर दिया । पर यह कागिन्दा जो नाम की बारी निवास कर प्याम मेव देता है । क्याकि रमीन तो जयने की नहीं थी क्या



सबूत है कि सगात चुका दिया ? हारी गछाटे में जा जाता है। मोबर गम होकर साबेराम के पास गया और सबके सामने पूछा— 'यह क्या बात है काफिरा साहब कि आपकी दादा मे हाम सब का सगात बकता नर दिया और आप सभी हो साम की बाकी निपाय रहे हैं।' कुछ कसा गोसामा है ? मोटेराम जब रोब दिखाता है तो वह पत्रकारता हुआ साफ कह देता है— 'इसी गाँव से एक सौ सहायों रिता कर साबित कर दूँगा कि तुम खीब नहीं बेते। सीदे-सादे किसान हैं कुछ बोमते नहीं तो तुमने समझ लिया किमान काठ के उम्पू हैं।' राय साहब वहीं रहते हैं वहाँ में रहता हूँ। रती रती हाथ बढ़ाया और देखना तुम कैसे मुझसे दोबाय अपने बसूल कर लते हो ! मोटेराम सटपट गए । इस मोटेराम की सीरत के हाथ ही सने हाथ मूरत भी देख मीखिण— 'मोटेराम गाटे-मोटे बल्लाट गन्नी माक और छोटी-छोटी जाँचों वाले साँचल जावपी थे। बड़ा-सा पम्पड़ बीघते नीचा कुरता पहनते। उन्हें तेन की मासिम बचाने में बड़ा धानन्द आता था इसलिए उनके कपड़े हमेशा सैले चीकट रहते थे। मानो मम की मस अम्बर में समाकर बाहर पुटी जा रही हो ।

यह परले पर्वों का बुधवारित है। घोसा की पत्नी मोहरी का वह रख ही सता है। गाँव का पम्प बनकर गरीबा की कोइला है रिस्वत में बसानी जाता है और महाजनी करता है सो असग ।

महाजनी गाँव का भी बड़ा ही सुजीव बिमल 'गोदान' में मिलता है। महाजनी संस्कृति का विकास हो रहा है। जिसके पास बार पैसे हुए, वही महाजन बन रहा है। गाँव में एक नहीं कई महाजन हैं—मगकलाह बुलारी सुभाइन पं० दादाजीम बिसहर साहू पटेश्वरी पन्नायी और माबेराम सब महाजन बने हुए हैं। महर के पूजीपति सठ का एबष्ट बना हुआ सिमुरीमिह भी गाँव में बिद्यमान है। ये लोग किसान को भारी मूब पर कर्ज देते हैं। देने बस इस के बन्स पाँच हाथ पर रखते हैं बागाज भिबाई वस्तुरी मजर सब पहल ही काटते हैं। और ध्याज की रकम दिनों-दिन बढ़ती जाती है। बीस के एक सौ पाठ हो जात हैं। पचास के तीन सौ। किसान सब का ऋणी बन जाता है। उमरी उम्र तैपार होती है। 'सिमुरी सिह' के सभी रिगियाँ थे और सबकी यही इच्छा थी कि सिमुरीमिह के हाथ अपने न पड़ने पारें गहो तो वह सब का सब हजम नर जायगा। और जब दूसरे दिन असाामी फिर स्पष्ट माँगने जायगा तो गया कागज गया मजराया गयी ठहरीर। दूसरे दिन गोसा आकर बोला— 'दादा कोई ऐसा उपाय करो कि सिमुरीमिह को हमा हो जाय। ऐसा बिदे कि फिर न छठे ।'

होरी में मुमकतकर कहा— 'क्या उर ने माज-गच्छे गही है ।

उसके बाल-बच्चों का देखें कि अपने बाल-बच्चों को रखें ? वह तो दोनों मेहरियों को बाराह न रखना है। यही तो एक को जमी रोमी भी बदलकर नहीं मारी जमा में मया । एक-पक्षा भी घर न बाल देगा । न जाने इन महाजना से कमी गया कूटेगा कि नहीं ।

होरी गोपा—इस जकम में तो कोई आया नहीं है। चार । हम राज नहीं चाहते सोव विनाम नहीं चाहते। घाली गोपा-सोटा पहना जाय गोपा भोग खाना और मरवाय के साथ रहना चाहते हैं । वह भी नहीं खाना ।

कैसी विपत्ति है । कसब और बीमर रम का कमा सुन्दर मह-वस्तुत्व है । निज हरि विमान के आनन्दनन्द से कसब रस और मोरक महाजन से बीमर रम का कैसा सुन्दर सुचार हो रहा है । इन महाजनों से यना छुड़ना मुश्किल है । गोपा हुआ है—यैने बाल उधार न दें तो मुँह कहीं से पाय । एक हमारे ऊपर बाबा रता है ता दूसरा हम कुछ कम मुँह पर रुपये उधार लेकर अपने पास में पैसा ला है ।”

महाजनों न जो ऊँच करते देखी तो पेन में चूँके बीपे । एक तरफ से बुनारी दीदी दूसरी तरफ से मयकमाह सीनरी और से बानापीन पटेमरी और सिपुरी के यात्र । मयकमाह हारी को डाँट कर कहते हैं—“हम हमारे रुपये न दो होयें तब ऊँच बाने । यह न समझना कि तुम मेरे रुपये हजम कर जायाय मैं तुम्हारे मुँह से भी बमुन कर सूँबा ।

प्रमथन ने इन महाजनों को बानी करलून ही प्रमथ नहीं की इनकी कामी सीदी आहनि के भी बिच दिये हैं जिनसे इनका यिनीना का और भी प्रमथ हो जाता है । मयकमाह का बिच है—“कामा राजा तौर कमर के बीच मटकनी हुई हो बड़े-बड़े बोट सामन जैसे बाग खान का निकल हुए, फिर बर टोपी यने में बादर, बज्र बनी पचन में व्याप्त नहीं पर साँरी के सहार चलन य । पछिया का मरज हो गया था । खानी भी बाजी की ।”

कामा मयकमाह न कहना है—“पचाम रुपय के तीन सौ रुपये मत तुम्हें जरा भी बर्न नहीं जानी ।”

विमान की ऊँच मिय में पहुँची । तीस मुक होने ही सिपुरीनिह ने मिय के फाटक पर बालन जमा निष् । तुर एक की ऊँच तीयने से काम का पुरजा मेले से पचाबी से राय बमुन करन से और खना पाचना काटकर जमायी को दे देने के । बपामी रिता हो रोय बीने निमी की न मुने के ।

होरी को एक भी बीम रुपये मिय । उनमें से सिपुरीनिह ने अपने पूरे रुपये

मृद-समन काटकर कोई पचास रुपये होरी के हथाने किए। ये महाजन तो ताक में थे ही होरी बाहर भिजवा कि मोनैराम ने लवकारा। होरी ने जाकर पचासों रुपये उनके हाथ पर रख लिये और बिना कुछ कहे जल्दी से भाग गया। उनका सिर चक्कर पड़ा था। मोना का भी इनमें ही रूप्य मिश्र था। वह बाहर निकला तो पनेधरी ने रोका। मोना ने साध पड़ा— 'मेरे पास अब जो कुछ बचा है वह बाल-बच्चों के लिए है। पर पनेधरी को इससे क्या? धमकी देकर सुरक्षित उगाया जाता है। किसान की सारे नाम की मेहनत का डम यही फल मिला कि उसके पास एक कौड़ी भी नहीं रही। साग मास फिर इन महाजनों ने चब चब कर फिरे फिर कागज के छह पीर के कौड़ी के गजब-नजबाने के रुपये कटवा कर सी के पचास पाने पात्रों और तिष्ठ पर सबाया सूब दो। यही चक्कर हर मास चलता है। बिरधर के लक्ष कितने मासिक हैं व्यापार और घुणा में राधापय भरे हुए— 'भिक्षुकी में सारे का सारा में भिया होरी काग। चबना को भी एक पैसा न छोड़ा। हथपाय कहीं का। रोया गिरिदिबामा पर इस पापी को क्या न धाई। एक इक्की मुह में दबा ली थी। उसकी ताड़ी पी सी। मोना साध भर पसीना गाया है तो एक दिन ताड़ी तो पी लू। बीस लिए थे उसने एक सी मात्र भरे कुछ दूध है। बिलगी पूट है। बिसेमर माह जाने रुपये में कम सूब नहीं जाता।

और यह महाजन सुरक्षित भी है। माताजीन मुनिया से भीनी-भीठी बात करने के लिए किमी-न किमी बहाने रोज़ पर जाता है। मोनैराम दरपन व्यभिचार करता है। मोहरी को उनमें एक तरह रखी ही बना भिया है। पनेधरी अपनी बिधवा कनारिन को रखे हुए है।

पाताजीन न बीस के लिए तीस रुपये उधार दिये थे। अब को सी माँगता है। गोबर कहता है— 'मुने गुल बाब है तुमन बीस के लिए तीस रूप्य दिये थे। उसके गौ हुए। और अब सी के को मो हो गए। इमी तरह तुम मोनों ने किसानों को मृद-मृद कर मजूर बना डाला और आप उनकी जमीन के मासिक बन बैठे। तीस के दो मो। कुछ हर है। और अब वह कहता है एक रुपया नौकड़ा सूब के हिमाब से छाँट बनते हैं। 'उमक मत्तर से को। इसमें बगी में एक कौड़ी न गुना। तो यह महा जन धर्म की गुहाई बना है क्योंकि वह मगवान् का बिसेप ह्या-यात है। वह कहता है— 'यह धर्म को मैं पाछाण हूँ मेरे रुपये हजम करते गुल धन न पायोये।

यही नहीं यह महाजन भी अपने रुपये के बल पर किसान से बगार लेता है। पाताजीन होरी से अपने भेन वनमें से पुनवाता है। होरी से बड़े रीत में कहता है— 'क्या आज भी तुम काम करने न जसोये होरी? अब तो तुम मछड़े हो गये। गोबर न बीस में ही बहा 'अब यह गुम्हारी भजूरी न करेये। हम अपनी उध भी

मादान में काम के विधि का

तो बोली है।"

गान्धर्व ने गुरनी छोड़ते हुए कहा— "काम नहीं करने मान के बीच में काम नहीं छोड़ सकन। गाबर के जम्हाई लेकर कहा— "उठोने मुझागी मुसामी नहीं निश्री है। अब तक इच्छा का काम किया। अब नहीं इच्छा है नहीं करने। इसमें कोई उदरस्थी नहीं कर सकला।

ता हागी काम नहीं करने ?

ना।

ता हमारे व्यय सुद-ममत्र बं दो। । गाबर फिर कहारना हुआ बगना है— अल्लो रिक्की है। किमी का नी रुपये उधार ब दिये और हमसे मूँ म रिक्की-मर काम लेते रहो। मूँ अणों-बा-णों। यह महाजनी नहीं है मूँ बुन बुनता है।

हास्य-युक्त कृपा का भव्य रूप लेना हो तो हानी के उन्मुख पर गाबर की बीषाम में हुई निरपेक्ष की महम परिय। महाजन का इसमें बहिया मज्जाक क्या होता ? गुरुर सिगुरीमिह की नकल हुई जिसमें गुरुर ने स्व स्वयं का वस्त्रावज निखकर पाँच रुपये दिये मय मज्जाक और लहरीर और लहरीर और व्याज में बाँट दिये। किमान तीन कर आज़्ञा न कहना है— "अब यह पाँच भी मेरी मार न रख लीजिए।"

कैसा पायस है।

करी मज्जार, एक रुपये छोटी टुकुरान का मज्जारना है एक रुपया बड़ी टुकुरान का। एक रुपये छोटी टुकुरान का पान खाने को एक बड़ी टुकुरान के पान खाने को। काफी क्या एक बहु भावक रिक्की-करम के लिए।" कैसी बहिया महम है। अन्तिम मज्जा में बुना मूँ लुट हो गई है।

पुँजीबारी छोड़ण भी बंद रहा है। गुरुर व पुँजीबारी बगना न महाजनी कोटी बोन रखा है। जम्ही का जम्हा गीत में सिगुरीमिह है। ये बिमान को उधार देन है और उन्मुख अपने पाम मज्जाक अपने रुपये व्याज-मज्जा बाँट लेने हैं। महाजनी मय और मज्जानी अमय। लहरी की मिय में बिमान की उन्मुख लुपनी है। यह स्वयं मना है— बाप नहीं जानन मिच्छर मज्जा मिय बापन विज्ञानों की बिमली शृंखा की है। बिमली रिक्की दी है बिमली रिक्की दी है। किमानों की उन्मुख तीनने न लिए कैमे मासमी रणे कैमे मज्जमी बाँट रख। यह बिम-मासिक मज्जुनों का भी मोदप करता है। बाप एक हजार रुपया मज्जानी बनन मना है मज्जमीन धरम दोपर का मान बापन। पर मज्जुनों की मज्जुरी मज्ज रखा है। यह मोदपता है कि यह पिय का मज्जापम भी तो करता है। गुरुर कैम हाय न काम करने हैं। रामरेवन्द

अपनी बुद्धि से मित्रों से प्रतिभा से प्रभाव से काम करता है। बातों अस्थिरों का मोह बराबर तो नहीं हो सकता। मयूरों को वह संतोष क्यों नहीं होता कि यह संदी का समय है और चारों तरफ बेकारी फैली रहने के कारण आवसी रास्ते हो गए हैं। उन्हें तो एक की बगल पौन भी मिले तो संतुष्ट रहना चाहिए।" गोपक का जवाब ठीक है !

यह त्रिभिन्न पुनिस-व्यक्ति के प्रतिनिधि रिक्तबोरे वारोमा की कामी करतूत देखिए। हीरा ने ईर्ष्यावश होरी की बाय को बहर दे दिया और स्वयं भाग निकला। पुनिस वारोमा तो ऐसे अवसरों की तलाश में ही होता है, जबर पाते ही बा घमके। उन्हें ठहकीकात से क्या गरज अपना हनुमा-मांसा बनाने से ही मनमग्न है। वारोमा ही होरी से पैसा ऐंठने के लिए तलाशी लेने की बात बमाते हैं। दम्पू होरी अपनी मर पाव रखना चाहता है। याँव के पक्ष भी चुन-खमूट में वारोमा के साथ भग बाते हैं। वे होरी को कहते हैं—मिलानो जो कुछ देना है यों गमा न छूट्या। पर बेचारा होरी वे तो कहाँ से बहर जाने को भी उसके पास एक पैसा नहीं। पक्षों में सलाह हीठी है और वारोमा को देने के लिए तीस रुपये होरी को उधार दे दिये जाते हैं। इनमें आधा हिस्सा चार पैसों का टहर। होरी ने रुपये लिये और अगोचर के कोर में बाँध प्रसन्न-मुख आकर वारोमा की ओर बसा।

सहसा धनिया सपटकर बोले आई और अगीछी एक शत्रु के साथ उसके हाथ से छीन ली। सारे रुपये जमीन पर बिखार गये। गगिन की तरह फुंकार कर बोली—ये रुपये कहाँ लिये जा रहा है बत्ता। बसा चाहता है तो सब रुपये लौटा दे नहीं कहे देती हूँ। मर के परानी रात दिन मरें और जाने-जाने को तरसों लत्ता भी पहनने को न मयस्सर हो और अम्बुनी-मर रुपये लेकर बसा है इज्जत बचाने ! — वारोमा तलाशी ही तो लेना। ले-ले जहाँ चाहें तलाशी। एक तो सौ रुपये की पाव गई, उस पर यह पसेबन ! बाहरी ठेकी इज्जत !

होरी कून का घूट पीकर चू चला। साथ समूह धरौं उठा। नेताओं के सिर झुक पड़े और वारोमा का मुँह धरा-सा निकल आया। अपने जीवन में उसे ऐसी सताइ न मिली थी। — मगर वारोमा भी इतनी बन्दी हार मानने वाले न थे। बिसियाकर बोले—मूर्खों ऐसा माधूम होता है कि इन जैतान की आत्मा ने हीरा को फँसाने के लिए बुध गाय को बहर दे दिया।

धनिया हाथ मटककर बोली—हाँ दे दिया। अपनी गाय भी मार कामी फिर ?—तुम्हारे तहकियात में यही निकलता है तो यही लिखो। पहना रा मेरे हाथों में हथकड़ियाँ ! बेब लिखा तुम्हारा ग्याव और तुम्हारे अक्ल की रौंड़। गरीबों का गला काटना हमारी बात है। धुस का धुस और पानी का पानी करना

हूसरी बात ।

मठार्यों ने रपय चुनकर उठा सिये से और बारोगात्री को वहाँ से भगने का इबाध कर रह दे । धनिया ने एक ठाकर और सपाई—अजिमके रपय हों स जाकर उसे दे दो । हमें किसी से उधार नहीं भगा है । और जो भगा है तो उठी से भगा । मैं हमड़ी भी न दूगी चाहे मूख हाकिम के इज्मास तक ही भड़ना पड़े । हम बाकी चुकाने का पपीस रपये माँगन स किसी ने न दिया । आज अनुनी घर रुपये उठाउन निकाल दे दिये ! मैं सब जानती हूँ । यहाँ तो बाँट-बखरा होने वाला था । मग्गी के मुह नीचे होते । स हृपारे पाँच स मुखिया है । गरीबों का खून बूसने वाले । मूद-म्याज रेड़ी-सबाई, मजर-मजराना बूस-बास जैसे भी हा गरीबों को सुगे ।

रिस्वतखार बारोगा और भाँव के बईमान पचों की कामी करतूनों का कसा घसीच बिस है ! बीमस रस की यहाँ पूर्ण ब्यवस्था हुई है । होरी की पत्नी धनिया कायमलत कायम है । बारोगा और पच आसन्द । बारोगा और पचों की सीर-पाँठ बारोगा का धनिया का धमकाना आति उहीफ कार्य है । धनिया का भपत्ता हाप यत्का कर फत्कारना आति साठीरिक तथा धिक्कारपूव कवन धारिक अनुपाव है । ममप शोध ब्यस्य शोफ आसन्का माहस आति सन्कारी भाव भी स्पष्ट है ।

वहर के हाकिम जब भी पराजय से किसान का भोपण करते हैं । बदपुसी इबाध आति की जो धारेबाई बमीवार अपनी बसामियों के बिच्छ कटता है । ये हाकिम रिस्वत खाकर, धानियों भेकर, हाट किसानों क लिहाफ बिधी दे दते हैं । 'कब हावा धायर हुवा कब बिधी हुई, उसे ( होरी को ) बिस्कुप पठा न पत्ता । कुर्कजमीन उसकी ऊँच नीलाम करने वाला तब उसे मासूम हुवा । और बात की बात में सारे गाँव के देखते ऊँच मैनक साह की हो गई । धनिया गामिनी देती रह गई । यह कहती है—जो धानी खाने का काम करेगा उसे तासिया मिलगी ही । मँवकसाह ने मर-मर कर केठ की पुपहरी में सिचाई और मोझाई की की । रामसेबक बिन्बि लीकरसाही का पराकाश करता हुआ कहता है—आनेदार और आनिमिडि बल तो बँसे रामाव है । अब उनका धीरा गाँव में हा जाय किसानों का धरम है कि वह उनका आवर-सत्कार करें मजर-म्याव स नहीं एक रिती में गाँव का गाँव बँधे गाव । कभी कमतोयो आते हैं कभी तहसीलदार, कभी बिट्टी कभी पठ कभी कमकाट, कभी कमिसनर, किसान का उनके सामने हाव भाँव हाकिम रहता बाहिदे । उनके लिए रसव भारे, अण्डे मुर्गी दूध-बी का हन्तबाम करना बाहिदे । एक न एक हाकिम राब नये बड़ते बात है । न जाने किम किम महकने के अपनार है नहर क असग बगल के असग ताड़ी-सराव के असग ।

पाँच के पचों की कासी बखून का बिल ऊपर दिया जा चुका है । दिगादरी

का भय और पंच भी होरी का शोषण कर रहे हैं। ये पंच अपनी बलाही बाने के शोभ से अब-उब किसान को मुट्ठाते रहते हैं। पटेश्वरी ने गंगू को सुभाया कि अगर इस बल होरी पर बाबा कर दिया जाय तो सब रुपये बगूल हो जाय। और वह स्वयं गालियाँ करने का जिम्मा ल मेता है। अपनी हमासी के शोभ से उस भडका कर, उससे अबामत का बर्बा मेकर गालियाँ कर देता है। वह असामियों का बापस में सड़ाकर रकमे मारता है।

समाज की बनी-सड़ी परम्पराओं और मर्यादाओं में जकड़ा हुआ किसान इन समाज वालों के शोषण का शिकार होता है। होरी का पुत्र शीवर महीर की सड़की झुनिया से प्रेम करता है। वह उस करने घर से आता है। होरी और धनिया झनिया को आश्रय देते हैं। अब समाज की नाक कट गई, बिरादरी को मौन आ गई। सिगुरीसिद्ध पंचायत सार के हैं जो-आ बचान पलियाँ रहे हुए हैं। पटेश्वरी अपनी बिधवा कहारिन को दरपार रहे हुए हैं। बानाबीन न बहानी न उद्यम मचाया जा। अब उनका बेटा माताबीन सिनिया भमारिन का फेंसाये हुए है। 'सिगुरी न बाइसी रखनी' पर इन्हे कोई कुछ नहीं कहता। रँसे नाम है पंच है। पर यही पंच होरी पर सी रुपये नकद और तीन मन अनाज डीठ लगाने हैं। क्यों उसका बेटा झुनिया बिधवा को लाया? ऐसी कुमजली को क्यों उन्होंने अपने घर में जगह दी? और पंचों में परमेश्वर मानने वाला और बिरादरी के मूठ से डरने वाला होरी दूर जाता है पर पंचों का फेंसला तिर-साये पर मेता है। धनिया अवश्य अपनी बूना और शोभ ध्यक्त करती है—'पंचो गरीब को सताकर सुख म पाओगे इतना ममम मेना। मेरा सचाप तुमको भी जबर-से-जबर सयेगा। कौमी तीव्र बूना फूट निकली है इन समाज-बिरादरी के ठेकेदार पूत शोषको के प्रति। धनिया की गालियाँ 'सचाप' फटकार-धिक्कार स्वास-स्वान पर इन समाज खोपी मच्छियों बूना के मित्र-भित्र आसम्भनों के प्रति हमारी तीव्र बूना को पुष्ट करती हैं। सारे उपन्यास में बाबि से अन्त तक बीमरस रस के आश्रय शोषण का मार्मिक चित्रण हुआ है।

### छासोम्मुख सामन्तवाद

विकासमान् पूँजीवाद—महाजनी संरक्षित

हम पहले भी कह आये हैं कि प्रेमचन्द ने अपने कई उपन्यासों में जमीनारी पद्धति के दोषों को प्रस्तुत करके इन पद्धति को मृदुबुद्ध दिया है। 'प्रमाथम में उनका उद्देश्य ही यही था। 'रङ्गभूमि' और 'काकाकस्त' बादि अन्य उपन्यासों में भी इस पद्धति के बीमरस रूप का स्पष्ट उद्घाटन हुआ है। वास्तव में प्रेमचन्द ने सम्पत्ति को ही सब प्रकार की आपत्ति का मूल कारण माना है—मह बाई मायलबारी सम्पत्ति हो या पूँजीबारी। 'योधान' में पूर्व 'रङ्गभूमि' में भी प्रेमचन्द पूँजीवाद के

उप की समझ दिखा जाय व पर वही उगका विस्तृत रूप प्रस्तुत नहीं हुआ था। 'बोबान' में प्रेमचन्द ने युग मध्य को पहचान कर एक ओर हामोन्गुप सामन्तवाद का सच्चा चित्र उपस्थित किया है दूसरी ओर सामन्तवाद के स्थान पर विक्रमशील पूँजीवाद का व्यापक प्रमाण दिखाते हुए उसके भी समाग्र-ओपी और मानव-ओपी रूप का विस्तृत चित्रण किया है।

सामन्तवाद या जमींदारी की पद्धति बीबारे हित चुकी है। हम कार्य में अब कोई जान नहीं रखी है इसके स्तम्भों की नींव डीबाइल हा चुकी है। हम वय की आत्मा में अब नहीं रहा है। इनका आचरण दुष्ट हो गया है। निर्मित विगड गई है। वे अब मला-मस भी नहीं रहे हैं। उन्हें भी हाकिमों के मुह टाकने पड़त है उन्हें जर्मियाँ देनी पड़ती हैं। राममाहव अमरवाकमिह की स्वीकारोति हम सम्प्रदाय में उल्लेखनीय है। वह छोरी से कहता है—'सम्पत्ति और सद्गुणता में बैर है। हम दान देने हैं धर्म करते हैं। लेकिन जानते हो क्या ? केवल अपने बग़ावर बासों की नीचा दिखाने के लिए। हमसे से किसी वर छिपी हो जाय चुकीं या जाय बकाया मानसुबारी की इस्लत में हवापान हो जाय किसी का जवान बंग भर जाय किसी ने बिधवा बहू निकल जाय किसी के घर में जाग मय जाय कोई किसी बेरमा के गबो उम्बु बन जाय या अपने बमामियों से पित्त पाव तो उसके और सभी पाई हम पर हँसते वमस बकायम। यरीहों में अगर ईर्ष्या या बैर है तो स्वार्थ के लिए फूट पेट के लिए। बड़े जोदियों की ईर्ष्या और बैर केवल जानम के लिए है। वह बड़ा जाबमी हो क्या जिसे कोई छोटा रोम हो और वे स्वयं (किन्तु स्वार्थ के लिए) तुमसे और तुम्हारे भाइयों में बमुल किये जाते हैं पाँच की नोक पर। मुझे तो वही आश्चर्य होता है कि क्यों तुम्हारी आँहों का वाबाना हम बस नहीं कर सकते ? मगर नहीं आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। बस हमें में तो बहुत बैर नहीं लगती। बेरमा भी जोड़ी ही बैर की होती है। हम जी-जी जंगुल-जंगुल और पोर-पोर बस हो रहे हैं। उन हाहाकार से बचने के लिए हम पुनिय की हुकाम की यशमल की और बकीमों की तरफ लेते हैं। एभी ने हाबों का बिभीता बनते हैं। दुनिया मममगी है हम बड़े मुन्ही हैं। हमारे पास इलाके बहुत सचारीयाँ कीकर-पाकर कन् बेरपाएँ क्या नहीं है लेकिन जिसकी आत्मा में बय नहीं मधि माय नहीं वह और चाहे कुछ हो जायगी नहीं है। जिसे दुश्मन के घप के सारे रात को नींद न आती हो— जो हुकाम के तरफे चालता हो— उसे मैं मुन्ही नहीं कहता। — मुन्तजारी न हमें मराना बना दिया है। — और वह तो निश्चय है कि जब सरकार भी हमारी रक्षा नहीं करेगी। हमसे सब उसका कोई स्वार्थ नहीं निकलता। बसएत कन् रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे जर्न की इसी सित जाने वाली है। हम परिनि



रामसाहब स्वीकार करते हैं कि 'हम तो माम के राजा हैं। जससी राजा तो हमारे बहुर है। बागान में ही पूंजी जब टांम्बुकेदारों के हाथ में नहीं रही। पूंजी पर नियन्त्रण जब पूंजीपतियों का हो गया है। बड़े-बड़े मिस-मालिक सेठ-साहूकार, बैंडर, कम्पनियों के डायरेक्टर आदि ही जब पैस के घनी हैं। बागान इसी पूंजीवाद का सहारा बनर देखते-देखते बढ गया है। जिस टांम्बुकेदार ने अपना हाथ इन व्यापारिक कम्पनियों में पैसा मिया है वे ही मज म रहु सकते हैं। बागान में वो टूपर-मिस बना पाये बीमा कम्पनियों और बैंकों का बहु जमग मंतेजर और डायरेक्टर हैं। मि० मेहता कहता है—'बाग सगार का सासन-सूत बैंडरों के हाथ में है। सरकार उनके हाथ का खिमीग है। कुछ हवा ही ऐसी बसा गई है कि क्या गांव और क्या नहर सब बग महानगी सभ्दति का बिकास हो रहा है। गांव में छोटे-छोटे महाजन बढ रहे हैं शहरों में बड़े-बड़े उद्योग-पति पूंजीपति बैंडर, कम्पनियों के डायरेक्टर आदि अपने व्यापार से फल-फूल रहे हैं। जमींदार या सामन्त गप्ट हो रहे हैं। नई महानगी सम्पदा का बिकास हो रहा है। शहर के बैंडरों के आभित बड़े-बड़े जमींदार हैं और गांव के छोटे-बड़े महाजनो के पांव तले उनके असामियों की गरदन बधी बधी है। जमींदारी कैसे बनी रह सकती है ?

बाकी कुकाने के लिए राम साहब के कारकुन व किसानों पर बढ कहाई की कि उनमें पलवली मज गई। 'सभी गांव गांव के महाजनो के पास रुपये के लिए दौड़े। गांव में मंगकसाह की आजकल बड़ी हुई थी। इस समय उन में उस बख्त फयदा हुवा था। गेहूं और जससी में भी उसने कुछ कम नही कमाया था। पच्छिम रातावीन और शुमारी सहुबाइन भी सेत-वेन करली थी। सबसे बड़े महाजन के हीगुरीसह। लहु बहर के एक बड़े महाजन के एजेन्ट थे। उनके तीले कई आबमी और वे जो आस-पास के बहावों में भूम-भूम कर सेन-सेन करते थे। इनके उपरान्त और भी कई छोटे-मोटे महाजन थे जो दो जाने प्रति रुपये ब्याज पर बिना मिबा पड़ी के रुपय लेते थे। गांव वालों की सेन-सेन का कुछ ऐसा मौक था कि जिसके पास बस-बीस रुपय जमा हो जाते वही महाजन कम बैठता था। एक समय होरी ने भी महाजनी की थी। उसी का यह प्रमाण था कि लोग अभी तक यही समझते थे कि होरी के पास पये हुए रुपय हैं। किसी ने किसी बेबता को सीधा बिना किसी ने किसी को। किसी ने आना कया ब्याज लेना स्वीकार किया किसी ने दो आना।

इस प्रकार महाजना का प्रभाव जम रहा है। गोबर जब शहर में कुछ पैसा कमा सेता है—वह भी मजुरी से नहीं चाय की दूकान जोसकर—तो उसे भी सेन-सेन का बसका पड जाता है। 'जब बहु छोटा-मोटा महाजन है। पकोस के इनके बानी

बाड़ीबालों और घोड़ियों को गुरु पर रपया देता है।" उमरु प्रभाव जमने लगता है। इसी पसे के प्रभाव से इनकेबामा उम स्टेजन पर छोड़ जाता है और एक पमा भाड़ा नहीं लेता। इस मन्-बिकसिन महाजनी या पू आबासी गम्भता का गूनी मन् मोर मोमती है। जमीनार टूट रहा है वह भी इसी पू आबासी पन्ति की धरम में जाने से धपना ममा मानता है। वह जमीन-जामपाद बेचकर कम्पनियों का मन्त होकर बनना चाहता है। इसी में उमरु ममा है। रामामुयप्रतापनिह एक बड्ड क रामरेक्य बन मम है। राममाहब सभा के मिय बाहि के मेयर मने के बार में बिचार कर रहे हैं। दूसरी बार किमान टूट कर मन्तूर बन रहा है। जमीनार क म्मामी के स्वाम पर वह पू बीपनि के मन्तूर-कप में अविठ माम पाता है।

"इस नई सम्मना का बाधार धन है बिछा देवा कुन और जाति सब धन के सामने हेव है।" पंसा ही सभी प्रकार की मच्छार्द-बुर्द की कसौती बन गया है। जिसक पास पार पैसे हैं उसकी सब बुर्दियाँ इक जाती हैं किन्तु जो धपहीन है उसे कोई नहीं पूछता। गोबर जब सहर से अपने गाँव में जाता है तो अपने माँ-बाप से स्पष्ट सबों में कहता है—'हुक्या-गानी सब तो का बिपदरी में बावर भी का छिर मेरु ब्याह क्यों नहीं हुआ ? शोपो ! इसमिय कि पर में रोनी न बी। रुपये हों तो न हुक्या-गानी का काम हे, न जानि-बिरादरी का। हुनिया पंसा की है, हुक्या-गानी कोई नहीं पूछता।' और सचमुच ही हम बचने हैं कि जब मोने राम बाठापीन पनेमरी जावि पाँव के स्वमो को मामूम होता है कि दोबर उनमे भी अधिक कमामे मया है तो सब अपनी हेकड़ी घूम जाते हैं। 'सिबुरी बहुत नीच बनोट करडे भी पक्षी-पीम से ज्यादा न कमा पाते व। और यह पंसार सीका सी रपय कमामे मया उनका मस्त्रक बीका हो गया। अब वह किम दावे से उम पर रोव जमा सकटे वे। अब में वह जरूर ऊँचे हैं मकिन बज कीन देखता है।"

पंसा न मुद कमाकर, पैमे को ब्यापार-उद्योय म मयाकर लोग बड़ रहे हैं। इस पंसे की ही सब महिमा है। भासमी बही सज्जन बही बुद्धिमान और प्रतिष्ठित बही है जिसके पास पंसा है मरीक को कोई आसमी ही नहीं मममता। पसे की जोन में सब अपराध छप जाने हैं। सिबुरी पनेमरी मानराम दाठापीन माठापीन बावि बरपदा ही नहीं बुम्भमबुजा बुकर्म करले हैं उन्हें कोई नहीं पूछता उसका वे हारी बीम बरीबों पर डोड़ मया लेने हैं।

अब पंसे का इतना प्रभाव है कि हममें जाहे जो काम साध मो—इसके बल पर मोकरलाय बीमे पमकारों का मुह बन्द कर लो हाकिम बुकाम पुमिस बावि सबको अपने पक्ष में करलो इसकी बाड़ म जो नेन चाहो खेनी प्रतिष्ठा पायो—तो मोन इस पंसे के पीसे क्यों न पड़ें ? प्रेमचन्द ने अपनी मृग्यु म बोड़े दिन पूर्व जो

महानदी सभ्यता पर नियन्त्र मित्रा था उस महानदी सभ्यता या संस्कृति का सजीव कार्यात्मक रूप वे अपने इस उपन्यास 'बोधान' में पहले ही प्रस्तुत कर चुके थे। पता चला ही इस सभ्यता का उद्भव वग गया है। 'विजनेस' इसका आधार है। Business is business अर्थात् व्यापार व्यापार है, यह इसका नारा है। 'व्यापार एक दूसरा ही शत्रु है। यहाँ कोई किसी का दोस्त नहीं कोई किसी का भाई नहीं। अब रामसाहब कब पान के बिने गिरगिराते हैं तो ब्रह्मा कहता है कि ईश से आपको क्या भिन्नता मुक्ति है पर 'मैं' कोविन्द कहता कि आपके साथ ब्रास रिपारयट की चाय बेचिन Business is business यह आप जानते हैं। पर मेरा कमीशन क्या रहेगा? मुझे आपके लिए ब्रासतीर पर सिफरिज करनी पड़ेगी... यों समझ लीजिय कि मेरी जिम्मेदारी पर ही यह मुकाममा होगा। ब्रह्मा राम साहब के अन्तरङ्ग मितों में से थे। और यह उनसे कमीशन की माता रखते हैं इतनी बेमुरीयती? पर क्या करें यह व्यापार की बात है। चाहे भाई हो चाहे दोस्त अपना नाम क्यों छाड़ा जाय! इस महानदी सभ्यता या व्यापार-बुद्धि का विकास हो रहा है। वास्तव में 'बोधान' में बमीबारी कोष की अपेक्षा महानदी और पूँजीबारी कोष का अधिक प्रसार पाया जाता है। बमीबारी एक ही है पर महानदी कई-कई है। बमीबारी दूर रही है किसान दूर रहा है महानदी और पूँजी पति बढ़ रहे हैं।

### गोदान में धर्म का उकासला

#### बुद्धा के शिष्य-धर्म में धर्म का प्रवक्तृत्व-प्रयोग

प्रेमचन्द ने परम्परागत धर्म की अपने उपन्यासों में स्वतन्त्र-स्वतन्त्र पर नूतन धर्मियाँ उड़ाई हैं। इसके लिए उन्होंने धर्म के मन्त्र का सहारा लिया है। इस धर्म के भूल में हास्य नहीं बुद्धा ही है। हम इन आत्मन्त्रों पर हँस कर नहीं रह जाते अपितु बुद्धा से भर जाते हैं। अब यह सब धीमन्त्र रस का प्रसङ्ग ही है। प्रेमचन्द के धार्मिक धर्म काही पीके होते हैं। अपने 'सेवासदन' में ही उन्होंने धर्म के हठोसे की नूतन धर्मियाँ उड़ाई थीं। महन्त रामदास जो धर्म का ठेकेदार और बकिबिहारीजी का पहरेदार बना हुआ है कितना बुद्धिमान है कितना मुष्टबोद, कितना ज्ञानी। धर्म के नाम पर वह बमीबारी जगाता है। बकिबिहारीजी के नाम पर असामियों से जन्मा-व्यापार-जमान बसूल करता है। किन्तु ही मुसटंटे साधु-मठ उसने अपने अखाड़े में इकट्ठे कर रखे हैं। धर्म का फेसा धीमन्त्र रूप है। मन्त्रियों में बेस्वामी का नृत्यगान होना है। भगवान् भी बेस्वामी के बिना नहीं रीझते। और ये बाड़ी बाध सीनवी तिमक-छापे नामे पण्डित सब रंगे सियार हैं। दरपदा ऐव करते हैं, बेस्वामी है ऊपर से मक्त और जपासक बने हुए हैं। धर्म की जोर में

सब होता है। बेचारा गन्धर्वप्रसाद नीकरी करके तो गुजारा भी नहीं बना सका स्वामी ब्रह्मानन्द बनते ही हजारों रुपये जमा कर मता है। धर्म की कमी महिमा है। 'प्रेमाधर्म' में भी सामग्री पट्टा बाँटि पालों के अन्धविश्वासों और डोंगी धर्म पालों की भूख खिन्नी उड़ाई गई है। 'रङ्गभूमि' में 'जानमनक' की पत्नी और पिता का धार्मिक डोंग को प्रकट किया है।

'आमाधर्म' में प्रेमचन्दजी ने धार्मिक साम्प्रदायिकता को बाँट हाथों मिया है। धर्म के डोंग पर कभी फलती कभी पई है। हिन्दुओं और मुसलमानों में मामूली मामूली बातों पर झगड़े होने लगे हैं। इन झगड़ों को हवा देने के लिए धर्म के अन्धारे धर्म प्रकार ठीकर होने हैं, देखिए—'बोनों के देवताओं के धर्म भ्रम। जहाँ कुत्ते निद्रापासता किया करते थे वहाँ पुजारीजी की धर्म बुद्धि लगी। मसजिदों के दिन किये। मुस्लिमों में अन्धविश्वासों को देखकर कर लिया। जहाँ गौड़ पुजारी करता था वहाँ पीर साहब की इशिया बड़ी। हिन्दुओं ने महावीर का हल बनाया। मुसलमानों ने अमी-बोल मन्नाया। ठाकुरद्वारे में ईश्वर-कीर्तन की बगल बगियों की निन्दा होती थी। मसजिदों में नमाज की बगल देवताओं की वृत्ति। रक्षा साहब ने फनवा दिया—जो मुसलमान किसी हिन्दू औरत को भिक्षात से बाध उसे एक हजार रुपये का सबका होया। मन्नादानन्दन में काशी के पण्डितों की व्यवस्था मँववाई कि एक मुसलमान का भद्र एक लाख पण्डितों से अच्छा है।' कमी निमिता होने वाली बात है।

'कर्मभूमि' में भी महन्त रामदास का माँ महन्त बाबागामगिरि विद्याभाम् है—विचारों अन्धारी और दम्भी। मोने की कुर्मी और मन्मथन के दह पर वह विद्याभता है। राजनी टाट है। तमक मन्हार विद्याम और एम्बर्य की सामग्री से भरे पड़े थे। अमरकान्त सब कुछ देखने पर विचारने लगा 'ठाकुरजी का नाम पर धन का किन्ना अपमान होता है। ठाकुरद्वारे में भक्तों के लिए बगल नहीं। बापटी के समय का कथा में बेचारे भङ्गी-बन्धार सबसे पीछे अलग बैठ जाते हैं। पुजारियों और मन्त्री का कब पकाय होता। जग्ये लकर पीछे पड़ जाते हैं। इन भक्तों की हडि पड़ने से भगवान् अपमान न हो जायें। धिया पड़ने में जान भद्र हो जाय है और भगव भूम और अपमान हो जाता है।

'बोरोन' में भी प्रेमचन्द ने धार्मिक पाखंड की धिन-धिनकर कहियां तोड़ी है। इस रचना तक माते-माते ईश्वर और तथाकथित धर्म के प्रति उनका मन धर्म लगी हो गया था—यह रूप आरम्भ में ही बता चुके हैं। यही कारण है कि उन्होंने ईश्वर के सम्प्रदायत रूप और धार्मिक डोंग को यहाँ भूख बाँटे हाथों मिया। मेइता के भक्तों में प्रेमचन्द ही कहते हैं—'और जो वह ईश्वर और मोक्ष का चक्र है,

इस पर तो मुझे हँसी आती है। वह मोक्ष और उपासना जहङ्गार की पराकाष्ठा है जो हमारी मानवता को नष्ट किया जासकता है। जहाँ जीवन है कीड़ा है चूक है, प्रेम है वहीं ईश्वर है, और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना है और मोक्ष है। जिस ईश्वर का उद्ग रूप बेचारे किसान को छोपण की बक्री में पीमना है जो भय भान परीव को भाम्यवासी बनाने रचता है उसे और उसके गल्लो को उन्होंने हर स्वाद पर अपने व्यङ्ग-बाणों में बीधा है। आरम्भ में ही वह स्पष्ट कहते हैं कि ईश्वर का उद्ग रूप किसान को सदा बराता रहता है। इसी के भय से महाजन की कोई ठग नहीं रखते। बातावीन-जैसे बाह्य तो इस ईश्वर के प्रतिनिधि ही हैं। इनका उपासना वह कैसे हकम कर सकता है। वे चाहे खान स्वयं का व्याज से चाहे बेमार असम करायें किन्तु इनका पैसा कौन रख सकता है? होरी कहता है— 'हमने जिस व्याज पर स्वयं भिये वह तो देने ही पड़ेगे। फिर बाह्य ठहरे। इनका पैसा हमें पड़ेगा? भयवान न करे कि बाह्य का कोप जिनी पर पड़े। बंस में कोई बिल्कुल भर पानी देने वाला घर में दिया जलाने वाला भी नहीं रहता। उसका धर्म-वीर मन लुप्त हो उठा। होरी का विश्वास है कि भगवान ने ही उन्हें मुक्त बनाया है किसी के बस की क्या बात।

और इन बड़े आत्मिया का बाल-धर्म कोरा पाखण्ड है, राय साहब को 'सम्पत्ति के साब-साब राम की भक्ति भी अपने पिता से मिली थी। वह अनुप सब रचाता है और धर्म के नाम पर असामियों से जन्मा संता है। लैंकडों व्यक्ति उनके माती-रिस्तेदार बने हुए उसकी रियासत पर मुफ्तबोरी करते हैं। इन मुफ्तबोरों की भक्ति और धर्म का मजाक उड़ाते हुए प्रेमचन्द कहते हैं— 'एक बच्चा साहब राधा के अनन्य उपासक थे और बराबर वृन्दावन में रहते थे। भक्ति-रस के कितने ही फव्वार रच गले थे और समय-समय पर उन्हें छत्राकर दोस्तों की घेंट कर देते थे। एक बूझरे बाबा थे जो राम के परम भक्त थे और फरसी-भापा में रामायण का अनुवाद कर रहे थे। रियासत से सबके बचीके बचे हुए थे। किसी को कोई काम करने की जरूरत न थी।

जब होरी गोबर से कहता है कि मासिक चार बड़े रोज भगवान का भजन करते हैं भगवान की उन पर क्या धर्मों न हो? तो गोबर व्यङ्ग करता हुआ कहता है— 'यह पाप का घन पत्रे कैसे? इसीलिए बाल-धर्म करना पड़ता है।—सूने लगे रहकर भगवान् का भजन करें तो हम भी देखें। हमें कोई बोना बून खाने को दे तो हम माठों पहर भगवान् का पाप ही करते रहें। एक दिन बेत में उठ्य मोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जायें।"

इन छपा विमर्क-धारियों की कासी नरतुत का निस्तुत चित्र समाया प्रस्तुत

करती है। वह एक पवित्रता की सुश्रुति का निस्सा मुनाती हुई बहती है—  
 बरसों से दूध नकड़ बाजार आती है। एक-एक बाहु महान्न ठाकुर, यहीम अमम  
 अष्टमर अपना रसिमापन बिबाहकर मुक्त पछा सना चाहत है। एक पण्डितजी बहुत  
 निसक-मुद्रा लगात है। आधा सेर दूध मते है। एक दिन उनकी घर बासी कही  
 नेबते म गई थी। मुझे क्या मासूम। और दिनों की तरह दूध लिए भीतर बसी गयी।  
 बहो पुकागी है, बहूजी बहूजी! 'इतने में देखती है तो पण्डितजी बाहर के किनाड़े  
 बन्द जिसे बने या रहे है। मैं समझ गई 'मरी नीयत बराब है। मैंने डाँटकर  
 पूछा—तुमने बिबाह क्यों बन्द कर लिये? क्या बहूजी कही गई है क्या?  
 वह मेरी ओर तो गम और बढ़ गया। मैंने कहा—'तुम्हें दूध सना हो ता  
 सो नहीं मैं जाती हूँ। बोला—आज तो तुम यहाँ म न जाने पावोगी मूना रानी  
 रोज रोज कनक पत्र छुरी बसाकर भाग जानी हो। तुमसे सब बहती हूँ गाबर  
 मेरे रोएँ बड़े हो गये। मेरी छाती छक-छक करने लगी। यह कुछ बदमासी कर  
 बैठे तो क्या करूँगी। कोई बिज्जाला भी तो न मुनवा मेकिम मन में यह निश्चय  
 कर लिया था कि मेरी देह छुई तो दूध भी मरी हींही उसके मुह पर पटक दूँगी।  
 बसा संधार-गंध सेर दूध जायमा। कसेबा मबबूत करके बासी—इस फेर में न  
 रहना पण्डितजी! मैं बड़ीय की मइवी हूँ। मूछ का एक-एक बात बृनवा झूगी।  
 यही सिखा है तुम्हारे पोथी-पत्रों में कि दुसरो की बहु-बेटी को घरने घर बन्द करके  
 बैइत करे। इसीलिए निसक-मुद्रा का जाल बिछाये बैठे हो?—मैंने नोन जमीन पर  
 विर सिये और हाथ की ओर बसी तो उसन मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं तो पहिल  
 से ही तैयार थी। हाँही उसक मुह पर दे मारी। सिर स पाँच तन सरबार हो  
 बसा। पोट झूब लगी। सिर पकड़ कर बैठ गया—मैंने पोट म दो तालों बसा बी  
 और बिबाह बोलकर पायी।"

चोकर टट्टा मार कर बोला—बहुत अच्छा किया तुमने। दूध म नहा गया  
 होया। निसक-मुद्रा भी पुन गंधी होयो। मूछें भी क्यों न उछाड़ लीं?

"दूमरे दिन मैं फिर उसके घर गयी। उसकी घर बासी जा गयी थी।

मैंने कहा—क्यों तो कम ही तुम्हारी करतून काम हू पण्डित। सगा हाथ जो-मे।  
 मैंने कहा—अच्छ धूककर जाना ता छोड़ू। मिर जमीन पर गमद घर बहने  
 लया—बब मेरी गमद तुम्हारे हाथ है मूना "मुझे भी उम घर क्या जा मयी।"

पोत्रर को उसकी क्या बुरी लगी—'यह तुमने क्या किया?—'ऐसे पल्ल  
 दिनों घर क्या न करनी चाहिये। तुम मुझे बल उमकी मूरल बिबाह बा। फिर देखना  
 केमी मरमत करता हूँ।"

इस प्रसङ्ग में बीमध्य रम का पुन परिपाक हुआ है। सुश्रुति सम्प

पण्डित आत्मधन है। उसका जबरदस्ती करने का प्रयत्न हमें करना चाहिए। हाथ पकड़ना चाहिए। उड़ीपन-विषाण है। शुनिमा और गोबर के बाधिक अनुभव बहुत स्पष्ट हैं। शुनिमा-द्वारा बूझ की मदकी मारना सात मारना माफ़ रमझना। बाधिक शारीरिक अनुभव हैं तथा रोमांच कम घटन बाधिक सांत्विक अनुभव हैं। आत्मिक क्रोध भय मति भुक्ति साहस विनय परमात्माप्य व्यंग्य और हास्य बाधिक कितने ही सच्चायी भाव रस को परमपुरुष कर रहे हैं। धर्म के पाखण्ड पर धर्म भी स्पष्ट है।

परम्परागत शास्त्र धर्म की प्रेमचन्द ने जब धृष्टिवाई उड़ाई है। यह धर्म भी विपत्ति डकोसला है। 'हमारा धर्म है हमारा भोजन। भोजन पवित्र रहे फिर हमारे धर्म पर कोई आँख नहीं आ सकती। रोटीयाँ डाल बनकर अन्न से हमारी रक्षा करती है। कौसी बहिया पकती है शास्त्र शास्त्रीय और उनके बेटे मातापीन क पाखण्ड धर्म पर। 'मातापीन एक चमारिन से फँसा हुआ था। इसे सारा बाँध बानसा था पर वह तिनक लगाता था पोषी-मत्त बाँधता था कबा-मापक कटता था धर्म-संस्कार करता था। उसकी प्रतिष्ठा में बरा भी कमी न थी। वह तिन स्नान-पूजा करके अपने पापों का प्रायश्चित्त कर लेता था। अब चमारों ने देखा कि यह शास्त्र हमारी लड़की को ब्रह्म करने काप मजे से नेमी-धर्मी बना हुआ है, तो उन्होंने मातापीन के मुँह में हड्डी लुका ली। बस फिर क्या था मातापीन का धर्म ब्रह्म हो गया। वह अब पण्डित कैसे कर सकता है? कबा-बार्ता भजन-पूजन कैसे करे? वह पण्डित हो गया। बाँधी के पण्डित जब बड़ा भारी प्रायश्चित्त कराते हैं, शान-भोजन उड़ाते हैं और मातापीन को 'गाम का गोबर और कुछ मूत्र बिलखे पिनाते हैं तब बाँकर उसका धर्म कुछ ठिकाने पर आता है। कस्ता धर्म है यह! प्रेम चन्द का मार्मिक व्यंग्य देखिए— 'जब हड्डी के टुकड़े ने उसके मुँह को ही नहीं उसकी आत्मा को भी अपवित्र कर दिया था। उसका धर्म इसी जाल-पान कुल बिचार पर टिका हुआ था। आज उस धर्म की बड़ कट गई। अब वह साब प्रायश्चित्त करे साब गोबर बाँध और गंगाजल पिये साब शान-पुष्प और तीर्थ-घट करे उसका मरत हुआ धर्म भी नहीं सकता। अगर मकैय की गात होती तो छिगा ली जाती यहाँ तो सबके सामने उसका धर्म मुटा।

प्रायश्चित्त के डोंग ने मातापीन को भी सजग कर दिया। वह इस डोंगी धर्म को तिसाख्यमी बेकर अपनी प्रेम की बेबी के मखिर का पुबारी बन पाता है। प्रेमचन्द का मार्मिक व्यंग्य देखिये— 'मातापीन को कुछ गोबर और थो-मूत्र बाँध-पीना पड़ा। गोबर से उसका गम पवित्र हो गया। मूत्र से उसकी आत्मा में अमुषिता के कीटाणु भर गये। अन्तिम एक तरह से इस प्रायश्चित्त ने उसे सचमुच पवित्र कर

## बैवाहिक पद्धति के दोष

निम्न) हवन के प्रबन्ध अग्नि-मुग्ध में उसकी मानवता निहार गई और हवन की भासा के प्रकाश में उमने धर्म-सुग्धों को अच्छी तरह परख लिया। उस दिन स उसे धर्म के नाम से चिढ़ा हुआ था। उमने जनेऊ उतार फेंका और पुरोहिणी को गङ्गा में डुबो दिया। धर्मपूण बचन-वक्तृता का कंसा बढ़िया उदाहरण है।

इयुना-भक्त नोछराम 'प्राण' नाम पूजा पर बैठ जाते थे और इस बने तक बैठे राम-नाम लिखा करते थे मगर जयबाल के सामने से उठने ही उनकी मानवता बिहट्ट होकर उनके मन बचन और कर्म सभी को बिपाक कर देती थी। 'भासा पनेखरी मौब में पृथ्व्यामा मसाहूर के। पूषमाडी का नित्य सत्यनारायण की कथा सुनते थे पर पटवारी होने के नाते केन बेमार में जुलवाते थे सिचाई बेमार में करवाते थे और जमानियों की एक-दूसरे से मझाकर रक्में मारत थे।' इन झूठे नेमी-समियों की प्रेमचन्द ने कुछ खबर ली है। इनकी कानो करतूतों का कथा चिट्ठा लिखा कर स्पष्ट किया गया है कि यह धर्म कितनी कभी रेत की नीवार पर टिका हुआ है। कबीर जादि प्राचीन सन्तों में भी अधिक सजीब रूप में प्रेमचन्द ने बाइबली धर्म के किसे की ईंट से ईंट गजार् है। लम्ब में भी धर्म और समाज पर खबरदस्त धर्म्य किया गया है। जो किमान सारी उम्र भूषा-नङ्गा रहा एक गाय को घर रखने की जिसकी घाघ कभी पूरी नहीं हुई उसीसे मरते समय गो-दान की आना की बाती है। होरी के प्राय-यत्नेर उ; रहे हैं। कई आवाजें आई—हूँ मोरान करत हो यही समय है। और बेचारी खनिया घर में जो बीस जाने सुगसी बेचकर उमन बनाये थे उन्हें खनारीन को बे देती है—महालय घर में न गाय है न बछिया न पसा। यही पंसे है यही इनका गोदान है। नेमी बिडम्बना है। मरते समय भी धर्म शोषक उपस्थित है।

प्रेमचन्द के गोदान तथा अन्य उपन्यासों में बैवाहिक पद्धति के दोष प्रामाण्य विवाह के निम्न निम्न रूप

प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में परम्परागत भारतीय बैवाहिक पद्धति की कुछ खबर भी है। इसके दोषों की उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में स्वात-स्वात दिखाया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में अनेक विवाह के अनन्त बिल पाये जाते हैं। निम्न हमारी परम्परागत बैवाहिक पद्धति की कुछ खिझी उड़ाई है।

प्रेमचन्द अपने व्यक्तिगत जीवन में स्वयं इस पद्धति के निवार बने रहे हैं। के पिता ने बुझाये में दूसरी लाने की थी। उनका अपना विवाह बंसेल था यह पढ़म कह जाये हैं। इस व्यक्तिगत विपरीतता को समाज में सबब पाकर—और अनेक घर में अनेक क्यों में पाकर, प्रेमचन्द को विराप उरोचना मिली। उनके प्राय



प्रत्येक उपन्यास में कोई-न-कोई वैवाहिक विषयमा का चित्र अवश्य पाया जाता है।

कहीं विवाह वय की दृष्टि से अनमेल है और उसके भिन्न-भिन्न रूप और भिन्न-भिन्न कारण हैं। कहीं वंश की समस्या के कारण धूम-धौ कन्या को अमेड़ या दूम आदमी से बाँध देने का दोष है या अंध-बुढ़ाप से व्याह्र देने की विषम परिस्थिति है तो कहीं अतिशय और अन्ध-परम्परा से बाल-विवाह की कुरीति है। कहीं वृद्ध विवाह की भावना है तो कहीं माँ-बाप पैसा लेकर सड़की को बूढ़े के हवाले कर देते हैं।

कहीं पति-पत्नी के स्वभाव और विचारधारा की विषमता बेमेल विवाह का स्वरूप बनी है। व्याह्र-भावी में स के-सड़की की प्रकृति पीठि का मिश्रण करने की बजाय जब रुपये-पैसे की माप-जोख से व्याह्र होया तो विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी ही। हमारे समाज में विवाह एक इकोनोमी बन गया है। रुपये-पैसे की दृष्टि से रिस्ते-भाते होते हैं या अन्धबुद्धियाँ मिलाई जाती हैं। माता-पिता-भ्राता की पई ऐसी छादियों के दुष्परिणामों को प्रेमचन्द ने अनेक स्थानों पर प्रकट किया है।

कहीं अर्थ के अन्तरे से एक और दुपय उत्पन्न हुआ है। अमीर की सड़की तरीक से कैसे व्याही जा सकती है? चाहे दोनों का सामाजिक प्रेम 'सरिकाई को प्रेम' बनकर विकसित हुआ हो मा-बाप अपनी मर्जी से ही चादी करते हैं। जिनकी चादी होती है उनकी इच्छा-अनिच्छा की कोई परवाह नहीं की जाती। भावनाएँ कुचल दी जाती हैं। 'बरवान' में यही हुआ है।

अपने आरम्भिक उपन्यास में ही प्रेमचन्द ने नारी की विषमता का भिन्न-भिन्न आरम्भ कर दिया था। 'कटी रानी' में सामन्तवादी दूषित वैवाहिक पद्धति है जिसमें नारी की गूँघ आत्मा छपटाती रहती है। 'बरवान' में अर्थ के अन्तरे से वैवाहिक दूषण उत्पन्न हुआ है। निरधन अमीर माता पिता की सड़की है प्रताप निर्धन है। दोनों का बालपन का सामाजिक विकसित प्रेम समाज की ऊँच-नीच की बीमार से टकरा कर रह जाता है। अमीर पिता तरीक सड़के से अपनी सड़की की चादी कैसे कर सकता है! अन्ध विरह के पिता अपनी ही हँसियत के डिप्पी व्यामर्श के सड़के कमलाचरण को योग्य बन मान कर विरह की चादी उससे कर देते हैं। विरह और प्रताप दोनों मन मसोस कर रह जाते हैं। प्रेमचन्द ने दिखाया है कि हमारी वैवाहिक पद्धति का एक बहुत बड़ा दोष यह है कि इसे अत्यधिक परम्परागत सामाजिक रूप प्राप्त है। झूठी सामाजिक मर्यादाओं के पालन को महत्त्व दिया जाता है। विवाह का कोई व्यक्तिगत पहलू भी है और उसका भी बड़ा महत्त्व है यह दृष्टि नहीं की। सड़की को एक बी की तरह जहाँ माता पिता की इच्छा होती भी वे मानते

ये । सड़के-सड़की की हज्जत-अनिच्छा की कोई परबाह नहीं की जाती थी । यह बिराग और प्रताप की दृष्टि ही है ।

प्रतिष्ठा में पति-पत्नी में स्वभाव और बिचारों की बिपमता में पारिवारिक जीवन में उत्पन्न होने वाले दोष दिखाए गये हैं । कमसाप्रसाद और सुमित्रा के बैबाहिक जीवन में यही बिपमता है । यह बिपमता इमीमिए उत्पन्न होती है क्योंकि सड़के-सड़की की अगम-कृच्छ्रलियाँ ही यों-बाप मिलाते हैं । दोनों की प्रकृति मित्रा स्फुटार के मिलाप करने की उन्हें दृष्टि ही नहीं मिली है । वे अपनी हीमियत मिलाते हैं और अपने-वैसे पर रिस्ते-भाते होते हैं । कमसाप्रसाद और सुमित्रा के बैबाहिक जीवन के दो-बार महीने ही बीन से गुजरे होंगे । 'अ्यों-अ्यों दोनों की प्रकृति का विरोध प्रकट होने लगा दोनों एक-दूसरे से बिचने लगे ।'—सुमित्रा में नम्रता बिनय और दया की कमता में बमण्ड उच्छ्वस्नता और स्वार्थ । एक वृद्ध का बीन बा मरु पृथ्वी पर रगने वाला । उनमें मेस कैसे होता । सोसुप कमसाप्रसाद बिघबा पूर्ण को फँसाना चाहता है । पुरुष की यह सोसुपता पत्नी कैसे बर्दाश्त कर सकती है ? प्रतिष्ठा में हमारी बैबाहिक पद्धति का एक अभाववात्मक दोष यह प्रकट हुआ है कि समाज में बैबाही बिघबा का बीन अमिच्छाप बना हुआ है । बिघबा-बिबाह निवेद्य तथा बिघबा नारी के सरलज और बीन निर्बाह की ब्यवस्था का अभाव उसके बीन की बिडम्बना बन जाते हैं ।

पति-पत्नी में बिचारों और स्वभाव की बिपमता तो फिर भी परिस्थितियों से समझौता कर ली है । स्वभाव बरस जाते हैं या एक पल झुक जाता है, तो काम बस जाता है । कमसा-सुमित्रा के अतिरिक्त 'गोमन' के ब्रह्म और गोबिन्दी के बीन में यही हुआ । पर बय और बाकृति के अनमम से जो बिपमता उत्पन्न होती है वह समझौते के लिए भी बुझाईस नहीं छोड़ती । 'मबासदन' और 'निर्मला' में मेमबन्द ने दिखाया है कि भारतीय नारी बिपम परिस्थिति में समझौता करना चाहती है पर यह बिपमता ही ऐसी है—यह गाँठ ही ऐसी है कि सम्बन्ध-सुन को तोड़ बाकती है । 'मेबासदन' और 'निर्मला' दोनों में बय की बिपमता का मूल कारण ब्येज की प्रभा है । बहेज की कुप्रभा के कारण ही सुगम के मामा उमानाव और निर्मला की माता अपनी-अपनी कन्या के लिए योध्य बुझक बर प्राप्त करने में असमम रहते हैं । जहाँ-कहीं फिरी छाते-पीते नबगुलक को बूझा जाता है वही बहेज की मन्वी-बीड़ी मौन हा जाती है ।

निर्मला का बिबाह उसके पिता ने बाबू भालचन्द्र मिश्रा के सुवक पुत्र सुबन मोहन मिश्रा से तम कर रखा था । परन्तु बुर्जामिक बाबू उदयमानु की मृत्यु हो गई । निर्मला के पिता की मृत्यु के पश्चात् सोसुप बाप-बेनो ने बहेज पूरा न मिसने

की मासिकता से बात तोड़ बाली और निमसा से शादी करने से इन्कार कर दिया।

मुनममोहन 'निर्मला' का एक विचित्र मध्यवर्ग है। उसकी घन-सोमुपता एक और विचित्रता प्रकट करती है। वह निर्मला से शादी करने से इन्कार करता हुआ अपने पिता से कहता है— 'वही ऐसी जगह शादी करवाइए कि कुछ खर्चा मिले। और न सही एक गाछ का बीज भी हो।' वह इसके लिए यहाँ तक तैयार है कि औरत कँधी ही हो— 'उन सारे ऐबों को छिगा देगा। मुझे वह पामियाँ भी मुनाने का न कष्ट। बुझाव गाय की रात किसी बुरी मामूम होनी है। प्रेमचन्द का व्यर्थ कितना मामिम है।

बिकन होकर जेठेजोरी का मुँह न कर सके के कारण निर्मला की माता अपनी पंद्रह वर्षीया फूल-सी बच्चा का विवाह ४० से भी ऊपर के एक दुहाबू सम्पन्न बकील लोठाराम से करती है। निमसा की दुःखी केवल बच की विपमता की दुःखी ही नहीं है। वह लाला लोठाराम के घर में तीन बच्चों के लिए बिमाता और अथर्व बड़े पति के लिए नव विक्रमित बसिना और अतुल-सामसा पत्नी एक बूझा मन्द के लिए लटकने वाली गृह-न्यायिनी बहू मरने के झूठे साजनों का शिखर बनी बिमाता तथा नवयुवक पुन और नवयुवती पत्नी के बीच अनुचित सम्बन्ध का भ्रम करने वाले संसामु पति की पत्नी बन जाती है। वह बच्चों से सार्विक स्नेह रखने पर भी प्लक्षित की जाती है। वह सकल मनमा के प्रति स्नेह को पति सन्नेह की दृष्टि से देखने लगता है। पति उसे पिता-मुन्य समता है मत वह उसकी अकूवायिनी होते मिलकती है। पति का सन्नेह बढ़ता है। वह सद्य बड़े बड़े ममसा को पीछे करता है। साथ घर लबाह हो जाता है। बेटे मर जाने हैं। लोठाराम की सम्पत्ति खू हो जाती है। शान्ति छिन जाती है। वह भी ऊबकर घर से चले जाते हैं। निमसा पुन-पुन कर घर जाती है। मरते समय वह अपनी 'नन' से जो शपथ कहती है वे अत्यन्त मामिम है— 'बीबीजी बच्ची को आपकी दोह में छोड़े जानी है। अमर बीटी चागती रहे तो अच्छे कुल में बिबाह कर दीजिएगा। मैं तो इसके लिए अपने जीवन में कुछ न कर सकी। केवल अम्य हैने घर की अपराधिनी हूँ। 'चाहे क्वारी रक्षिएगा, चाहे बिय देकर मार डालिएगा पर कुपाय के बस न मझियेगा। इतनी ही आपसे मेरी शिख है।'

'सेवासदन' में भी मुमन का बिबाह जेठेजोरी के एक कुचप एवं निर्ले व्यक्ति बजाधरप्रसाद से होता है। कहीं तो लाड़-प्यार में पत्नी कुल-सी सुन्दर कनी मुमन और कहीं गजाधर प्रसाद। यह विपमता ऐसा विप-बुल बोटी है जिसका बहर समान को भी खड़ जाता है। दुहाबू बति सहन ही संभवानु हो जाता है। मुमन के जीवन की विपम परिस्थितियाँ कितने उगे बैख्या बना डालती हैं। वह हम

‘सेवाश्रम’ के प्रकरण में अच्छी तरह दिखा जाए है।

सेवाश्रम में हमारी बैबाहिक पद्धति के और भी कई प्रकार के दोष बताये गए हैं, जैसे ध्यात-दायियों में अत्यधिक खर्च करना, बेव्यालों के व्यर्थ आदि करता तथा सब से बचकर वह भूमी मर्यादा की दुर्गति त्रिकोण के कारण सुपन के फलरूप से उनकी बहुत दृष्टिगत हो जाती है। सुपन का रिता सुपन बाया बापस सीमा में जाता है और सुपन यथा कामता है जब उसे मायूम होता है कि जानता की बहुत सुपन बमारा में केवला बनी हुई है। वह ऐसे घर में अपने लड़के की मायी बने कर सकता है ?

‘निर्माणा’ में प्रेमचन्द ने नारी जीवन की एक और विषमता का बिना भी प्रस्तुत किया है। वह है सुधा का जीवन। उसका जीवन की दुःखी भी बय महत्त्व प्रकट नहीं है। प्रेमचन्द ने स्पष्ट कर दिया है कि बय की विषमता तो विषमता है ही सब की समता के भी कई कारणों से विषमता रहती है। हमारी विवाह-मत्वा एक इकोनता ही है। स्वभाव और मन के मैम का बड़ा ध्याम ही नहीं रखा जाना। स्वयं की बलिबा से विवाह के नीचे होते हैं। सुधा और राबटर का प्रेम बापु की भीम पर ही स्थित था। डा० मित्रा को अपने मातल का फल भुपयता पड़ना है।

‘प्रेमश्रम’ में प्रेमचन्द और सुधा में विविध विषमता है। यहाँ एक पनि पयवता पयवता-पयी नारी है। उसका पनि प्रेमचन्द विरक्त हो जाता है। उसे यही बात मर्यादा के बिना लगती है और पनि में स्थिती रहती है। निश्चय ही यह विद्या और विचार-विषय भी हमारा ब्रुवित बैबाहिक पद्धति के कारण उत्पन्न होता है। जलजल और विद्या में विषमता का पुनरा रूप है। विद्या एवं धर्म-मायमी सच-दिखा नारी है। उसे अन्याय पापन और मानुषता में बुरा है। पनि के कृष्णों से वह बिना रहती है। जलजल और अन्यायी व्यवहारी और मानुष व्यक्ति है। पत्नी को ऐसे पनि की पतिव्रता मतावृत्ति की बलि चढ़ना पड़ता है।

‘बचन’ में रत्न का विवाह उसके मामा एक बड़े सम्पन्न बकीस साहब से कर देते हैं। पछि कुछही रत्न अपने पनि के घन से नमकर ही अपने को समुद्र रहती है पर उनकी विषय जीवन परिस्थिति पर कल्प-परिणाम प्रेमचन्द ने बहुत अच्छी तरह दिखाया है। उनसे वह समुद्र दिखाई देती है पर जीवन में इसी विषमता के कारण उसका मानुष रिक्त रहता है। उसका अनाम-मस्त मानुष हरदम भीन्कार करता है। हमने, बड़े पनि से नारी का परिणाम यह होता है कि राती बूझा पनि भीत्र ही नम बगता है। हमारे प्रयत्न करने पर भी रत्न उसे नहीं बचा सकती। और फिर बैबाहिक का बड़ी कारभारिक बिना प्रकट होता है जो हर हिन्दू विद्या के माध्य में बसा है। रत्न अचहाय हो जाती है। उसकी जन-समयलि

बकीस साहब के भतीज-बारा सून भी जाती है। रतन बेसहारा निर्जन कच्चाग बनावे दी जाती है। मणिभूषण ( इन्द्रभूषण बकीस का भतीजा ) रतन से शाफ कहता है कि सम्मिलित परिवार में एक विधवा का कोई अधिकार नहीं।

'रतन—मैं अपने गर्मावा की रक्षा आप कर सकती हूँ। तुम्हारी मदद की जरूरत नहीं। मेरी मर्जी के बगैर तुम यहाँ की कोई चीज नहीं बेच सकते।

मणिभूषण ने बख्श-सा भाव—आपका इस घर पर और बाबाजी की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं। वह मेरी सम्पत्ति है। आप मुझ से केवल गुजारे का खर्चा कर सकती हैं—सम्मिलित परिवार में विधवा का अपने पुरुष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता।

और बचारी रतन वैधव्य का अधिनाय अनुभव करने के बाद कहती है—“न जाने किस पापी ने यह कानून बनाया था कि स्त्री का पति की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं है। अगर ईश्वर कही है और उसके यहाँ कोई न्याय होता है तो एक दिन उसी के सामने उस पापी से पूछूंगी—क्या तेरे घर में माँ-बहिनें न थीं? तुम्हें उनका अपमान करते मज्जा न आई? अगर मेरी बचान में इतनी ताकत होती कि सारे देश में उसकी आवाज पहुँचती तो मैं सब मिस्यों से कहती 'बहनो किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना और करना हो तो जब तक अपना घर अलग न बनाओ तब तक नींद मत सोना। क्या यह आवाज हिन्दू कोडबिन के निर्माण की भूमिका नहीं है? वैवाहिक जीवन की विषमता के और भी कई मकेट प्रेमचन्द ने दिये हैं। वन से ही गरीबी का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं होता। आसपास की एक सहेली का पति बिहान भी है और धनी भी पर है बेकामामनी। दूसरी सहेली का पति बहुत पढ़ा-लिखा है एम ए० पास है पर सदा रोमी रहता है। रोगी पति से स्त्री कैसे प्रसन्न रह सकती है? अतः वन या विद्या ही वैवाहिक जीवन की सुख शान्ति के कारण नहीं हैं। वन और सचरित्रता तथा स्वास्थ्य बारीकियों की समस्या भी आवश्यक है।

'एक भूमि' में राजा महेंद्रगुमारसिंह और उनकी पत्नी हनु में विचारों और स्वभाव की विषमता है। धर्मों और सुभाषी का बाड़ा भी विषम है। इस रचना में प्रेमचन्द ने विनय और सोफिया के रोमांस को प्रस्तुत किया है। हिनू और ईसाई का रोमांस है, बीच में धर्म की बाधा है। सोफिया के माता-पिता कुहार्ड मचाते हैं। विनय की माता का हिनू धर्म का बाधा है। परन्तु फिर भी प्रेमचन्द चाहते तो दोनों को मिला सकते थे क्योंकि दोनों स्वतन्त्र विचारों के एक प्राणी हैं, पर धर्म प्रेमचन्द ने भी धर्म के भय से ऐसा नहीं किया है। दोनों धर्म की खोरी पर अफोरे जाते रहते हैं और आराम-अभिमान के पत्र पर अग्रसर हो जाते हैं। धर्म की इस

बाह्य पद्धति के बाप

विवाह को तोड़कर भी प्रेमचन्द स्वमित से निश्चेष्ट रह गये।

‘आपाकस्व’ में विषयता का एक और रूप—‘बड़ी रानी’ नामा सामन्तीय का उभर बाबा है। राजा विद्यामणिह के लिए भारी बिलाम का एक माघन है। वह बार-बार आदिवा करता है और प्रत्येक नारी को नूँचे हुए फूल की तरह घेंट देता है। नारी-जीवन की कैसी कदम परिकल्पित है! कैसी विषयता है! रोहिणी की दुर्घटी आत्मा राजा से कहती है—“आपने मेरे साथ कोई अन्धकार नहीं किया। आपने बही किया जो सभी पुरुष करते हैं। स्त्री कभी पुरुष का विनीता है कभी उसके पैरों की कुनी।

बहुला और जटिल का विचारित जीवन इसलिए मुझी नहीं हो सका क्योंकि बहुला अपने पति के स्वभाव के विपरीत ऐश्वर्य-मुक्त-जीव और विचार म ही जीवन का मुक्त मामली थी।

‘मोना’ में प्रेमचन्द ने विषय दाम्पत्य जीवन के कई बिन्दु प्रस्तुत किये हैं। ‘जमा और मोदिनी’ में नहीं पड़ती। प्रेमचन्द व्यक्त करते हैं—“यहाँ नहीं पड़ती यह कहना कठिन है। व्योमिष के हिसाब से उनके घरों में कोई विरोध है। हमलांक विवाह के समय यह और लज्जत कुछ निजा लिए गए थे। पटे कैसे? विवाह जन्म पत्नी मिलाने से होता है स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलाई जाती या फिर घन के माध्यम पर होता है। दोनों में स्वभाव की विषमता है। जमा घन-दीनव का मत बाना ऐश्वर्य-मन में बुर, सम्पत्, रचित विद्यामयिष घन को ही सब कुछ समझने वाला आदम्बर प्रिय व्यक्ति है। वह स्वच्छन्द विहार करता है। पर मोदिनी सरल हृदय की आरतीय नारी है। ‘यह अपार सम्पत्ति जैसे उसकी आत्मा को कुचलती रहती है।’ आदम्बरों और पात्रार्थों में उसे घुसा है। नारी और सब-कुछ सह सकती है पर पुरुष की पर-स्त्री-सम्पत्तिका नहीं सह सकती। जमा मानती के पीछे बीबाना बना फिरना है फिर पटे कैसे? यह वैवाहिक पद्धति का दोष है, यह पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था की लानि है।

ऐसा ही एक और बिल बंजिए। रायगाहब अग्रप्रापसिंह की पुत्री मीनाक्षी का विवाह के कुछ दिनों बाद ही पति से सम्मान विच्छेद हो जाता है। ‘साधारण हिन्दू धर्मिकाओं की तरह मीनाक्षी भी ब्रह्मचर्य की। बाप ने त्रिमके साथ व्याह कर दिया उसके साथ बली गई अकिम स्त्री-पुरुष में प्रेम न था। विभिन्नपरिमिष्ट देवाक्ष की से करावी थी। मीनाक्षी भीतर-ही-भीतर कुङ्कुमी रहती थी। पुस्तकों और पत्रिकाओं में मन बहपाया करती थी। विभिन्नपरिमिष्ट—बड़ा मयकर, अपनी कृपा प्रणिष्टा की रीत मारने वाला व्यवस्था का निर्देशी और कृपण। जीव की नीच भाषि ने यह ऐतिहासिक पर शरीर डाला करता था। सोहबत भी नीचों की थी जिसकी सुभावद ने उसे

और भी बुलामदपसन्द बना दिया था। मीनाक्षी ऐसे व्यक्ति का सम्मान जिस से न कर सकती थी। मीनाक्षी गुजारे का दावा कर रही है, बिम्बिज्यासिंह ने उस पर उस्ता बदचमनी का आरोप लगाया।

‘एक दिन वह घोष में आकर हस्टर लिए बिम्बिज्यासिंह के बेगने पर पहुँची। मोहरे जमा थे और बेरया का नाच हो रहा था। उसने रणचम्पी की भाँति पिछाचों की इस चाण्डाल-कोकड़ी में पहुँच कर तहमका मचा दिया। हस्टर छा-छा कर लोप हसर-उसर भागने लगे। इतना मारा कि कूबर साहब बेचम हो गए। बेरया अभी तक कोने में दबकी खड़ी थी। अब उसका लम्बर आया। मीनाक्षी हस्टर छान कर जमाना ही चाहती थी कि बेरया उसके पैरों पर गिर पड़ी। मीनाक्षी ने उसकी ओर घृणा से देखकर कहा—‘हाँ तू निरपछ है। जानती है न मैं कीन हूँ? जानो ना। अब कभी यहाँ न आना। हम ज़िन्दा जोग-बिलास की बीबें हैं ही तेरा कोई दोष नहीं। पुख्त की बिलाम-वृत्ति का कौसा बिनाना कम है? मीनाक्षी का प्रत्येक कुरब पाठक के हृदय के घृणा भाव को कुछ एव कुछ करता है। उसकी घृणा से हमारा तात्कालिक हो जाता है। छोड़-मिथित घृणा का यहाँ कौसा सुन्दर पल है !

यही रामसाहब अमरप्रतापसिंह बैठे उग्रप्राण का विवाह भी अपनी प्रतिष्ठा और मर्यादा की बुराई केरु रामा मूर्खप्राणसिंह की लड़की से अपनी मर्जी के मुताबिक करना चाहते हैं पर वह तो लड़का का—निन्दर, स्वच्छन्द विचारों का। इसीसे बाप ने शांति में न आया।

छहरोँ में यह विपत्ति पुख्त की सम्पत्ति और स्वभाव की चरित्रता के कारण उत्पन्न होती है जिसके मूल में है घन-सम्पत्ति का शोष। गाँव में विपत्ति का कारण है विषमता। ‘होरी’ की बला बिल बिल गिरती जा रही थी। सकल गधा बँस गए बेटी नहीं रही अब जमीन से भी बेदखल होने वाला था। इसी समय पूर्ण बातालीन आपत्काल का धर्म बसाता हुआ कहता है—‘आपत्काल में श्रीरामचन्द्र ने सबरों के झूठे फल खाये थे वालि का छिप कर बच किया था। जब सफ़ूट में बड़े-बड़ों की मर्यादा टूट जाती है तो हमारी-गुम्हारी कीन बात है। रामसेवक महतो को जानते हो न? यह बड़ा अच्छा बीसन है। लड़की का ब्याह भी हो जायगा और गुम्हारे बेट भी बच जायेंगे। सारे खरब-बरब से बचे जाते हो।

‘रामसेवक होरी रो बो-ही-बार साफ छोटा था। ऐसे आदमी से क्या के ब्याह करन का प्रस्ताव ही अपमानजनक था। कहाँ फूल-सी क्या और कहाँ वह बड़ा ठूठ ! परमति मानसिक इन्द्र के बाद होरी-धनिबा बूढ़े रामसेवक से क्या का विवाह कर देते हैं। यह एक तरह से लड़की बेचमा ही हुआ। बातालीन ने चुपके से सी-सी के बो मोट होरी को बिये। होरी ने रुपये बिये तो उसका हाथ काँप रहा

## वैवाहिक पद्धति के बीच

बा। उसका मिर उमर न उठ सका मुँह से एक आश्चर्य निश्चयता ———आश्चर्यमय मान  
 एक जीवन म नहते रहने के बाद वह परात्म हुआ है और एसा परात्म हुआ है  
 कि मानो उसको नगर के द्वार पर बाँध कर दिया गया है और जो आता है, उसके  
 ३ मुँह पर बूट देता है। वह भिन्ना-भिन्ना कर रह रहा है आदमी में दया का  
 पात्र है ०

बाँध का दूसरा बिन्दु है मोमा और मोहरी का। मोमा अपने बुझने में दूसरी  
 छपाई से आता है। औरन के बिना उसका जीवन नीरस बा। सरोप से एक प्रबल  
 विज्ञान मिल गई। मोमा की सार छपक पड़ी। क्षणपट निहार बार माये। वर  
 परिहार में स्वर्न विहार बन गया। नदकों बहुओं में लगड़ा रहने लगता है। 'नदी  
 स्त्री सागर से वे आदर पाने का अब उसे कोई हक न रहा बा। कामता ने मोमा  
 को पीटकर वर से निराम दिया। मोमेराम न उसे और उनकी पत्नी मोहरी को  
 बन्ने यही शरम ही—मोहरी को विशेष रूप से। 'मोहरी के विषय में जनकटिपाई  
 होती रही—मोहरी ने आज नृणाकी माई पड़ी है। अब क्या पुछना है बाड़े रोख  
 एक ठाड़ी पड़ने। सीमा मने कोलवाल अब डर काह का? मोमा की बाँछें फूट गई हैं  
 क्या? यह परिणाम है इस बेमेल विवाह का। मोमा मोहरी के इसारे पर नाचने  
 लबा उनकी बाँछों का पानी मर गया। वर से असय हुआ निरम्मा और मूलाम  
 बन गया कोई आज भी नहीं पुछता बा। वह नदकों के पाम रहना चाहता है, पर  
 अब मोहरी उस जाने नहीं देती। जूतों में पीन होती है।

बाँधों में बँधे के प्रभाव से प्रायः बेमेल विवाह हुआ करते हैं। सिपुटीविह  
 रो-दा बचान मेहरियाँ रने हुए हैं। मछपि वह उन्हें पर्व में छड़ा है। पर न  
 जाने वर की ओर में बच-कया होता है। इस प्रकार की वस-विषमता का  
 परिणाम वैवाहिक पनल ही होता है।

बाँधों में जाल-जाल की बीमारी की मज और व्यापारिक प्रम-विकार में  
 बाधक है। मोहर और जूमिया प्रेम-पाण में बँध जाते हैं। अजिया बिगडा है और  
 बहीर की नहकी है। मोहर उसे अपने घर में लाता है पर बिगडती और पम्ब  
 लाई लेकर पीछे पड़ जाते हैं। होरी को रिकड़ों रूपि का डोह भरना पड़ता है।  
 निबिदा को लपट भागरीन ने कृमना लिया। वह बचारी भागरीन म बट्ट प्रेम  
 करने लगती है आश्रम-आश्रम कर देती है। पर बायन और बचारीन का क्या मेल?  
 मानारीन बारम्ब में तो उसे जिरीना ही मममना है, पर बाद में उनकी बायनता  
 नाव जाती है और वह तपस्या की सेवा मकी प्रेमिका मिमिया को बरना मता है।  
 इस प्रकार 'बोधान' में भी हमें पुरप की मम्पता आधिक विषमता मी-



तुम हमें बाह्य नही बना सकते मुझ हम तुम्ह जमार बना सकते हैं। हमें बाह्य बना दो हमारी सारी बिरादरी रखने को तैयार है। जब यह सामरथ नहीं है तो फिर तुम ही जमार बनो हमारे साथ घाबो-पीओ हमारे साथ उठो-बैठो। हमारी इज्जत मते हो तो अपना धर्म हमें दो।”

मातादीन ने माटी फटकार कर कहा— मुह सँभाल कर बातें कर हरकुछ। तेरी बिरिया यह बड़ी है म जा जहाँ चाहे। हमने उस बाँध नहीं रखा है।”

सिमिया की माँ उ गली जयका कर बोली— ‘बाह-बाह पच्छिष्ठ खूब निमाज कहते हो! तुम्हारी सड़की किमी जमार के साथ निष्कम गयी होनी और तुम इस तरह की बातें करते तो देखतो। हम जमार हैं इसलिए हमारी कोई इज्जत नहीं! हम सिमिया को अकेली न ले जायेंगे उसके साथ मातादीन को भी ले जायेंगे बिम्बे उसकी इज्जत बिगाडी है। तुम बड़े नेमी-धर्मी हो। उसके साथ सोजोगे सक्रि उसके हाव का पानी न पियोन! बड़ी बुद्धि है कि यह सब सझती है। मैं तो ऐसे आदमी को माहुर ले बेती।

हरजू न अपन आबमियों को सलकारा—सुन ली इन लोगों की बात कि नहीं? अब क्या खाके लाते हो?

इतना सुनता था कि वो जमारों ने जपरकर मातादीन के हाथ पकड़ लिये तीसरे ले जपर कर उसका जलेऊ सोह जाता और दो जमारों ने मातादीन के मुह में एक बड़ी-सी हड्डी का टुकड़ा जाम दिया।

निश्चय ही ‘गोदान’ में जमारों का यह संघर्ष वर्म-संघर्ष का उत्तम उदाहरण है। कृषक-जय के संघर्ष का समुची रचना में एक भी उदाहरण इतना सजीव नहीं है। वास्तव ही है कि धर्मधर ने मजदूरों और जमारों का प्राथमिक वर्म-संघर्ष तो इतना ज़ुमा स्पष्ट और सजीव दिखाया है पर जपरकों के सामूहिक संघर्ष का एक भी उदाहरण नहीं मिलता। कृषकों के जीवन की विपन्नता और वर्म-बेतन प्रस्तुत करना ही उनका उद्देश्य बना रहा।

कृषक-जीवन की उपर्युक्त कथा के अतिरिक्त ‘गोदान’ में सिमिया सुनिया और मोबिन्दी के तीन और कथन गहरी बिजल मिलते हैं। तीनों की कथा पुरप के अन्धाकारों का परिणाम है। सम्पन्न मातादीन ने बचारी सिमिया जमारों को फँस लिया। सिमिया ने अपना तन-मन सब उसका प्रेम में अर्पित कर दिया। पर वह जूत उसे बिम्बोनी ही समझता रहता है। सिमिया उसकी बेती का साथ काम करती है। तीन-तीन आदमियों का काम अकेली करती है। पर सम्पन्न मातादीन ‘जमका तन मन दोनों लेकर भी बचसे में कुछ न देना चाहता था। सिमिया को पैसे का रब ज़ुमारी सहुभाइन की बूकान में मारी थी। यह उधार चुकाने के लिए वह मुट्ठी भर जनाव

अनिष्ट में से दुखी का व दली है। मानवीन उम हाँट कर रहता है—तुन अनाज  
 क्यों दे दिया ? किमय पुछकर दिया ? तू कौन हर्ता है मरा अनाज इन बानी "   
 "मिथिया हुआ-बहु होकर मानवीन का म ह दान मया। ऐसा जान पडा किम  
 राज दर बह निश्चयन दैती हुँ या बह दूँ गई है और अब बह निराशा मीष  
 विरी या रही है। मिथिया न उम पनी की भाँति किम मानिक न पर कायकर  
 निरो म निशान दिया हुआ मानवीन की आर देखा। उत बिनयन में बेहता अपिष्ट भी  
 या मयभा यह कहना कहिन है। पर उमी पडा की भाँति उमका मन काटका रहा  
 बा उम बह दिन याद आ— अब यही मानवीन उमक उमक मरनाया या  
 अब उनन जनक हाथ म लपर कहा बा—मिथिया ! अब नक दम में नम है तुम  
 म्याहता की लख रहु या।

बेबाग मिथिया का याँ-बाग और माई कूब मारन है और पर स निवान  
 देन है। वह निरपथित हो बागी है। वह मयूरी कक मनाया भरता है प्रमद-बदना  
 मूरी है और मानवीन क दान का जन्म लेता है। मूली मरती है पर मानवीन क  
 मान पर ईदो है।

मुनिया को शहर में माकर मोहर पछा स्वार्थी और सम्पन्न बन जाता है।  
 हा मुनिया को कबल माय की बस्तु मयजन मयता है। बचारी मुनिया गन का  
 पर हा रहा है किन्तु मोहर अपनी पगुना मे बाज नहीं माना। उमका दो मान का  
 का मर जाता है। गाबर का काई परबाह ही नहीं। मोहर अब राज का बाछ  
 एक बज बा माना। परदेता म बकमी मुनिया को प्रमद की बिम्बा गई। मोहर  
 कोई व्यक्ता नहीं करता। वह निजाम पनी रहता है मोहर की उमेरा या मिहार  
 होनी है। वह निष्ठ का जन्म लेती है मिनु रा-रो कर मया छाई मया का क्योंकि  
 ठपर का दूध उमे पचता म या अ मिथिया क स्मों में दूध न था। उमकी देह में कून  
 ही नहीं था दूध कहाँ से आवे।

बाकिरी अपने पनि ज्ञाता की उमेरा से दुखी है। उमका पति उमे जरा भी  
 खातिर में नहीं लाता उमका सम्ता-मगदता है। पुरष की सम्पत्ता से बचारी मारी  
 दली हा जाती है। वह इन मानसिध मन्ताप में घर से निकल कर जाती जाती है।  
 हेमे जीवन मे तो मृत्यु मन्ती !

इन प्रकार 'बाबल' में कल्प-परिस्थितियाँ भूब पाई जाती हैं। मय मा यह  
 है कि कल्प और बीमय दम का मय-मन्तार इन उमपाम में बायोराष्ट्र पाया जाता  
 है और यही इनकी शक्ति का रहस्य है। "बन्ना और मन्तना" का एसा मृत्तर  
 मुरोय बहून कय मन्तनाओं में हाता है। 'मोशन' की मारी प्रभाव शक्ति आकरम  
 पचका मीरन-मयन और जीवन ज्ञानावन-अवपोहन मय इन दो भाव-मवेरनाओं

के आशय ही मुख्य रूप से प्रस्तुत हुए हैं।

### शृङ्गार रस—प्रेम के विविध रूप

'योदान' में शृङ्गार रस का भी पर्याप्त प्रसार पाया जाता है। प्रथम मानव की आत्मत सहज प्रवृत्ति है। साम्प्रत्य प्रेम प्रेम का अत्यन्त उज्ज्वल और उदात्त तथा सहज रूप होता है। जीवन की अनेक परिस्थितियों में यह प्रेम पलता और बेसता है। 'योदान' में इस प्रेम के कई रूप मिल पाय जाते हैं। एक खोर होरी और धनिबा का प्रौढ़ प्रेम है, जो जीवन की कठोरताओं मुसीबतों और सद्वृत्तों में भी दृढ़ रहता है। जिसमें एक-दूसरे के प्रति रीझ-बीझ अनुरोध-विरोध हास्य-कटुता आदि का बबरबस्त सम्मिलित होते हुए भी अद्भुत विश्वास और दृढ़ निष्पन्नता है। इसमें रीतिकान की तारीरिक उल्लेखना नहीं आन्तरिक तीव्रता है उदात्तता है। योदान का आरम्भ ही होरी-धनिबा के इस प्रगाढ़ प्रेम से हुआ है।

'होरीराम ने हाथों बैलों को सानी-पानी देकर अपनी स्त्री धनिबा से कहा—  
पोवर को ऊँच गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूँ। बर मेरी माँसे देदे।

धनिबा—'बोली—जरे, कुछ रस-पानी तो कर लो। ऐसी बस्ती क्या है?

परन्तु होरी को जाने की बस्ती है कहीं देर हो गई तो मामिक से घेत न होगी। वह रस-पानी की कत ठुकरा देता है। धनिबा का विद्रोही मन कहता है कि जिस गृहस्त्री में घेत की चोटियाँ भी न मिल सकें जिनसे इतनी बुझामद क्यों? वह बीझकर होरी की माँठी मिरबाई, पयड़ी कूते और उमाचु का बटुआ भाकर सामने पटक देती है।

'होरी ने उसकी आँखों तिरेर कर कहा—क्या समुराम जाना है जो पाँचों पोवाक लानी है? समुराम में भी तो कोई जवान सानी-सलहज नहीं बँसी है जिस आकर बिकाडें?

होरी के गहरे सौमिल पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक आई। धनिबा न मजाते हुये कहा—ऐसे ही तो बड़े सबीसे बवान हो कि सानी सलहजें तुम्हें देखकर रीझ जायेगी।

तो क्या तू समझती है कि मैं बूबा हो गया? अभी तो बालीम बर्न भी नहीं हुए। मर्ब साठे पर पाठे होते हैं।

आकर नीचे न मुह देखा। तुम जैसे मर्ब साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-बी अन्नन तक को तो मिसला ही नहीं पाठे होये। तुम्हारी दसा देख-देखकर तो मैं और भी मुसी जाती हूँ कि भगवाम् यह बुझापा कैसे कटेगा? किसके द्वार पर भीज माँपि?

होरी की वह सजिक मृदुता यथार्थ की इस आँख में जैसे झुमग गई। सफ़ई

संभालता हुआ बोला—साठे तक पहुँचने की मौबत ही न आने पायेगी धनिया !  
इसके पहले ही बस देंगे ।

धनिया ने तिरस्कार किया—अच्छा रहने दो मय असुम मुँह से निकामो ।  
तुमसे कोई अच्छी बात भी करे, तो लगते हो कोसने ।

होरी लाठी कंधे पर रखकर घर से निकला तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे  
देर तक देखती रही । उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाये हुए  
हृदय में आतङ्कमय कपम-सा डाम दिया था । वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण रूप  
और बच से अपने पति को अग्रमहाग दे रही थी । उसके अन्तःकरण से जैसे आसी  
बाँसों का झूह-सा निकलकर होरी को अपने अन्दर छिनाय लेता था । विपन्नता के  
इस बसाह सागर में सोहाना ही वह तृण था जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार  
कर रही थी ।

यह प्रीति प्रेम बिबिध है । मार-फटकार, यासी-दुस्कार आदि की कटुताओं में  
भी यह दृढ़ रहता है । एक मधुर मुस्कान या विनोद ने सारी खीझ सादा क्रोध शाम्त  
हो जाता है । होरी और धनिया में बात-बात पर तकरार होती है । मोबर माँ-बाप  
से जमझकर मुनिया को साथ ले गहर जमा जाता है । होरी और धनिया दोनों बुद्धी  
हो उठते हैं । वे एक-दूसरे पर दोष मढ़ने लगते हैं । धनिया मुनिया को कोसती है  
और होरी मोबर को दोष देता है । होरी ने पिछकर कहा—जब देखो तब तू मुनिया  
को ही दोष देती है । यह नहीं समझती कि अपना मोना छोटा तो सोनार का  
क्या दोष ?

धनिया गरज उठी—अच्छा चुप रहो । तुम्हीं ने रीढ़ को मुँह पर बड़ा  
रखा था नहीं मने पहले ही दिन झाड़ू मारकर निजाम दिया होता ।

होरी अब मोबर का भी पक्ष लेता है—‘मान से बहुत ने गोबर को फोड़ ही  
निया तो तू कितना झुठली क्यों है ? जो सादा जमाया करता है वही गोबर ने  
किया । — धनिया पिछकर बोली—तुम्हीं उपद्रव की बड़ हो ।

‘तो मुझे भी निकाम दे । मैं या बँसों को अमाज माँह । मैं तुझका पीता हूँ ।

‘तुम बसकर अच्छी पीछो मैं अमाज माँहूंगी ।

विनोद में कुछ उड़ गया । पति-पत्नी में दुपना अनुपम उमड़ आया ।

होरा अपनी पत्नी पुनिया को मारता है । होरी उसे हटाने जाता है । धनिया  
होरी पर खीझ कर कहती है—कोई तुम्हारी सुनता भी है कि बौं हो निच्छ दे रहे  
हो ? उस दिन वही बहुत ने तुम्हीं ने पट की माह में बाड़ीमार कहा था भुम यय ?

होरी द्वार पर जाकर नन्द्यन के साथ बोला—और जो मैं हनी रखू तुम  
माफ़ ?”

'क्या कभी मारा नहीं है, जो मारने की माघ बनी हुई है ?

'इतनी बेधर्य से मारता तो मूँ बर छोड़ कर भाग जानी। पुनिया बड़ी ममदार है।

'ओ हो ! ऐसे ही तो बड़े दरपवांस हूँ। अभी तक मार का बाग बना हुआ है। हीरा मारता है तो दुमराज भी है। तुमने खाभी भाग्या सीया दुमार करना सीया ही नहीं...।

'अच्छा रहने दे बहुत अपना बखान न कर। तू ही इठ-इठ कर नहर मामनी भी। जब महीनो बुझाविक करना था तब जाकर आती थी।

'अब अपनी गरज मताली थी तब मनाने आते थे सामा ! मेरे दुमार से नहीं आते थे।

इसी से तो मैं सबसे तेरा बखान करता हूँ।"

'वैवाहिक जीवन के प्रसाद में सालसा अपनी बुझाभी माइकला के साथ उरम होती है और हृवय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी निरलों से रञ्जित कर देती है। फिर मझाझ ना प्रकर ताप आता है सालसा का सुनहरा आबरव हरा जाता है और वास्तविकता अपने लग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाव बिश्राममय सन्ध्या आती है लीला और सान्त जब हम बच्चे हुये पवित्रों की सन्धि दिन भर की याता का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं।

होरी और धनिया के इस ग्रीक प्रेम के अतिरिक्त मोक्षान में मुनिया और गोबर का अस्तुह प्रेम और सिमिया का एकनिष्ठ प्रेम भी मार्मिक है। गोबर और मुनिया का प्रथम मिलन बहुत मनोरञ्जक है। गोबर और होरी दोनों मोता के साथ सूँघे के साथ छोड़न मोता के बर मने। मोता की बड़ी सनिया रस-पानी बनाने के लिए 'रस्मी और कलसा लेकर पानी भरन बसी। गोबर न उसके हाव से नगसा लेने के लिए हाव बढ़ाकर गपठे हुए कहा—तुम रहन हो मैं भरे साता हूँ।

मुनिया ने कमसा न दिया। कुपे की जगह पर जाकर मुसकराती हुई बोली—तुम हमारे मेहमान हू। कहाम एक रोटा पानी भी किसी ने नहीं दिया।

"महमाग काहै स हो मया। तुम्हारा पड़ोसी ही तो हूँ।

'पड़ोसी सान भर मे भी मूरत न दिबाये तो मेहमाग ही है।

'रोज रोज आने से मरबाव भी तो नहीं रहती।

मुनिया हँसकर तिगधी नजरों से देखती हुई बोली—बही मरबाव तो वे रही हैं। महीने में एक बेर आजाव टण्डा पानी हूमी। पन्धरहें दिन आओने बिजस पाओने। सातव दिन आओग पानी बँटने को साधी बही। रोज रोज

माधोय कुछ न पाओये ।

‘दरसन तो होयी ?’

‘दरसन के लिए पूजा करनी पड़ेगी ।’

बीर बाब की बात में घोड़ों एक-दूसरे क हो गय । अगले दिन गोबर जब पाय मने जाता है ता सारा दिन दोनों का मधुर मिसन रहता है । भुनिया जाने से भी जबकि रातों तक गोबर को छोड़न जाती है । उनक मधुर आवाज का एक बिना देखिए । रास्ता चलते भुनिया ने गोबर का सम बरी आँखों से देखकर कहा—

‘जब तुम काहे को यहाँ नमी आओगे !’

‘मिच्छुक को भीख मिसने की आजा हो तो बह दिन भर और रात भर राता क द्वार पर खड़ा रहे ।’

‘मिच्छुक जब तक बम द्वारे न जाय उमका पेट कैन भरेया । मैं ऐसे मिच्छुकों को मुह नही मगाती । ऐसे तो मसी-गली में मिसते हैं । फिर मिच्छुक ता क्या है असीस ! असीसों से तो किसी का पेट नही भरता ।’

‘मिच्छुक को एक ही द्वार पर भर-पेट मिस जाय तो क्यों द्वार-द्वार घूमे ?’

भुनिया ने सबय भाव से उसकी ओर ताका । किना माना है कुछ मना ही नही ।

‘मिच्छुक को एक द्वार पर भर-पेट वहाँ मिसता है । उम तो घुटकी ही मियेगी । सर्वस तो तमी पाओये जब अपना सर्वस होगे ।’

गोबर भुनिया को घर छोड़कर ललनऊ जाता जाता है और जब शहर में बसाकर साम बाब घर जाता है तब भुनिया का मागिनी रूप बड़े मनोबैधानिक बङ्ग से व्यक्त हुमा । गोबर आया तो घर में उल्टा ह थ गया । मोना-क्या गोबर के साथे हुए सामान को देखने लगी । ‘लेकिन भुनिया बुर खड़ी थी । उनके मुख पर आज मान का शोक रङ्ग आनक रहा था । गोबर ने समके साथ जो व्यवहार किया है, आज बह उसका बदला लेगी ।’—क्या उन बीबी की ओर सपक रहा था—‘पर भुनिया उसे गोद से उठारने न देनी थी ।’

सोना बोसी—‘भैया तुम्हारे सिय मारना-कभी साथ हैं मामी !’

भुनिया ने उपेक्षा-भाव से कहा—‘मुझे ऐसा-कभी न चाहिए । अपने पान ले रहे ।’

रूपा ने बच्चे की कमबीसी टोपी निचामी—‘ओ हो ! वह चुन्नु की टोपी ! और उम बच्चे के सिर पर रख दिया ।

भुनिया ने टोपी उतारकर फेंक दी । और महुमा गोबर को—‘अबद ताते पकर बह बालक को लिए अपनी कोठरी में नमी गई ।’

मान का जैसा सुन्दर अभिनय है ! जब बोमर को सहर में हड़ताम के सङ्घर्ष में थोड़ा लग जाती है तो भूमिया जिस एकनिष्ठता से उसकी सेवा करती है, वह माटी के प्रति प्रेम का अत्यन्त मार्मिक पक्ष है। सिलिया के प्रेम में दारुण निश्चिन्ता है। वह जमारिम है। सग्न मातावीन उसे अपने आन में फँसा लेता है। वह भी उसके प्रेम में बिगामी होकर अपना तन-मन अर्पित कर देती है। पर सग्न मातावीन अपने धर्म की रक्षा की बुद्धि लेकर सिलिया की उपेक्षा करता है। वह फिर भी मातावीन के ही नाम पर बैठी रहती है। एक बार जिसे प्रति बना दिया फिर उसके सिवा और और कौन-सा हो सकता है। उसके माता-पिता-भाई उसे घर से निकाल देते हैं। वह निराश्रित हो जाती है। पर फिर भी स्वयं मजूरी करके अपना पेट भरती है भूखी रहती है। मूरा गर्भ लेकर भी वह मजूरी करनी रही। किन्तु अपने प्रेम की टेक नहीं छोड़ती। मातावीन उससे प्रेम नहीं करता न करे उसे कोई परवा नहीं। वह स्वयं मातावीन के प्रति एकनिष्ठ रहती है। वह स्पष्ट कहती है 'एक बार जिनसे बाँह पकड़ ली उसी की रहूँगी। जब प्रायश्चित्त के डोंग और बीमारी के बाद मातावीन की बुद्धि ठिकाने आती है और वह सिलिया के प्रति अपने अत्याचारों से पछताता हुआ सिलिया के पास हो अपने भेगता है तो सिलिया जैसे अपनी तपस्या का बरदान पा गयी। किसे यह कुछबखरी सुनाये ?—'उसके पेट में बूँदें बौझ रहे थे सोना उसकी सहेली भी। सिलिया उससे मिलने के लिए आतुर हो गई। 'उठ-भर कैसे सब करे ? मन में एक जाँघी-सी उठ रही थी। अब वह अनाथ नहीं है। मातावीन ने उसकी बाँह फिर पकड़ ली। जीवन-मरण में उसके सामने अब अँधेरी विकटता मुक्त वाली आई नहीं है। नहसहाता हुआ हृदय-मरण मैदान है जिसमें झरने गा रहे हैं और हिरन कुत्तसे कर रहे हैं। उसका कटा हुआ स्नेह आज उन्मत्त हो गया है। वह अँधेरे में ही नबी पार करके मोना को मिलने जाती है। कितना उलझा घर गया है उसमें। आखिर इस प्रेम की बेबी के मन्दिर में मातावीन को अपना सर्वस्व अर्पित पड़ता है। वह अपने डोंगी धर्म का बोला उतार कर सग्न धर्म अपनाता है। वह बुद्धिमानसूना सिलिया की ओपड़ी के द्वार पर आकर कहता है—'यही हमारा घर है।

सिलिया ने अनिश्वास समझा ब्यङ्ग और बुद्ध-मरे स्वर में कहा—'यह तो सिलिया जमारिम का घर है। मातावीन ने द्वार की गली खोसते हुए कहा—'वह मेरी देखी का मन्दिर है।

और वह स्पष्ट कहता है—'मैं बाह्यम नहीं जमार ही रहना चाहता हूँ। जो अपना धर्म पाले नहीं बाह्यम है जो धर्म से मुह मोड़े नहीं जमार है।

सिलिया ने उसके बसे में बाँहें डाल दीं।

प्रेमचन्द ने प्रेम के इस प्रवाह बिलग से एक अद्भुत वास्तविकी कार्य किया है। इस प्रकार का अन्त-जातीय मिश्रण और सम्बन्ध प्रेमचन्द-युग में एक नवीन फसल ही था। निश्चय ही प्रेमचन्द इस प्रेम बिलग में अपने युग से बहुत आगे बढ़े हुए हैं। वहाँ पहले उपन्यासों में वे विजातीय और अन्त-जातीय सम्बन्ध कराते डरते थे। वहाँ 'योदान' में उनका प्रगतिशील मन बिल्कुल निमग्न हो गया है। वहाँ 'रक्त' धूमि में विनय और शोफिया तथा 'कमलभूमि' में सकीना और अमरकान्त की कहानी बहती ही रही। वहाँ 'योदान' में प्रेमचन्द ने धर्म के परम्परागत फिल को तोड़कर प्य दिया और मानव प्रेम की आत्मा की कहानी को पूर्ण रूप दिया।

'योदान' में सोना का प्रचण्ड पातिव्रत्य भी बहुत उदात्त है। 'सोना की दृष्टि में मरने बड़ा पाप किसी पुत्र का पर-स्त्री और स्त्री का परपुरुष की ओर टाकना था। प्रेम के सिरे साम्राज्य के बाहर उसकी दृष्टि में कोई स्थान न था। जब वह मधुरा और सिलिया को बाँधने में मिलते देखती है तो संवेह के कारण आग-बधूमा हो उठती है। वह आत्म में खोज मन-वेने का भी विरोध करती है। वह अपने प्राची पति मधुरा को कहना भेजती है कि अगर उन्हें सांगा चाहिए तो सोना-बाँधी ( बहेब ) का लोभ छोड़ना होगा। वह एक सदाचारणीय गारी प्रतीत होती है जो अपने सच्चे प्रेम को निभाती है और अपने पति की जग-सी कुचाम भी नहीं सहती।

मेहता और मासती का पूर्वराग ( Courtship ) भी रोचक विषय है। मासती मेहता के रूप-गुण पर आकर्षित है। वह अपना प्रेमपूर्ण हृदय मेहता की ओर बढ़ाती है। पर मेहता उसे परीक्षक की दृष्टि से ही देखते रहे। क्योंकि केवल रूप का आकर्षण तो उस पर कोई असर न कर सकता था। जब मासती अपने प्रेम को अत्यन्त मन्मथ और विस्तृत रूप देती है, वह सेवा और त्याग की मूर्ति बन जाती है। तब मेहता उसे पान के गिय आशीर हा उठते हैं। तब मासती प्यासी थी, तब मेहता प्यास से विकृत है। जब मासती आत्मस्थ हो भरकर रात को मुनिबा के बच्चे मजूम का उपचार करती है उस अपनी प्य में बहसारी है तो 'मासती' का यह अद्भुत आत्मस्थ वह अदभ्य मातृ-भाव देखकर उनकी (मेहता की) अन्तःकरण का बर्तन में ऐसा पुसक उठा कि अन्तर आकर मासती के चरणों का दर्शन न भगवान्। अन्तस्तल से अनुराग में हुये हुये मर्त्यों का एक समूह मन्मथ पड़ा—“तब मेहता, बड़े, ऐसी मेरी रानी आरक्षण”।

और उसी प्रीतिगता में उन्होंने पुकारा—मासती जगद्वारा भर्त्ता।

मासती ने आकर द्वार खोल दिया और उनकी ओर “तब मेहता की आँखों में देखा।

जब मुझे कुछ याचना करण की अनुमति न दाना।”



मासती ने आग्रह कर कहा— 'तुम जानते हो तुमसे ज्यादा निष्ठा सवार में मेरा कोई दूसरा नहीं है। मैंने बहुत दिन हुए, अपने को तुम्हारे चरणों पर समर्पित कर दिया। तुम भरे पत्र प्रदर्शक हो मेरे वैधवा हो मेरे सुख हो। तुम्हें मुझसे कुछ भी याचना करने की जरूरत नहीं मुझे केवल संकेत कर देने की जरूरत है।

“तुम्हारा प्रेम और निष्ठावाक्य अब मेरे लिए कुछ भी खो नहीं रह गया है।” यह मेरी पूर्णता है। यह कहते-कहते मासती के मन में ऐसा अनुराग उठा कि मेहता के खीने से भिपट बाय। भीतर की भावनाएं बाहर आकर सामने सर हो गई थीं। उसका रोम रोम पुष्कित हो उठा।

और इन प्रेम की चरम परिस्थिति अत्यन्त पवित्र भावना में होती है। मासती गम्भीर होकर कहती है— “मैंने यह तय किया है कि मैं ब्रह्म बनकर रहना स्वीकार करके रहने से कहीं सुखकर है। तुम मुझसे प्रेम करते हो मैं भी तुमसे प्रेम करती हूँ तुम पर विश्वास करती हूँ, और तुम्हारे लिये कोई ऐसा त्याग नहीं है जो मैं न कर सकूँ।” हमारी पूजा के लिए, हमारी आत्मा के विकास के लिए और क्या चाहिए? अपनी छोटी-सी दुःस्वी बनाकर अपनी आत्माओं को छोटे-से पिन्के में बन्ध करके अपने दुःख-सुख को अपने ही तक रखकर क्या हम असीम के निकट पहुँच सकते हैं? “तुम्हारे जैसे विचारवान् प्रतिभावाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार (दुःस्व) में बन्ध नहीं करना चाहती।”

मेहता सिर झुकाये मुनते रहे। उन्होंने मासती के चरण दोनों हाथों से पकड़ लिये और काँपते हुए बोले—तुम्हारा आदेश स्वीकार है मासती।

और दोनों एकान्त होकर प्रगाढ़ आसक्ति में बंध गये। दोनों की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। दोनों पवित्र प्रेम-प्राप्त में बंध गए—नर-नारी के ऐसे प्रेम में जहाँ शरीर के स्थान पर आत्मा स्वार्थ के स्थान पर परमार्थ साक्षात् रिक्ता के स्थान पर आध्यात्मिकता और संकुचित दुःस्व-धर्म के स्थान पर विश्व मानव-धर्म की पवित्र भावनाएँ प्रमुख रहती हैं।

'बोधान' में स्वच्छन्द प्रेम का दूसरा उदाहरण है दशपास और सरोज के प्रेम का। यद्यपि इन दोनों का प्रेम बटित-स्थ में प्रकट नहीं हुआ है कपित-माल है तथापि दशपास-द्वारा पिता के प्रस्तावन को टुकराना—उसके सरोज के प्रति प्रेम की प्रगाढ़ता को व्यञ्जित करता है। इन प्रतिष्ठा जाति-मोल जाति के परम्परागत द्विक्लेश और माता-पिता की अपनी मर्जी से चाही छीक करने की परिपाटी को इन प्रेम-विलस द्वारा अच्छा बख़्ता पहुँचाया गया है।

इस प्रकार 'बोधान' में प्रेम के कई रूप-विलस पाये जाते हैं। साम्प्रदाय प्रेम के अतिरिक्त वास्तव्य-स्नेह भातृ-स्नेह उपास मानवीय प्रेम-आदि—प्रेम की अनेक प्र

सिंहों का प्रकाशन 'गोदान' में हुआ है। होरी और अनिया के वात्सल्य-पूर्ण हृदय भी कई शक्तिशाली पाई जाती है। अनिया का रोम रोम सन्तान प्रेम से भरा हुआ है। पन्थान के सामन-सामन-हेतु ही होरी और अनिया और पश्चिम करते हैं। उन्हें दुःख है कि अपने बच्चों को वे भी-बुध नाम माल को भी नहीं दे पाते। घर में एक नाव भी बच्चों के लिए नहीं बांध सकते। होरी गाय लाने की सोचता है, 'गोबर दूध के निचे तरम-तरम कर रह जाता है। इस उमर में मैं लामा पिया तो फिर कब आवेगा?' वह बच्चा को मोड़ी में उठाता है। अपनी बाली में साथ बिताता है और मोल-क्या के बाव-बिबाव में आनन्द लेता है।

होरी ने स्वयं अनिया को बताया कि हीरा के पाप का कुछ बिना दिया है पर अब अनिया सारे माँघ में छिड़ोप पीटने लगती है तो पाई को बचान के निचे होरी गोबर के घिर पर हाथ रखकर झूठी कतल का जाता है कि मैंने हीरा को ही देखा। अनिया का रोम रोम जल उठता है। वह कहती है—'मुड़ी है! अगर तेरे बेटे का बाल भी बाँका हुआ तो घर में जान लगा दूँगी। मारो दुहस्त्री में जान पा दूँगी। मातृ-हृदय का कौन सा सुन्दर काम है?'।

एक और मनोवैज्ञानिक चित्त देखिए। अनिया को गोबर घर ला छोड़ता है। अनिया पढ़ते तो अनिया को कोसती है—'कुलटा कसकिनी और कसबुही गिरि पड़कर उसे बाहर कहेन देने की बात सोचती है। पर अब होरी बाकी उसे लका देकर बाहर निकालना चाहता है, तो 'सहमा अनिया ने होरी के घस में हाथ डालकर कहा—'देखो मुझे मेरी लीह उस पर हाथ न उठाना। वह तो माय ही रा रही है। कालिख जो लगती थी वह तो अब लग चुकी। मुवा इसनी रात पके दन अचिरे सघाटे में लागनी कहाँ? पाँव पारी है। बाहिर उसी के पुल का अंज तो वह निचे हुए है।

'होरी की बाँधी बाई हो गई'। अनिया का यह मातृ-ज्येष्ठ उस अचिरे में भी जैसे दीपक के समान उसकी पिन्दा-अर्चन आकृति को ओभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में अब असीम-जीवन सञ्चल हो गया। 'उस आदिमम में किन्ता बपाह वात्सल्य था जो सारे कमकु, सारी बाधाओं और सारी घुमबड परम्पराओं को अपने समार समेटे लेता था।

बिरादरी की रसी घर परमा न करके अनिया पोते के काम पर अकेली मज्जत पाती है। जब गोबर साम बाव घर लौटता है तब तो अनिया के उछाह का कोई ठिकाना ही नहीं रहता। गोबर जाया। 'अनिया ने उसे बालीकपि दिया और उसका घिर अपनी छाती से लगाकर मानी अपने मातृत्व का पुरस्कार पा गई। अनिया के मन में कभी अमङ्गल की लज्जा न हुई थी। उसका मन कहता था 'गोबर

कुशल से है और प्रसन्न है। आज उसे यहाँ देखकर मानो उसके जीवन के कूल घण्ट में बुल हुआ रहा मिल गया। सुमिया योबिन्धी और मामती के वात्सल्यपूर्ण हृदय की सुन्दर छाँकी भी कई स्नानों पर मिलती है। रायदाहब का शुद्ध वात्सल्य भी कम आकर्षक नहीं है। स्वपास का बराब उन्हें उमा झालता है। भाताबीन अपने सब से पुत्र को देखने बोरी-बोरी आता है। उनका वात्सल्य-स्नेह भी कम उदात्त नहीं है। इस प्रकार वात्सल्य के भी अनेक मामिक पक्ष 'बोधान' में मिलते हैं। होरी का भ्रातृ-प्रेम निराभिता सिधिया को स्नान देने में लनिया-होरी का उदात्त मानव प्रेम आदि भी भाव सिस्वी प्रेमचन्द की सुसिका के अमिट भाव-पक्ष हैं।

प्रकृति-प्रेम के भी दो-एक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। मेहता प्रकृति के सन्ने पुकारी है। सुन्दर प्राकृतिक वातावरण में वह बहकने लगते हैं। बेलाटी नौब में 'नबी के किनारे नौबी का फल बिछ हुआ बा और नबी छन-बटित आनूवम पहले मीठे स्वरों में गाती नौब को और तारों को और छिर झुकाये नीद में सोते वृक्षों को अपना मृत्यु दिखा रही थी। मेहता प्रकृति की उस मादक ओमा से जैसे मस्त हो गए। जैसे उनका बालपन अपनी सारी कीड़ाओं के साथ सीट आया था। बामू पर कई कुत्तों मारीं। फिर चौड़े हुए नबी में आकर पुनः एक पानी में डूबे हो गए। अपने सौन में मेहता ने तरह-तरह के फूल और पेड़-पौधे लगा रने थे। वह ज्यों प्रकृति-दर्शन में लगे जाते हैं। वह स्पष्ट कहते हैं— 'प्रकृति से स्पर्श होते ही जैसे मुझ में एक-एक पक्षी एक-एक पक्षु जैसे मुझे आनन्द का निमन्त्रण देता हुआ जान पड़ता है वह आनन्द मुझे और कहीं नहीं मिलता मामती समीत के रमाने वाले स्वरों में भी नहीं दर्शन की ठँकी उड़ानों में भी नहीं।

बसन्त की निरुन्नी छा नीवन की लक्ष्मी में पियते हुए बरिच किछान होरी के हृदय में भी मस्ती का सञ्चार कर देती है। 'रसिक बसन्त सुमन्त्र प्रमोद और नीवन की विभूति मुटा रहा बा—दोनों हाथों से दिल जोत कर। कोयल आम की डालियों में छिपी अपनी 'रसीभी मधुर आत्मस्पर्शी झुक से आभाओं को बघाटी फिरती थी। मधुर की डालियों पर मैनों की बरत-सी लकी बँटी थी। नीम छिरछ और करीब अपनी महक में लला-सा जोसे देते थे। होरी आमों के दाग में पड़ना ता वृक्षों के नीचे तारों-से झिल्ले थे। उनका व्यापित निरागत मन भी इस व्यापक ओमा और स्फूर्ति में आकर गाने लगा—

हिया बरत रहत दिन रैन।

आम की बरिया कोयल जोसे तनिक न आनत रैन ॥

और हुलाटी सहस्राक्ष का गुलाबी साड़ी में जाने देखकर उसका मस्त हृदय और मचल उठा !

‘गोदान’ में कर्मोत्साह और साहस के भी कुछ प्रमाण हैं। कर्मोत्साह दो-चार स्थानों पर उसके कर्मवीर रूप को जोड़ने में बड़ा करने के साथ उत्साहपूर्ण मजबूरी को जोड़ने का बड़ा कर्म-क्षेत्र में बड़ा हो जाने में उसका कर्मोत्साह ...

प्रिया ने जिस साहस से मुनिया को अपनाया जिस निडरता और उदारता से सिसिया बमारिन को बाध दिया वह तो उनके सच्चे वीर रूप को ही प्रकट करता है। घोरेला के प्रसंग में प्रिया का साहस उसे भवानी का अवतार ही बना देता है।

इस प्रकार ‘गोदान’ में मानवीय भाव-संवेदनाओं को अत्यन्त उदार रूप में प्रस्तुत किया गया है। मानव-जीवन की भिन्न भिन्न वृत्तियों का इतना विस्तृत स्फार ही ‘गोदान’ को साहित्य की खूब रचना सिद्ध करता है। इस रस-भाव उत्पन्न के बिना ‘गोदान’ का मूल्यांकन—उसकी शक्ति की विवेचना असम्भव ही है।

## २. विचार तत्त्व उद्देश्य-सन्देश, समस्याएँ

प्रेमचन्द के उपन्यासों का सामाजिक उद्देश्य बहुत महत्वपूर्ण होता है। हमारे समाज की बिकृतियों को दर्शाकर उन्होंने राष्ट्र के नव निर्माण का सन्देश दिया है। सभी उपन्यासों में सामाजिक उद्देश्य स्पष्ट है। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं-द्वारा एक नई सांस्कृतिक चेतना को जगाया। नव-भारत के निर्माण में उनका महत्व किसी भी राजनैतिक या सामाजिक नेता से कम नहीं है। उनके प्रामाणिक उपन्यासों का उद्देश्य परम्परागत सामाजिक राजनैतिक धार्मिक आर्थिक पारम्परिकों और पद्धतियों के बिकारों को दर्शाकर पाठक के मन में उन सब बुराइयों को दूर करने और मानवता के स्वस्थ निर्माण की प्रेरणा जगाना है। उन्होंने पाठन की सेवा स्पष्ट रूप से सामाजिक-धार्मिक मानव प्रवृत्तियों को जगाया है। उनके उपन्यासों से हम ग्याय और सत्य की रक्षा में अत्याय और अमृत्य से बचने की शक्ति पाते हैं। जीवन में कहीं भी जिस रूप में उन्होंने अत्याय बुराई या अनीति को देखा वही उसका विरोध किया है। सभी मानवता का इतना जग्यन असहाय और क्षोभित की ऐसी सामाजिक विवशता और कहीं भिन्न सकती है ?

‘गोदान’ में प्रेमचन्द का सामाजिक उद्देश्य उनके सभी उपन्यासों से बड़ा रहा है। यह रचना भारत की ८० प्रतिशत रूपक जनता की मूक बाणी का जीवितार है। निर्धन बहिष्कार की बाणी इससे बढ़िया जग्यन कहीं मिल सकती है ? कृषक-जीवन की समस्याओं का इतना व्यापक चित्रण सागर ही किसी अन्य रचना में मिले। प्रेमचन्द ने हममें अर्थ या पैसों की सारी बुराइयों का मूल माना है। पैसों का संस्था अभाव भी मानव-जीवन को अधिनाप बना देता है। कृषक-जीवन की बड़ी दुश्मनी है। वे जाने जाने की तरफसे रहते हैं। कीड़ी-जीड़ी को महाजन के जाने

कुछ पसारते हैं। उनकी भविष्य दरिद्रता, अश्विभयाय आदि सभी दुर्बलायों के सम्मान से है। पैसा हो तो वे भी अपना जीवन सुखी बना सकते हैं। इस उपासक के बराबरी के विपरीत प्रेमचन्द ने अर्थ के अर्थ का भावात्मक रूप भी प्रष्ट किया है। जिसके पास बहुत धन है या जो पैसे को ही सबसे बड़ा देवता मानकर टकावर्म संस्कृति को अपनाये हुए हैं, सामाजिक विह्वलियों का सबसे बड़ा सामर्थ्य उनके ऊपर ही जाता है। प्रेमचन्द स्पष्ट कहते हैं कि समाज की सभी घोरदुर्घों का कारण यह टकावर्म संस्कृति है। जहाँ सब प्रकार की प्रतिष्ठा धन-अपमान स्वाध-अन्वय सब कुछ पैसे पर ही टिका हुआ हो वहाँ सब मानव-मूर्खों को महत्त्व कहाँ मिल सकता है? जिसके पास फासतू बन होता है वह उसे निलास हुआ आदि व्यसनों में निकलता है और जो धन के सन्धाय की-फिराक में ही रहते हैं उनको जीवन में पारिवारिक शांति नहीं मिलती। जमा की मिल जल बाने के बाद गोविन्दी कहती है—तो तुम इतना दिन श्रोग क्यों करते हो? धन के लिए—जो सारे पाप की जड़ है? उस धन से हमें क्या कुछ का? सबेरे से आधी रात तक एक-न-एक झलक—आत्मा का सर्वनाम! तबसे तुमसे बात करने की तरस जाते हैं तुम्हें सम्बन्धियों को पक्ष निजने तक की फुरसत न मिलती थी। क्या बड़ी इज्जत थी? हाँ थी! क्योंकि बुनिया आनन्दन धन की पूजा करती बली जायी है। उसे तुमसे कोई प्रयोजन नहीं। वह कहती है कि धन छोड़कर यदि हम अपनी मनुष्यता को पा लें तो यह सर्वोपा सीधा नहीं। मेरुवा भी एक स्थान पर कहते हैं 'जब धन बरूत से ब्यादा हो जाता है तो अपने लिए निकास का मार्ग खोजता है। यों न निकल पावगा तो कुए में जायगा पु रौड में जायगा ईट-पत्थर से बावगा या ऐयाबी में जायगा। बीसठ और बीसठ बालों उ प्रेमचन्द कभी समझीला नहीं कर सके। उन्होंने एक पक्ष में लिखा था "जो व्यक्ति धन-सम्पदा में निर्भर और मग्न हो उसके महान् पुरुष होने की कल्पना में नहीं कर सकता। जैसे ही मैं किसी आरमी को घनी पाता हूँ, वैसे ही मुझ पर उसकी कला और बुद्धिमत्ता की बलों का प्रभाव काफूर हो जाता है। मुझे बात पड़ता है कि इस अलम ने मौजूबा सामाजिक व्यवस्था को—उम सामाजिक व्यवस्था को जो अमीरों-द्वारा गरीबों के दोहन पर व्यवस्थित है—स्वीकार कर लिया है।

तो प्रेमचन्द ने इन पैसे की बुनिया की निन्दा की है, जिसमें यह समझा जाता है— "जिसके पास पैसा है वही बड़ा आरमी है वही भला आरमी है। पैसे न हों तो उस पर सभी रीब जमाते हैं। पैसे के पर्व में सब कुकर्म छि जाते हैं। गरीब का सरस कार्य भी अपराध बन जाता है पैसे वालों को कोई कुछ नहीं कहता। ग्याय-धर्म सब पैसे पर आधारित है। इस सर्व-स्वार्थ-प्रधान पद्धति को

उद्देश्य-सन्देश समस्यायें

प्रेमचन्द ने स्वातन्त्र्य पर बोली छड़ायी है। यह यदि सामन्तवाद या जमींदारी  
 शक्ति के रूप में है तो भी बुरी है। पूर्वीवाद या महाजनी-पद्धति के रूप में है तो भी  
 बुरी है। अथवा यदि ब्रिटिश नीतिरचयिता की धूर्त-धमकीय रिश्वतखोरी आदि के रूप में  
 है तो भी बिलकुल और बिकृत है। इस पद्धति का बड़ा अच्छा चित्रण प्रेमचन्द ने  
 किया है। सब तो यह है कि 'गोदान' में समाज की किसी एक समस्या पर प्रकाश  
 डालना प्रेमचन्द का उद्देश्य नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि इसमें प्रमुख समस्या  
 किसान की गरीबी और दरिद्रता है। परन्तु प्रेमचन्द उसका भी हम समूचे सामाजिक  
 आर्थिक राजनैतिक परिवर्तन में मानते हैं। निर्वाह कुर्बान जब बैरानों के हित के  
 लिए एक माटक-मण्डली बना कर उनकी रोजी का बरिया बदलना चाहते हैं और  
 इस प्रकार बेस्वा-समस्या के हम की बात सोचते हैं तो डा० नेहता कहते हैं—'जब  
 एक समाज की व्यवस्था ऊपर से नीचे तक बदल न सके तो आप इस तरह की  
 गरीबी से कोई फायदा न होना।'—'जब तक दुनिया में शोषण चले रहने बेस्वार्थ  
 रहेंगे।'—'जब पर जब तक कुम्हारों ने अपने पतिव्रता तोड़ने से कोई मतीबा  
 नहीं। निश्चय ही प्रेमचन्द सारी पद्धति में आमूल-मूल परिवर्तन चाहते हैं। वे  
 किसी क्षेत्र में अल्प-अल्प प्रयत्न के बिरोधी तो नहीं हैं क्योंकि नेहता की सम्पूर्ण  
 व्यवस्था में परिवर्तन की बात को मानते हुए भी उन्होंने कुम्हार के माध्यम से कहा  
 है—'समाज की व्यवस्था क्या आसानी से बदल जायेगी? वह तो सदियों का  
 मुमानता है।'—'तब तक क्या यह अर्थ होने दिया जाय? किन्तु पद्धति में इतना  
 व्यापक विकार उत्पन्न हो चुका है, कि जब तक इस समूचे का कायाकल्प न किया  
 जाये बात नहीं बनेगी। बिना देखे उधर घोंघली मची हुई है। रायसाहब कहता  
 है कि मुझे अफसों को बालियाँ देनी पड़ती हैं परम्परा का पालन करने के लिए  
 तरह-तरह का काइम्बर रचना पड़ता है। वह सम्पादक ऑफरलाय से स्पष्ट कहता  
 है—'सात पुष्टों से जिस तातावरण में पला है, उससे जब निकल नहीं सकता।—  
 आपके पास जमीन नहीं, आपका नहीं, गरीबों का शोषण नहीं आप निर्भीक हो  
 पड़ते हैं, लेकिन आप भी कुछ दबाये बैठे रहते हैं। आपको कुछ बहर है अशक्तों  
 में कितनी रिश्वतें चल रही हैं, कितनी गरीबों का बूल हो रहा है, कितनी बैरानों  
 का हो रहा है। है बूला निजने का? सामग्री में बता है प्रमाद-सहित। और  
 गलत में ही ऑफरलाय के पास बस-बूता नहीं क्योंकि वह भी इस अर्थ-पद्धति का  
 तैयार हो जाता है। रायसाहब से ही सी ग्राहकों का चला पाकर वह अपना मुँह  
 और आँखें दोनों बन्द कर लेता है। रायसाहब भी बड़ी मुना देता है—आखिर मैं  
 आपके पक्ष का पंचगुना क्या क्यों देता हूँ—इसलिए कि आपका मुँह बन्द रहे।

जब आप बाटे का रोना रोते हैं— हर मोके पर आपकी कुछ-न-कुछ गन्ध कर देता है। घास में पचास बार आपकी बावण करता है। किसलिए? अपने सभी भाइयों की तरह मैं भी असाधियों से जुमाना जाता हूँ और घास में दस-पाँच हजार रुपये मेरे हाथ लग जाते हैं और अगर आप मुझ से यह कौर छीनना चाहिये तो आप बाटे में रहने । इससे क्या फायदा कि आप म्याय और कठम्य का डोंग रखकर मुझे भी बेरबार करें कुछ भी खरबार हों ?

इस प्रकार समाज की सारी व्यवस्था—विशेषकर अर्थ-व्यवस्था दूषित है। इसीसे अनेक समस्याएँ समाज के सम्मुख मुह बाये खड़ी हैं। इस दूषित आर्थिक व्यवस्था के कारण समाज में अर्थ-विपन्नता उत्पन्न हुई है। बेकारों किसान का जीवन अविद्याप बना हुआ है। समाज में इसीसे ऊँच-नीच बड़े-छोटे का अर्थ-भेद पैदा हो गया है। पैसे के अभाव में गरीब को तो पठित बना दिया है, पैसे की अतिछकता में भी अमीर को अनुम्य नहीं रहने दिया। मिर्ची कुर्से जब लक्षपति ने हजारों मकूरों का शीपण करते थे शूरोपियन छेकरियों के साथ बिहार करते थे बड़े-बड़े अछरों के साथ शायरों उड़ाते थे हजारों रुपये महीने की सटाव पी जाते थे। बेरमा-समस्या भी इसी दूषित अर्थ-व्यवस्था का परिणाम है। बैबाहिक पद्धति में दोष भी इसीलिए आये हैं कि हमने उसे अर्थ पर आधारित किया हुआ है। पैसे के लोभ से माँ-बाप अपने बेटा-बेटी से अन्याय करते हैं बड़े प्रवा भी पैसे का लोभ ही है बेमेन बिबाह भी पैसे के दम पर ही होते हैं। बन हो तो छूत का भूत भी भाव सकता है। मे अन्धविश्वास भाग्यवाद धुआँधूल जमान में अज्ञान का परिणाम है। गरीब को यदि उचित शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त हों तो परम्परागत आर्थिक और सामाजिक डोंग भी समाप्त हो सकते हैं। बिबाहरी का भूल भी पैसे के अभाव में ही चिमटा है। इस प्रकार 'गोदान' की मुख्य समस्या आर्थिक विपन्नता और अर्थ-मशान संस्कृति अर्थात् महाजनी सम्मता के दुष्परिणामों की समस्या है। गरीब पैसे के अभाव में पिस रहा है और पैसे वाले पैसे के दम पर उसे पीस रहे हैं उसे पीस ही नहीं रहे पैसे से उन्होंने समाज में अनेक प्रकार की अनीतियाँ और अन्याय उत्पन्न किये हुए हैं। सिगुरीसिह वातावरण से कहता है— 'कानून और म्याय उसका है जिसके पास पसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असाधों के साथ क्यारि न करे, कोई अमीरदार किसी कास्तकार के साथ सक्ती न करे, मगर होता क्या है? रोब ही देखते हो। अमीरान गुणक बँबसा कर पिटाता है और महाजन साठ और नूने से बात करता है। जो किसान पौड़ा है, उससे न अमीरदार बोलाता है न महाजन। ऐसे आसधियों से हम भोग मिल जाते हैं और उनकी मदद से दूसरे आसधियों की परदेन बचाते हैं। तुम्हारे ही ऊपर रायसाहब के पौष छी रुपय निकसते हैं, लेकिन

लेखन में है इतनी हिम्मत कि तुम से कुछ बोलें ?—...कचहरी-जशमत उठी के गम है, बिमके साथ पैसा है हम सोगों को चबराग की कोई बात नहीं ।'

समाज की इन प्रमुख समस्या के ही आशय 'गोदान' में विभिन्न-विभिन्न समस्याएँ प्रकट हुई हैं । समाज में शोषण की समस्या, है जमींदारी शोषण असम है महाजनी बनप । पूँजीवादी मिल-आमिक और मजदूर की समस्या है अर्थ-सोशुप पुमिन्-कम पाटी और रिस्वतखोर ब्रिटिश नीकरशाही की समस्या है । परम्परागत ब्राह्मणो-धर्म की महाजनो-सम्पत्ता का रूप लिए हुए है क्योंकि ब्राह्मण भी महाजन बना हुआ है और उनका धर्म भी शोषक है । छुआछूत और जाति भेद का ढोंग धार्मिकवाद और धर्म का भय सब यशोव को कुलने के लिए ही है । पारिवारिक जीवन में अमान्ति भी पैसे के बभाब और पैसे के आधिक्य से उत्पन्न होती है । गरीब घरों में सास-बहू बैरपट्टे जडानी पिठा-मुक्तों में जो झगड़े और असहोसे होते हैं उनके मूल में उनकी निपट वरिष्ठता ही है । पैसा हो तो ये झगड़े काड़े को हों । उधर बभा-असे धनपतियों का पारिवारिक जीवन इसलिये अमान्ति रहता है कि पैसे के आधिक्य से उन्हें बिलास सुसता है । इन अधिक बमान के फिटाक में उन्हें परिवार की सुख बान्ति का कोई ध्यान नहीं रहता । अर्थ-प्रधान पद्धति ने ही वैवाहिक प्रथा को दूषित किया हुआ है । बस्या-समस्या भी इसी की उपज है ।

प्रमचन्द ने 'गोदान' में नारी-समस्या का अवयव विस्तृत रूप अपनाया है जो आर्थिक पहलू के बाहर भी अपना स्वस्म्य रखती है । आधुनिक नारी-स्वच्छन्दता भी समाज की एक प्रमुख समस्या के रूप में उस समय प्रकट हो रही थी । पुरुष के अत्याचारों से पीड़ित नारी ने अपने समानता के अधिकारों के लिए आवाज बुमन्द की है यह तो ठीक ! पर स्वच्छन्दता के नाम पर जब हमारी नर-व्यसिता नारियाँ छिडसी बनी हुई हाम-बिलास को ही अपने आवन का नयम मान बैठती हैं तो यह स्थिति समस्या उत्पन्न करने वाली बन जाती है । मातली का आर्थिक रूप नारी की स्वच्छन्दता का ऐसा ही रूप है । बार का सेवा त्याग कर्त्तव्य-पालन बासा उदार उदात्त स्वतन्त्र रूप प्रेमचन्द को काम्य है । नारी को पुरुष के समान अधिकार मिलने चाहिए और पुरुष-द्वारा युग-युग से प्रताड़ित नारी की मुक्ति आवश्यक है । किन्तु पाश्चात्य प्रभाव से उसका समाज में हाव-भाव प्रवर्तन फैलन की पुनर्मी बन कर स्वच्छन्द बिहार करना समाज के नैतिक पणन का ही घातक होपा यह प्रमचन्द ने स्पष्ट किया है । समाज-नैसा का जन अपनाकर चलने वाली मामती अपने मातृत्व और गार्हस्थ्य धर्म का पालन करने वाली योगिनी ही हमारी आदर्श नारियाँ कहना सकती हैं ।

समाज की इन सभी समस्याओं के मूल में वैयक्तिक या सामूहिक स्वार्थ और



जब आप बाटे का रोना रोते हैं—हर मोने पर आपकी कुछ-न-कुछ मरह कर देता है।—साम में पचाम बार आपकी दावत करता है। किसलिए?—अपने सभी पादर्यों की तरफ़ मैं भी असाधियों से जुझा लेता हूँ और साम में बस-बाँच हज़ार रुपये मेरे हाथ में आते हैं और अगर आप मुह से यह कोर छिनना चाहें तो आप बाटे में रहेंगे। इससे क्या फ़ाइना कि आप न्याय और कर्तव्य का डोंर रखकर मुझ भी खरबार करें, खुद भी खरबार हों?

इस प्रकार समाज की सारी व्यवस्था—विशेषकर अर्थ-व्यवस्था दूषित है। इसीसे अनेक समस्याएँ समाज के सम्मुख मुह बाँधे खड़ी हैं। इस दूषित आर्थिक व्यवस्था के कारण समाज में बच-विपमता उत्पन्न हुई है। बेचारे किसान का बीबन अविनाश बला हुआ है। समाज में इसीसे ऊँच-नीच बड़े-छोटे का वर्ग-भेद पैदा हो गया है। पैसे के अभाव में गरीब को तो पठित बना दिया है पैसे की अतिशयता ने भी अमीर को मनुष्य नहीं रहने दिया। निर्वात धुम्रौष जब सत्तपति के हवातों मनुष्यों का सापस करतें के भूगोपियन छेकरियों के साथ बिहार करतें के बड़े-बड़े बफ़सतों के साथ बाघतें उड़ातें के हवातों रुपये महीने की तराब पी जातें थे। बेस्वा-समस्या भी इसी दूषित अर्थ-व्यवस्था का परिणाम है। वैवाहिक पद्धति में शोष भी इसीलिए आये है कि हमने उसे अर्थ पर आधारित किया हुआ है। पैसे के शोष से माँ-बाप अपने बेटा-बेटी से अत्यास करतें हैं, वहीँ प्रजा भी पैसे का लोभ ही है बेमेल विवाह भी पैसे के दम पर ही होते हैं। जन हो तो धूल का झूठ भी भास सकता है। ये अन्तर्विश्वास भ्रांम्यभाव छुमाधूत जनम में अविद्या का परिणाम है। गरीब को यदि उचित शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त हो तो परम्परागत आर्थिक और सामाजिक डोंर भी समाप्त हो सकते हैं। बिगबरी का झूठ भी पैसे के अभाव में ही बिमलता है। इस प्रकार 'गोदान' की मुख्य समस्या आर्थिक विपमता और अर्थ प्रधान संस्कृति अर्थात् महाजननी सम्मता के दुष्परिणामों की समस्या है। गरीब पैसे के अभाव में पिस रहा है और पैसे वाले पैसे के बल पर उसे पीस रहे हैं उसे पीस ही नहीं रहे पैसे से उन्होंने समाज में अनेक प्रकार की अनीतियाँ और अन्धाय उत्पन्न किये हुए हैं। सिन्धुपीसिह दाताधीन से कहता है—कानून और न्याय उत्तम हैं जिसके पास पैसा है। कानून तो है कि महाजन किसी असाधियों के साथ कड़ाई न करे, कोई अमीबार किसी कास्तकार के साथ सझी न करे, मरह होता क्या है? रोब ही देखते हो। अमीबार मुग़ल बंधन कर पिटवाता है और महाजन सात और बूते से बात करता है। जो किसान पोड़ा है, उससे न अमीबार बोलता है न महाजन। ऐसे आसधियों से हम लोग मिल जाते हैं और उनकी मरह से हमारे आसधियों की परंग बघाते हैं। दुम्हारे ही ऊपर रायसाहब के पाँच सी रुपये निकसते हैं लेकिन

मोक्षम में है इतनी हिम्मत कि तुम मे कुछ सोचें ?— "कचहरी-अशमत उसी के बाव है बिछे छाव पैसा है हम सोनों को बचराने की कोई बात नहीं ।'

समाज की इस प्रमुख समस्या के ही आशय 'गोदान' में मिश्र-मिश्र समस्याएँ प्रकट हुई हैं । समाज में शोषण की समस्या है जमींदारी शोषण अलग है महाजनी बयव । पुँबीबारी मिल-आमिक और मजदूर की समस्या है जब-ओद्योग पुँनित-कर्म चाली और रिस्वतखोर ब्रिटिश औकरताही की समस्या है । परम्परागत ब्राह्मणी-धर्म भी महाजनी-सम्पत्ता का रूप लिए हुए है क्योंकि ब्राह्मण भी महाजन बना हुआ है और उठका धर्म भी शोषक है । कुम्हार और पाठि-वेद का होम पागबारा और बच का भव सब गरीब को मृत्यु के लिए ही है । पारिवारिक जीवन में अशान्ति भी पैसों के बचाव और पैसों के आधिक्य से उत्पन्न होती है । गरीब घरों में सास-बहू बैरानी-बेठानी पिता-पुत्रों में जो झगड़े और अलमोशें होते हैं उनके मूल में उनकी निपट बख्तिरा ही तो है । पैसा हो तो ये सबके बाहों को हों । उधर बचा-बैर बचपतियों का पारिवारिक जीवन इसलिए अशान्त रहता है कि पैसों के आधिक्य से उन्हें बिसास सूझता है । सब बहिक बमाने के छिटाक में उन्हें परिवार की सुख शान्ति का कोई ध्यान नहीं रहता । जब प्रवान पद्धति ने ही वैवाहिक प्रथा को दूषित किया हुआ है । वैसा-समस्या भी इसी की उपज है ।

प्रेमचन्द ने 'गोदान' में नारी-समस्या का अक्षय्य विस्तृत रूप बयनाया है जो आर्थिक पक्ष से बाहर भी अपना स्वरूप रखती है । आधुनिक नारी-स्वच्छन्दता भी समाज की एक प्रमुख समस्या के रूप में उस समय प्रकट हो रही थी । पुरुष के आवाचारों से पीड़ित नारी ने अपने समानता के अधिकारों के लिए आवाज बुलन्द की है यह तो ठीक । पर स्वच्छन्दता के नाम पर जब हमारी नव-विक्षिता नारियाँ छिपनी बनी हुई हाम-बिलास को ही अपने आनन का भय मान बैठती हैं तो यह विविध समस्या उत्पन्न करने वाली बन जाती है । मासती का आरम्भिक रूप नारी की स्वच्छन्दता का ऐसा ही रूप है । बाव का सेवा स्थान कर्ष-धन-धामन बाभा उदार उदात्त स्वतन्त्र रूप प्रेमचन्द को काय्य है । नारी को पुरुष के समान अधिकार मिलने चाहिए और पुरुष-शाय युग-युग से प्रताड़ित नारी की मुक्ति आवश्यक है । किन्तु पाश्चात्य प्रभाव से उसका समाज में हाव भाव प्रचलन पैमान की पुतली बन कर स्वच्छन्द विहार करना समाज के नैतिक पनन का ही घातक होमा वह प्रेमचन्द ने स्पष्ट किया है । समाज-सेवा का घट अपनाकर चलने वाली मासता अपने मातृत्व और पारिवारिक-धर्म का पासन करने वाली पोषिनी ही हमारी आदर्श नारियाँ कहना चाहती हैं ।

आत्मसेवा की प्रवृत्ति है। अतः वहाँ एक ओर प्रेमचन्द का उद्देश्य इन सभी यात्रिक दुराहियों का विरोध करने की प्रेरणा देना है अग्याय अत्याचार, स्वार्थ और सभी दुराहियों से बचना और उनके विनाश-द्वारा समूची सामाजिक-व्यवस्था ब्यामून-नून परिवर्तन माने का सन्देश देना है वहाँ दूसरी ओर मानव की सत्य से त्याग नि स्वार्थ-भावना अहिंसा परोपकार आदि की उच्च मानवीय प्रवृत्तियों बचाना भी उनका उद्देश्य है। मासती के चरित-परिवर्तन तथा मेहुता के जीवर्तन के रूप में प्रेमचन्द ने मानवीय उच्च प्रवृत्तियों का सन्देश दिया है। निश्चय उनका उद्देश्य महान् है। 'बोबान' बुग-बुग के चिरन्तन मानवीय सत्यों की स्था करने वाली महान् रचना है। उसका उद्देश्य सामयिक नहीं कहा जा सकता। ही अब या जाने कृषक-जीवन की ये समस्याएँ न रहें जो 'बोबान' में चित्रित हैं पर मानवीय संघटनाओं के जिस रूप में वे प्रकट हुई हैं वह कभी सामयिक रह सकता वह शाश्वत है चिरन्तन है। प्रेमचन्द ने अपने बुग की ही नहीं जाने के की वाहट् भी सुनी है।

प्रेमचन्द के गोबान तथा अन्य उपन्यासों में कृषक-समस्याएँ

प्रेमचन्द आरम्भ से ही कृषकों की दयनीय बसा के बारे में उबन रहे हैं उनके प्रायः सब उपन्यासों में कृषक-व्य की दयनीयता का चित्रण हुआ है। यह है कि उन्होंने कृषक-जीवन की समस्याओं का क्रमिक अध्ययन अपनी रचना में प्रस्तुत किया है। 'बोबान' इस अध्ययन की चरम परिणति है। आरम्भिक 'बोबान' में केवल चिरजन के पत्नों-द्वारा कृषक या ग्राम-जीवन की दयनीय बसा चित्रित किया गया था। 'सेवासदन' में जाकर प्रेमचन्द ने चित्र में कदना घर की मछलि 'सेवासदन' में बेध्या-समस्या प्रमुख दिखाई देती है और उसके आकर्षक पाठक को अन्य समस्याओं का ध्यान नहीं रहता। किन्तु ध्यान से देखा जाय तो इस रचना में भी कृषक की दयनीय बसा का कदम चित्र स्पष्ट दिखाई देगा। आरम्भ ही ग्रामिक दुरवस्था और अमीबार महान्त रामवास जिस निर्धनता से भेद किसान क मरना जानता है अरीय किसानों से बबरबस्ती वेगार और भयान बमूस करता है बाँकेबिहारी और अपनी शक्ति के बल पर बबरबस्ती भया सेता है और हीन हज्जत करने बाने भेद को यम का टिकट बिसा देता है पुनिस को भी अपनी पी पर कर सेता है आदि यह सब चित्रण किसान की दयनीय परिस्थिति का ई शोचक है।

निश्चय ही प्रेमचन्द 'सेवासदन' में किसान की दयनीय स्थिति से मर्महित है। वे यद्यपि यहाँ इसके कारणों भिन्न-भिन्न पहलुओं की अधिक खोजबीन नहीं करते परन्तु उनके मन में कृषक-वर्ग की इस स्थिति को बदलने की प्रबल आकांक्षा है। तभी तो

उपन्यास को समाप्त करने से पूर्व सबन के परिचित हृदय की रक्षा का यों बयन देते हैं— 'वहाँ पहले सुमन का कोठा था वहाँ सज्जीत पाठशाला कायम हो गई है।' किं के राष्ट्रीय मीठ को सुनकर सबन के हृदय में देशोपकार, जाति-सेवा और राष्ट्रीय औरत की पवित्र भावनाएँ गुँजने लगीं। 'उसने कल्पना में अपने को कृषकों की सेवा करते हुए देखा। वह जमींदार के कारिन्दे से बिनय कर रहा था कि इन बीन जनों पर क्या करो। कृषकगण उसके पैरों पर गिरे पड़ते थे उनकी जहाँ उसे मासीबाँव दे रही थी।' ( सेवासदन दिसम्बर १९१० पृष्ठ २६० )

कृषक-समस्या को विशेष विस्तार से चिन्तित किये बिना ही विभिन्न-विभिन्न पात्रों के वे बहुसंख्य और विचार प्रस्तुत करना इसी बात का परिचायक है कि प्रेमचन्द के मन में कृषक-वर्ग की समस्या एक प्रमुख समस्या के रूप में यहाँ भी विद्यमान है 'चाहे उन्होंने वहाँ उसका चिन्तन न किया हो। कुछ बर अनिकटसिंह के बारे में कहा गया है कि 'कुबर अनिकटसिंह एक 'कृषि सहायक समा' खोलने वाले हैं। समा का अर्थ होना किसानों को जमींदारों के जत्याचार से बचाना।' ( पृ २२७ ) सुधारक विद्वत्वास भी अन्त में इस ओर उन्मुख होते हैं— 'आजकल वह ( विद्वत्वास ) कृषकों की सहायता के लिए एक कोष स्थापित करने का उद्योग कर रहे हैं, जिससे किसानों को बीज और रुपये नाम-आम मूल पर उधार दिये जा सकें। इस सत्कार्य में सबन बाबू विद्वत्वास का बाहिना हाथ लगा हुआ है।' ( पृ० २३७ )

'सेवासदन' के सन् १९११-१७ के ये सप्ताह क्या प्रेमचन्द की भारी रचना 'प्रमाथम' के निर्माण की स्पष्ट सूचना नहीं देते। यही यह स्पष्ट हो जाता है कि 'सेवासदन' में बेक्या-समस्या को प्रमुखता देने के बाद अब अन्त में प्रेमचन्द कृषक-समस्या को प्रधान मानने लगे हैं। वह किसानों की दयनीय दशा से बहुत चिन्तित हैं। वह उनकी भलाई चाहते हैं। सम्भवतः प्रेमचन्द की कल्पना उनके मन में इसी समय हो गई होगी। इससे यह भी सिद्ध होता है कि 'प्रमाथम' में कृषक-संघर्ष की अवधारणा के लिए प्रेमचन्द गांधीजी के आशीर्वाद नहीं हैं। गांधीजी के प्रभाव से बहुत पहले उनके मन में कृषक-वर्ग के उद्धार की बनबसी इच्छा विद्यमान हो चुकी थी। इस समय कृषकों के उद्धार के लिए उनके पास दो ही तरीके विचार्य देते हैं—(१) जमींदारों और कारिन्दों से अपील करना कि वे 'इन बीन जनों पर क्या करें।' (२) कृषकों की सहायता के लिए सभा-संस्थाएँ खोलना जिससे वे कम मूल पर बीज याद के लिए रुपये ले सकें और जमींदारों के जत्याचारों से बच जाएँ।

इस कार्य की पूर्ति के लिए प्रेमचन्द 'सेवासदन' में विद्वत्वास कुबर अनिकटसिंह सबन आदि मोक्ष-सेवक पात्रों की कल्पना करते हैं। वह जमींदारों और जमींदारों के संघर्ष के पक्ष में नहीं हैं। जिस सबन के मन में कृषकों की सहायता

का सकस्य उत्पन्न हुआ या नहीं जब थोड़ी देर बाद सुनता है कि कुँवर अनिन्दसिंह ने एक कृपक सहायक सत्ता बनाई है तो उसका भाव एकदम बदल जाता है। "यह जमींदार का और कृपकों पर दया करना चाहता या पर उसे यह संसुरन का कि कोई उसे दबाये और भड़का कर जमींदारों के विरुद्ध खड़ा कर दे। उसने मन में कहा यह लोग जमींदारों के सत्त्वों को मिटाना चाहते हैं।" "ता हम लोगों को भी सतर्क हो जाना चाहिए, हमको अपनी रक्षा करनी चाहिए। मानव-प्रकृति को दबाव से कितनी घृणा है।

प्रेमचन्द की ये पंक्तियाँ क्या देते योग्य हैं। इससे प्रेमचन्द की विचारधारा के दो रूप स्पष्ट होते हैं। एक तो यह कि प्रेमचन्द सन् १९१६-१७ से ही बहु समझ रहे हैं कि जमींदार का हृदय-परिवर्तन हो सकता है। उसके मन में कृपकों के प्रति दया जमाई का सक्ती है। और निश्चय ही प्रेमाश्रम में मावातकुर के हृदय-परिवर्तन का यही रहस्य है। दूसरी बात यह कि प्रेमचन्द बर्ग-संघर्ष के पक्ष में नहीं हैं। वह अहिंसालभक आन्तिमुर्न तरीकों से इस समस्या को हल करने के पक्ष में हैं। समझौते और हृदय-परिवर्तन की धारणा यही बल चुकी है। आगाधी रचनाओं में प्रेमचन्द (‘प्रेमाश्रम’ में) अमरकान्त (‘कर्मभूमि’ में) चतुर्धर (‘कामाक्ष्य’ में) आदि पात्रों ने प्रेमचन्द के इसी आदर्श का निर्वाह किया है। यह आदर्शवाद प्रेमचन्द ने गांधीजी के प्रभाव से अपनाया हो या टॉलस्टाय से लिया हो अबका उनकी अपनी चिन्तन-धारा का परिणाम हो इसमें सन्देह नहीं कि वह 'बोधान' से पूर्व की सभी रचनाओं में इसे अपनावे रहे और इसी कारण उनकी बोधान-पूर्व की सभी रचनाओं की अन्तिम परिणति एक कृपक की परिणित-सी हो गई। प्रेमचन्द के उपन्यासों में बर्ग-विपरीतता और बर्ग-वैतना कम होते हुए भी बर्ग संघर्ष का जो प्रभाव प्रभाव है, वह भी इसी कारण।

'प्रेमाश्रम' में कृपक-जीवन की विपत्तियाँ चुनकर प्रकट हुईं। यद्यपि कृपक आन्तोन्नत का इसमें भी अभाव है पर उसके संकेत स्पष्ट प्रकट हुए हैं। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द कृपक और जमींदार की समस्याओं को गहराई से देखते नजर आते हैं। यद्यपि इसका समाज उन्हीने नहीं समझौता और हृदय-परिवर्तन ही बताया है। पर उनकी रचना साफ पुकार रही है कि जमींदारी प्रथा का सम्पूर्ण क्रिये बिना कृपक की समस्याएँ दो घुमना ही नहीं सकतीं जमींदार भी राहत नहीं पा सकता। त्रितीया कस्ती यह पद्धति गलत हो जाय उठना ही अच्छा है। इसमें एक ओर मनोहर और उसके बेटे बजरंग की मित्रोही भागी मुनाई देती है दूसरी ओर प्रेमचन्द और बेटे सुधारक जमींदारी का विरोध करते हैं और यहाँ तक कि तीसरी ओर स्वयं जमींदार अपने बर्ग की आलोचना करते पाये जाते हैं। इस रचना में बाहु ठर

बढ़के बोला है। बसराज तो मरले-मारले का ही तैयार हो जाता है और कस तथा बसनेरिया का उदाहरण देकर कास्तकारों का राज होने की बात करता है। उधर प्रेमचन्द भी स्पष्ट शब्दों में कहता है—“भूमि उसकी है या उसकी बात। सासक का उसकी उपज में भाग लेने का अधिकार इसलिए है कि वह देश में शांति और रक्षा की व्यवस्था करता है जिसके बिना खेती ही नहीं हो सकती। किसी तीसरे वर्ग का समाज में कोई स्थान नहीं है।”

‘आमासिंह’—महाशय इन विचारों से तो आप देश में जालि मचा देंगे। आपके सिद्धान्त के अनुसार हमारे वडे-बडे जमींदारों, ताकतुकेदारों और रईसों का समाज में कोई स्थान नहीं है सब के सब हाफू है।

‘प्रेमचन्द’—इसमें इनका कोई दोष नहीं प्रथा का दोष है। इस प्रथा के कारण देश की किस्मती जातिक और नसिक अवस्थिति हा रही है इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। हमारे समाज का यह भाग जो बल-बुद्धि-विद्या में सर्वोपरि है जो हृदय और मस्तिष्क के गुणों से अलङ्कृत है केवल इसी प्रथा के बल आसस्य बिलस और अधिकार में अलङ्कृत हुआ है।

तो प्रेमचन्द ने जमींदारी प्रथा को ही दोषी ठहराया है। यह प्रथा स्वयं जमींदार के लिए भी अनिष्टकारी है। प्रेमचन्द ने इस अपने उपन्यासों में मृत्पुरुष दिया है। स्वयं रायमाहब कमलानन्द अपनी आत्मोचना करते हुये कहते हैं—“मैं मानता हूँ कि जमींदार के हाथों किसानों की बड़ी पुख्ता होती है। मैं स्वयं इस विषय में सर्वथा निर्दोष नहीं हूँ। बेमार नेता हूँ। बाँध-बाँध भी भरा हूँ। बेदखली या एजाफा का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देता। - ‘हम रियासत कहना भूल है यह निरी बसानी है। इस भूमि पर क्या क्या अधिकार है? मैंने इसे बाहुबल से नहीं लिया राजबिग्रह के समय पिलायी न तब मन से अंग्रेजों की सहायता की।” यही इस रियासत की हकीकत है। हम जबम सगान बनूस करने के लिए रहे गए हैं। इसी बसानी के लिए हम एक-दूसरे के खून से अपने हाथ रंगते हैं। इसी धीन-हत्या को हम रोक कहते हैं। इसी कारिगरी पर हम पूज नहीं समाले।” तुम कहाँ यह सब कोरी बकवास है। रियासत इतनी बुरी चीज है तो उधे छोड़ क्यों नहीं देते। हाँ यही तो रोना है कि हम गियासत ने हमें बिलामी आससी और अपाहिज बना दिया। हम अब किसी काम के नहीं रहे।”

राय कमलानन्द की उपर्युक्त स्वीकारोक्ति ‘मोबाब’ के रायमाहब अमरपाल की स्वीकारोक्ति से अश्रुत साम्य रखती है। ‘मोबाब’ में प्रेमचन्दजी ने हम जमींदारी प्रथा का हलम दिखाने हुए मर-विकसित पूँजीवाद तथा महाजनी मध्यमा को रूपक-समस्या के लिए जमींदारी प्रथा से भी अधिक उन्नतवादी ठहराया है। ‘प्रेमाश्रम’ में

भी हुयकों की विपत्ति का दूसरा कारण ब्रिटिश शासन-पद्धति बताई गई है। ब्रिटिश नौकरशाही के काले कारणों से प्रेमचन्द की तीव्र आलोचना का विषय बने हैं। यों पर निकलने वाले अफसर और उनके भ्रम से अपराधी जर्मनी आदि किस प्रकार हमारे गाँवों पर टिड्डीबल हमसा कर बैठे हैं। इसका बहुत ही मार्मिक वर्णन प्रेमचन्द में किया गया है। ये लोग अपने रीब से गाँव वालों को सूटते हैं। मुफ्त का राख उड़ाते हैं बेगार सेते हैं। इसके अतिरिक्त पुनिश इन्फिमि नज आदि भी जमींदारों से रिस्वतें उठाकर किसानों के बिखर कार्रवाही करते और डिमियाँ देते हैं। या नहीं इसी शासन-पद्धति ने आपस के प्रेम और सम्मान को नष्ट कर दिया है। प्रेमचन्द शब्द किसानों की बख्शता के लिए इसे बोपी ठहराते हुए कहते हैं—“उनकी बख्शता का उत्तरवायित्व उन पर (जमींदारों पर) नहीं बल्कि उन परिस्थितियों पर है, जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है और यह परिस्थितियाँ क्या हैं आपस की पूरा स्वातंत्र्यता और एक ऐसी संस्था (सोवियत) का विकास जो उन गाँव की बेड़ी बनी हुई है।” यह वाक्य इन (पारस्परिक प्रेम) सम्मानों को अपने लिए चातक समझता है और उन्हें पनपने नहीं देता।

इस प्रकार हुयकों की विपत्तियों के कारण हैं सोवियत जमींदार और ब्रिटिश शासन। जमींदारी सोवियत एक पद्धति बन गया है जिसे वह मितरी ब्रिटिश शासन से। जमींदार भी बिखर है। उसे अफसरों को डालियाँ देनी पड़ती है। यह दलाली का काम निभाता पड़ता है अपनी धान बनाकर रखनी पड़ती है। इस दोनों ही संस्थाओं—सोवियत और शासन—का अन्त प्रेमचन्द ने चाहा है। पर वास्तव में किसी हिंसामय क्रांति के रूप में नहीं हृदय-परिवर्तन के रूप में दिखाया गया है। जमींदार मायाजीपुर अपनी रियासत छोड़ देता है और प्लातासिंह इकलित्व आदि सरकारी अफसर किसानों पर किए गए अपने अत्याचार पर पछताए हैं। प्रेमचन्द की कल्पना को एक सुखद हल मिला गया जहाँने उसकी आकांक्षा की प्रेमचन्द अपने इस काल्पनिक आदर्शवादी हृदय—समझोते व हृदय-परिवर्तन—की सम्भावना और आकांक्षा समझ में लाने तक करते रहे—सन् १९३३ तक प्रतीक्षा करते रहे देखते रहे। पर सम्भवतः उन्हें मायाजीपुर-जैसा एक भी जमींदार नष्ट बगल में दिखाई नहीं दिया जो अपनी रियासत या आपराध सहर्ष छोड़ने को तैयार हो गया हो। या जहाँने लापरवाह बन लिया कि यदि एक-आध ऐसा उदाहरण मिल भी जाय तो यह समस्या का कोई हल नहीं। यही कारण है कि 'गोदान' में प्रेमचन्द ने इसका सहारा नहीं लिया।

‘प्रेमात्म्य’ से यही ध्वनित हुआ था कि जमींदारी का उन्मूलन होना चाहिए। सोवियत शक्तियाँ बहुत दिन तक नहीं टिक सकती। मांगो प्रेमचन्द नतकार कर

रहें—जमींदारों जमी भी समय है बचन जाओ। मायाशङ्कर बन जाओ प्रेम  
मदुर भी बातें सुनो। राय कमलानन्द की बातें सुनकर अन्न अन्न में ही परिचरित  
हो जाओ इतनी ज्वालासिमिह का मार्ग पकड़ो नहीं तो किमान बचन रहा है। वह  
बन्नी बिरमुकता त्याग देगा। नई पीढ़ी त्याग भी रही है। वह मनोहर और बस  
राय बन कर अपने अधिकार प्राप्त कर लेगा। कमी कानि सा देगा। तब भी तुम्हारा  
अस्तित्व न रहेगा। अन्न में सारा हृदय-परिवर्तन और आदर्श-मन्त्र हमी भूमिका में  
हुआ है। वह वास्तविक नहीं है। युग का लक्ष्य भी नहीं है—कोरी कल्पना है आदर्श  
है। पर प्रेमचन्द की महत्तावना से भरी कल्पना है। एक आगा है—कलाकार की  
धूमधमा और गुलाबी आगा—ममता के प्रति जीवन के प्रति आस्थावादी साहित्य-  
कार की आस्था। प्रेमचन्द ने इसके लिए अपनी कला को ठम पहुँचान की परवा  
भी नहीं की।

‘कर्मभूमि’ में पू बीबाब भी आकर सम्मिलित हो जाता है। औद्योगिकरण के  
रूप में यह एक ओर हमारे कृषकों को मजदूर बनान में लगा है। मायब भूमि का  
अपधिक भार दूर करने की दृष्टि से यह शुभ मक्षण होगा। पर दूसरी ओर इस  
मारे ज़ातों की पबिकता और शक्ति नष्ट होने का भय है, हमारे कृषक-जीवन में  
ह गन्तगी पैदा कर रहा है। बेसी रियासतों में स्थिति और भी खराब है। ‘काया  
कर्म’ में प्रेमचन्द ने बेसी रियासतों के निम्न कोषण का और भी गभीर विश्लेषण  
किया है। ‘कर्मभूमि’ में भी समस्या का बड़ी रूप है। प्रेमचन्द ने इन सब  
रचनाओं में ‘प्रमाथम’ वाला दृष्टिकान ही अपनाया है।

‘मोदान’ में कृषक-जीवन की समस्याओं का अत्यन्त विस्तारपूर्वक विश्लेषण  
हुआ है। यह समस्या कबल जमींदारी पद्धति की समस्या नहीं है। जैसा कि पहली  
रचनाओं में प्रकट हुआ था। यह तो कोरमजोर आर्थिक समस्या है। आर्थिक विप  
न्ना के कारण किमान दखि बीन-बीन अमन्य अपड़ और मापित बना हुआ है।  
ममता में एक जमींदारी ही नहीं कई प्रकार की शोषण शक्तियाँ उपक अस्तित्व को  
निबन नहीं रही अतितु अपने पोषण का साधन बनाकर उस पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी  
दखि अवस्था में रखना चाह रही हैं। जमींदार तो एक ही हैं, महाजन कई हैं।  
जमींदार अत्यधिक ममान की बसुनी बेपार और चन्ने तथा दण्ड बादि से उमका  
कारिष्ठा भी अपनी कारिन्धगी के बलीर देगा, बईमानी तथा अन्य प्रकार की मू  
बसू से महाजन अत्यधिक मूय बसूल करके पटवारी अपने नगर-नगरान से पुनिम  
के शारोपा रिखत उड़ाकर धर्म के ठकेदार पकिडन धर्म का भय चिन्ताकर शान-दक्षिणा  
पकिडाई बसूल करके पन्ध और चौकरी डाँड मयाकर, नगर के निम-मायिक उनकी  
उमक बम तोलकर, बम भाव मयाकर—सब उमे मूय रहे हैं। सब शोषक आक की



कर जगा रहा है कि बदलो हम समाज-व्यवस्था को इस जर्ब-पट्टति और समाज की सभी कड़ियों को जड़-मूल से उखाड़ दो सभी मानव-वादी पद्धतियों का नाश करो। पतियां तोड़ने व भीषण से भी कुछ नहीं हाया। मेहता के शब्दों में स्पष्ट कहा गया है कि जड़ को पकड़ो—मारी समाज-व्यवस्था या जब-व्यवस्था को बदलो। निम्न ही हम रचना में मुधार के पछपाती बह नहीं रहे हैं। समशीते और मुधार का पुण्य तरीका उन्होंने 'गोदान' में आकर छोड़ दिया है। किन्ती एक बिधा में मुधार से कुछ न हागा। सब पद्धतियों—जमींदारी पूँजीवादी महाजमी सिटिष नीकरवादी स्व प्रायिक आदि सब—को बदलना होगा मृत्यु-दण्ड देना होगा। शान्तिपूर्ण तरीकों से सम्भव हो तो शान्ति से बदलो नहीं तो क्रान्ति से बदलो बदलना मुक्त बात है।

## व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन

### मेहता का जीवन-दर्शन

'गोदान' में प्रमचन्द का व्यक्तित्व अत्यन्त स्पष्ट है। जीवन में जो कुछ वह आरम्भ से अन्त तक सोचते-विचारते आये बिन जीवन-दर्शनों और सिद्धान्तों को उन्होंने अपनाया जो उनका जीवन-दर्शन बना वह सब 'गोदान' में प्रकट हुआ है। गोदान में मेहता प्रमचन्द का ऐसा आदर्श पाता है जो प्रेमचन्द के अपने विचारों का भी प्रतिनिधित्व करता है। उसका माध्यम से प्रेमचन्द न अपना ही जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है।

प्रेमचन्द स्वयं सरल निष्कल प्रकृति के मानव थे। बिबाहे और बनावट से उन्हें दृष्टा थी। 'कवनी और करमी' में अन्तर उन्हें न पाता था। मेहता ऐसे ही स्वाभाविक जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करता है—मैं चाहता हूँ, हमारा जीवन हमारे सिद्धान्तों के अनुकूल हो। आप डकको के मुनेच्छ है उन्हें तरह-तरह की रियायतें देना चाहते हैं जमींदारों के अधिकार छीन लेना चाहते हैं फिर भी आप जमींदार हैं। "मुझे उन लोगों से डरा भी हमदर्दी नहीं है जो बातें तो करते हैं कम्युनिस्टों की-सी मगर जीवन है रईमों का-सा। मैं मजली पिन्वली का विरोधी हूँ। अगर माँस खाना अच्छा समझते हो तो खुस कर लाओ। बुरा समझते हो तो मत खाओ यह तो मेरी समझ में आता है। भक्ति अच्छा समझना और छिपकर खाना यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं इसे नायबता भी कहता हूँ और घुसता भी जो बास्न में एक है।

जमींदारी और पूँजीवादी समाज-व्यवस्था के प्रमचन्द विरोधी हैं। राजसाहब जब स्वयं कहता है— "किसी का भी दूसरे के श्म पर मोग होना का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना चोर मज्जा की बात है। कर्म करना प्राणी मात्र का धर्म है।

समाज की ऐसी व्यवस्था जिसमें कुछ लोग मीठ करें और अधिक लोग पिसें और अपने सभी सुख वहीं हो सकें। जिन्हें पेट की रोगी मयस्सर नहीं उनके अक्षय और निषेधक इस-वस पाँच-पाँच हजार फरवारे यह हास्यास्पद है और लज्जास्पद भी। इस व्यवस्था में हम जमींदारों में किसी विभाजिता किना दुराचार, बिठनी पचपीनता और बिठनी निष्कलता घर की है। तो मेहता ताली बजा कर रायसाहब का अनुमोदन करते हैं। पर उन्हें रायसाहब का यह रोना मयमय के आँसू प्रतीत होता है कोरी बुराई लगता है।

सांख्यिक दृष्टि और समाज-व्यवस्था के हमी हाँते हुए भी प्रेमचन्द व्यक्ति को ठा और मेहता स्वीकार करते थे। समाज-आपेक्ष समझते हुए भी व्यक्ति की स्वतंत्र चेतना को रक्षाना वह बुरा समझते थे। समाज व्यक्ति से ही बनता है। गौरीबाद में भी व्यक्ति और उसकी स्वतंत्र चेतना का विकास महत्वपूर्ण माना गया है। इन दृष्टि से प्रेमचन्द गान्धीबादी दृष्टिकोण के हमी हैं। मेहता बहता है—समाज व्यक्ति ही न बनता है। और व्यक्ति को भुलकर हम किसी व्यवस्था पर विचार नहीं कर सकते। यही नहीं वह व्यक्ति की दृष्टि से समाज में छोटे-बड़े का भेद भी साम्य सत्य मानते हैं। मैं इस सिद्धान्त का समर्थक हूँ कि संसार में छोटे-बड़े हमेशा रहेंगे और उन्हें हमेशा रहना चाहिए। इस भिन्नता की चेष्टा करना मानव-आत्मिक के सर्वनाश का कारण होगा। “बुद्ध ज्योती और ईसा समा समाज में समता के प्रवर्तक थे। यूनान रोम और सीन्गो सभी सम्प्रदायों में उसकी (समाज में समानता के सिद्धान्त की) परीक्षा की पर अप्राकृतिक होने के कारण कभी वह स्थायी न बन सका। धर्म की आप किसी अन्धमार्ग से बराबर करना संभव है। लेकिन बुद्धि को, चरित्र को रूप को प्रतिभा को और मन को बराबर कमाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे-बड़े का भेद केवल धर्म से ही तो नहीं होता?—आप स्वतंत्र की शिक्षा देंगे। वहाँ इसके सिवाय और क्या है कि मिला के मानसिक ने राजकर्मचारी का रूप से लिया है। बुद्धि सब भी राज करती थी अब भी करती है और हमेशा करेगी।

को लोग ‘मानव’ में प्रेमचन्द की गौरीबाद की अन्धम समाजवाद का समर्थक मानते हैं उन्हें मेहता की उपर्युक्त बात पर ध्यान देना चाहिए। निम्न ही ये बातें साम्यवाद के वर्गहीन समाज-निर्माण (Classless society) के सिद्धान्त से मेल नहीं खातीं। मेहता का स्पष्ट कथन है कि सब के विकास के लिए समान सुविधाएँ नहीं दी जा सकती। जिस बीमारों से बाहर काम करता है उसी बीमारों से भीतर नहीं करता। नया जग आहो है आम भी उमी दना में उन्हें-यूँ जैसे बुरा पा ताड़ ? मेरे लिए धर्म केवल उन सुविधाओं का नाम है जिनमें मैं अपना जीवन

देमों से बोझाई कराई धीरे धीरे को आधा आधा देना पड़ा। बेटी में सामा हों सम्पत्त मातावीन किसी-न-किसी बहाने झुनिया से बात करने होरी के घर आता।

घसा का लकड़र मित्र पुन जाने से अब किसानों की लड़ी ऊख ही जाती थी। सब ने ऊख बेच दी और मित्र से ले गये। महाजन इस दिन की में थे ही। नहीं आ पहुँचे। क्यों ही ऊख तुम्ही ऐसे मित्र क्यों ही महाजनों किसानों को घेर लिया। सिगुरीसिंह से तो मित्र के मुनीम से मित्र कर ही अपने। काटकर दिनबाये। होरी की ऊख के सब रूप सिगुरी और मोहराराम ने ही। मित्रों। एक कौड़ी भी पाने न पड़ी। ब्रमिया अस्ताली रह गई। मोई के लिए रुपये न रहे का सके। वह घर में आधा सपाय बैठे बच्चों के लिए भी एक पस चीज न ला सका।

१८ जसा और उसकी पत्नी गोविन्दी में नहीं पन्ती। जसा ब्रमिया सम्पत्त और किसानों है। गोविन्दी सती-साध्वी सीधी-सरल नारी है। जसा माँ पर मदद है गोविन्दी को वह कैसे पाये? पति-पत्नी में रोज तकटार रहती है एक दिन बात बढ़ गई। गोविन्दी ने बुझी होकर घर से बसे जाने का निश्चय कि जिस घर में उसका इतना मित्रवर है वहाँ कैसे रहे? वह ठीका लेकर पार्क चली जाती है। वहाँ अचानक डा० मेहता मित्र पाये हैं। मेहता गोविन्दी को आन नारी मानते हैं। वह गोविन्दी को शास्त्रना देते हैं और बापस घर छोड़ जाते हैं अपने मातृत्व का मोह त्यागना गोविन्दी के लिए भी कठिन ही था।

१९ मिर्जा खुर्सेव के बहाते में रहते मोहर की सास-भर हा गया था। बीच उसने अच्छी-भासी कमाई करली थी। नौकरी छोड़कर बौंचा लगान लगा और अब चाय की अच्छी दुकान चलाने लगा था। अब वह छोटा-मोटा मनुष्य बन गया था जो पास के छोटे-छोटे बाजारों को व्याज पर रुपये उधार देता था अब उसने अपने नाम जाने और झुनिया को जाने का निश्चय किया। सब के नि काफ़ी वस्तुएँ खरीदी और संकड़ों रुपये तकब लेकर वह गाँव चला।

२ होरी अब दातावीन का मजूर बन गया। उसका सारा परिवार दातावी के डेहो में काम करने लगा। दातावीन बहुत कड़ाई से काम भठा है। वह होरी के हस्का हाथ चलाने के लिये बाँटता है। होरी उसकी बाँट से बुझी होकर बेतहाश हाथ चलाने लगता है। उसके पूरे पेट की सूजा जीभों में बेचैय छ जाता है नडाखा हाथ से छूट जाता है और वह ज्वेत हो धूमि पर गिर पड़ता है। जनिया रोने लगती है। कुछ पिछाने और हवा करने से बोझी देर में जब होरी को होश आया तो ब्रमिया की जान में जान आई।

इसी समय मोहर घर पहुँचा। घर में उछल छ गया। ब्रमिया ने पुन की

माया भी। दोहर ने माया-विद्या के चरण छन। मुनिया ने अपना शीश मान  
 दिखाया। उठाइन दिया। पर भी हमा बनाई। बाई की बात सुनकर बाहर का  
 एक शीश उठा। माया बाई से गए, रसका भी बाहर को बरग दुख हुआ। महा  
 दोहर और महीरी ठाठ रसाकर बाहर गवि की शिविजय कन्य निरमा। उनके  
 रङ्ग-रङ्ग से सभी प्रभावित हुए। बाई के मुकक बाहर से उनके नाम मग मग।  
 दोहर ने सिंगुरी मोहराम दानाश्रीन बाई सबको फटकारा। सबके भागे जानी  
 फेरी बड़ाई। बाहर बाह बाहर माया के माह पहुँचा। वहाँ भी उनसे कुछ जान  
 बड़ाई। मोहा के लहके बङ्गी को नीकरी दिमाने का मोहा दिया और मोहा का  
 दोहर बनने का विमलम दिया। मोहा उसके रोह में आ गया और मोहा बाहर  
 के हराते कर दी।

२१ होनी के दिन दोहर के घर बच्छा बसाव रहा। रात को मशान हुए  
 दिनों में बदनी बहाल कुछ निबानी। बातादल सिंगुरी पालेउम पटावरी बाई  
 दया मशानता और मोहरा की मूक मग उठाई सबको नकने की और कुछ चिमो-  
 पिपा कर बमाम। कभी मोहा के सगम होये-बाहर से और भी बिड़ गए। मोह  
 एम न होरी का दुनाया और बमान बहा करन का हुबन दिया। होरी न पाई-पाई  
 -ल कुछ दिया आ। पर मोहराम ने रसीद न दी थी। सब माहराम के मानी से  
 बाह बमान बमाम करता चाहता था। बाहर की पता बना वो बह दोहर न पर  
 र माहराम के पास पहुँचा और सबके सामन बह मुनाई कि बहा घणपन गए।  
 पता रोह बमाला जमा बाहर रस से पिता पर बहू हो गया। तुम्हीं ने इन सबके  
 ला रखा है। मैं बहूँ भूँ तक मुगलू मेरे भी बर-बने हूँ। वह मनिया को माह  
 फर बासिब जान को ठगार हा गया। उनका दानाश्रीन को एक रुपये मोहके के  
 दिनाह में द्याह नयाकर गपन बहा करन जाई। बाह्य न अप की बुराई र दी।  
 हाई का बह-बीर मग जीव उठा। उसके मोहर से कहा कि हमें नीति नहीं छाडनी  
 बाह्य। बाहर और भी बिड़ गया। एक सर्पाया बने हो तो स्वयं मुगलू। मा-बने  
 मोह मग-बहू में मूक परमा-दमी हो गई। तागे-महने माली-मसौब और मग-सपद  
 के मशान के उठाएउम दोहर मुनिया और बने का लेकर बमा गया। मनिया का  
 मगल रोहा रह गया।

२२ रावप्रह्व बमरामसिंह को लम्बा ने यह माँसा बेकर राजा मूर्धप्रताप  
 सिंह के पिताह दानाश्रीन मने के लिए छात्र कर दिया कि राजा माह्व ॥ बम-बीम  
 द्यार एसा माह कर बैठ जान को बस कर दी मापनी। पर लम्बा को इस मानने  
 में कुछ हाव-पन मगना नजर नहीं आया तो वह राजा माह्व की बार हावया।

लिए पैसे का बीज था। बचनामी के घर से वह अब बी-आन से इलेक्शन नटना चाहते थे। उम्बर अपनी कन्या के लिए उन्हें एक 'माय्य और उचित' घर मिल गया। इलेक्शन और कन्या की मादी दोनों समारोहों के लिए उन्होंने छप्पा के बंदू से अपनी जायदाद निखकर रुपया कूक लेने के लिए छप्पा के जागे नाक छिर रखे। इसी बीच वहाँ डा० मेहता महिलाओं के लिए एक व्यायामशाला बनाने का प्रस्ताव और उसके लिए चम्ब की माँग लेकर जा उपस्थित हुए। राजसाहब ने राजासाहब से अधिक दिया।

पोवर-मुनिया के जाने के बाद होरी का घर सूना हो गया। बेचारा होरी बुरा परिश्रम करने लगा। एक दिन मातावीन के बैठ में चिमिया बनाज उठा रही थी। उसे कुमारी सहभाइन के दो पैसे देने थे। उसने उनके बरले मुट्ठी भर अनाज जमिहान से उठकर कुमारी को दे दिया। मातावीन ने शपथ कर अनाज उलटा गिरा लिया और चिमिया को डाँटने लगा तुझे क्या अधिकार है मेरा अनाज देने का? चिमिया बेचारी छप्पाटे में आ गई। कहाँ तो यह उसके पीछे पकड़ काटता फिरता था और बचन बैठा था कि सवा तुम्हें दित की राखी बनाकर रखूँगा कहाँ अब यह व्यवहार! इसी समय चिमिया के माँ-बाप भाई और बिरादरी के लोग वहाँ आ पहुँचे। चिमिया के बाप हरभू ने साफ-साफ कहा कि पण्डित हमारी बेटी की इज्जत भी है तो हम यों ही नहीं छोड़ेंगे। या तो हमें बाह्यन बनाओ नहीं तो हमारे सान रहो बाओ बठो चमार बनो। मातावीन और मातावीन के अकड़ने पर वे सब मातावीन को पकड़ लेते हैं और एक हड्डी का टुकड़ा उसके मुँह में चुभा देते हैं। बस बाह्यन का धर्म प्रज्ञ हो गया। वे जाते हुए चिमिया को भी बुरा पीटते हैं। वह भी मार खाती है, पर उनके साथ नहीं जाती। जिसने एक बार बाँह पकड़ी है उसे छोड़ कर कहाँ जाने? मातावीन साफ कह बैठा है जब चिमिया से मेरा कोई वास्ता नहीं। बेचारी गिरावित हो जाती है। होरी-मुनिया उसे अपने पास आसपस बैठे हैं।

२४ होरी को सोना के विवाह की चिन्ता सताते लगी। सीमास से एक अच्छा घर मिल गया। पर दान-दहेज कहाँ से ब। आखिर होरी ने सुबामर मिसल करके कुलारी से दो सौ रुपये उधार देने की हामी धरा ली। सोना को जब पता चला तो वह बहुत दुखी हुई। उसने चिमिया को मधुरा के पास मेवा और कहलाया कि सोना को चाहते हो तो सोना चाँदी दान-दहेज से इन्कार करता होया। मधुरा ने कड़ी मुस्किस से अपने बाप को राजी करके होरी के पास बैठ मेवा कि हम खेज न लेवे तुम उसका फिर म करता। चिमिया को घर-पस भी चलनसहित ने और भी प्रभावित किया। वे कुछ नहीं लेते तो क्या कन्या को यों ही भेज दिया जायगा? अपनी मरजाब तो निभानी ही पड़ती है।

२४. मोला दूसरी सवाई ने जाये । एक खजान बिछवा मिस गई—नाहरी । सब बेटे-बहुरों से उसका समझा रखने लगा । बेटों ने मोला को मार-पीट कर निकाल दिया । मोला रोता हुआ मोलेराम के पास गया । मोलेराम ने उसकी सुन्दर खजान मेहरिया देखकर अपने पास भरण दे दी । मोहरी मोलेराम की रखैल ही बन गई । मोला मोहरों की तरह रहने लगा । कुछ दिनों बाद उसके बेटे उसे मनाकर घर से जान बाध । वह जाने को तैयार था पर मोहरी न मानी । मोहरी के बारे में कम बातियाँ होने लगी । वह बिछर जाती भागों की चर्चा का विषय बनती । एक दिन पटवारी पंखरी ने उससे छिपेली करना चाही । मोहरी ने मोलेराम से कह दिया । मोलेराम ने पंखरी को ऐसा मठाड़ा कि बेहम हो गया ।

२५. पटवारी ने यह देकर मयक्याह से झोरी पर स्वयं के लिए दावा करा दिया किसी न नी और झोरी की छाँड़ ठग नीलाय हो गई । ठग तो गई ही पर एक और समस्या आ गई । कुतारी ने इसी ठग पर दो सौ रुपये देने की हमी मरी थी । अब वह इनकार कर गई । कम्पा का बिबाह कैसे हो ? इसी बीच मोहरी झोरी के घर आई और सहानुभूति बघाती हुई रुपये देने की हमी भर गई ।

२७. झहर जाने पर मोहर की हानत विपन्न गई । न वह पाय की बूकाल रही न बीबा समाने की अवह । उसने दल्ला के मिस में मजदूरी करनी । मोहर मजारी के मसे में मस्त था । झुनिया की वह परवा न करता था । उसका पक्का धुनु बन गया । उसे कुछ धन न था । झुनिया के पेट में बालक था । मोहर उसे बल-बैलत तज्ज करता था । वह प्रमद-वेदना से बेचैन थी मोहर को कुछ ध्यान ही न था । पड़ोस की एक मयी बीरल कुहिया ने झुनिया को बताया । बिना चाई के ही गया हुआ । मोहर के मिस में मजदूरों ने हड़ताल कर दी । बह्ला हुआ । मोहर का तिर कट गया एक हाथ की हड्डी टूट गई । उसकी नाय घर आई तो झुनिया ने घर पीट लिया । झुनिया न मोहर की कुछ सेवा की । वह स्वयं मजदूरी करके पास बाट-बैचकर वैसे कमाती और पति का उपचार करता । मोहर मरणा हो गया तो उसे अपनी मृत पत्नी पक्कासाय हुआ । वह झुनिया से छमा माँपने लगा ।

२८. मि० खन्ना को मजदूरों की यह हड़ताल विस्मृत बना मानुस हुई । मेहता और गोविन्दी ने खन्ना को समझाया भी कि मजदूरों का पेट काटना अच्छा नहीं । एक दिन डा० मेहता और मि० मालती खन्ना के घर बैठे थे । दूर से मिस की बिमरी से घायी बुझी निकलता दिखाई दिया । खन्ना को मिस में जान लग गई थी । तीनों मिस में पहुँच । सब कुछ स्वाहा हो चुका था । खन्ना अचेत हो पड़ा । एक दिन पहर वह दल्ला नाथ के बावली से जब एक पीढ़ी की न रही । गोविन्दी और मेहता ने उन्हें किसी तरह घालपना दी । खन्ना की भी अब मानवता जाय रही ।

उन्होंने अनुभव किया कि धन के लोभ में ही वह बोलिन्धी पर अत्याचार करते थे ।

२९ मोहरी की कुबान से बबनाम घोसा ने मोखेराम के यहाँ से जाने का निश्चय किया । वह अपने नपड़ सहेजने लगा तो मोहरी ने मारे बूतों के उसकी बाँध गंभी कर दी । एक यह मोहरी है और यह एक चमारिन है सिमिया जो मातादीन के ही नाम पर जीती है भुली रहती है मजुरी करती है । पर एक बार जिसने बाँह पकड़ ली फिर दूसरा और कैसा ? मातादीन को काशी के छात्रों को हजारों रुपये का भोज देना पड़ा प्राविविस्त करना पड़ा कुछ गाय का गोबर और मूत्र खाना-पीना पड़ा । साथ ही वह महीना-भर बीमार रहा । अब धर्म के इकोसल से उसे बुरा हो गई थी । सङ्कट में उसकी मानबठा जाच गई थी । अब वह सिमिया के प्रति अपने अत्याचार से दुःखी था । एक दिन वह सिमिया को देने के लिए दो रुपये दे गया । अब संन्या को होरी ने सिमिया से रुपये दिये तो वह जैसे अपनी वपस्या का बरवान पा गयी । प्रसन्न हुई, वह दौड़ी-दौड़ी अँधेरे में ही सोना को कुलखबरी सुनाने मची पार करके गई । वहाँ धाना के घर अँधेरे में मयरा ने कूटता करनी बाही । सोना ने सोना को एकान्त में देख लिया । उसने सिमिया को बहुत फटकारा । कहाँ तो बेचारी कुलखबरी सुनाने गई थी कहाँ यह मताड़ पड़ी । मन-मारे बापस लौट आई ।

३१ मेहता के आवर्ज से प्रभावित होकर मासती ने अपना रङ्ग-रङ्ग बिल्कुल बहल लिया । अब वह सेवा और त्याग की मूर्ति बन गई थी । बच्चा और बोलिन्धी के बीच से भी वह हट गई । अब कई महीना से मेहता और मासती दोनों कभी-कभी देहातों में जैसे जाते थे और किसानों के बुझों में कामिल होते उनसे सहानुभूति बिछाते थे । एक दिन दोनों होरी के बीच निकल गए । वहाँ मासती ने गाँव की स्तिमा को रहन-सहन-सफ़ाई की बहुत-सी बात सिखाई बच्चों का इलाज किया । फिर दोनों नवी पर चल गए । प्रकृति के सुन्दर वातावरण में मेहता बहक उठे । अभी भी मेहता मासती को परीयाक की दृष्टि से देखते हैं । मासती मेहता के इस भाव से अब बह हो जाती है । वह अपना कर्तव्य निश्चित कर लेती है । और सीधे सीन जाती है ।

३१ रामसाहब का मिठारा कुलन्द था । उन्होंने इसेपल्लम भी बीठ लिया होम मेम्बर भी बन गए कन्या का विवाह भी बूय-बाय से किया और लाखों रुपों की धसुरान भी जायबाय भी मुकदमा जीतकर प्राप्त करली । राजा मूयप्रतापसिंह ने उनके अतिशय प्रभाव को देखकर उनके बड़े लड़के बरपास सिंह से अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव कर दिया । रामसाहब की इच्छा बड़कर और बरा बिजब हो सकती थी ! किन्तु बरपास ने पिता की बात मानने से जबाब दे दिया । उसका स्वच्छन्द प्रेम

मातली की बहुत शरीर से था। रायसाहब का पुत्र के इस व्यवहार से बहुत पक्का लगा। जिस बेटे के लिए ही वे इतना-बुछ कर रहे थे वही उनकी बात नहीं मानता। रायसाहब की बात को एक और भावना आ गई। उनकी लड़की भीमासी का अपने पति दिग्विजयसिंह से शादी के कुछ दिनों बाद ही सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। दिग्विजयसिंह जिसानी और सम्भव था। भीमासी को उसकी सम्पत्ति विच्छेद न आई। दोनों में अजी-पगवा हो जाता है। एक दिन भीमासी ने रत्नबागड़ी बमकर दिग्विजयसिंह को हठों से पीटा। दोनों एक-दूसरे के जून के प्यासे बन गए।

१२. मिर्बा कुर्बान ने मजदूरों की हड़ताल में भाग लेने के बाद बेस्वामी के उठार का बीड़ा उठाया। वह बेस्वामी की एक भाग्य-मण्डली बनाना चाहते थे ताकि बेस्वामी के रोजगार का करिया बचन दिया जाय। मि० मेहता ने उनकी इस योजना को हँसी में उड़ाते हुए कहा कि पत्नियाँ सोझने से कुछ न होगा। जड़ को पकड़ो। सारी समाज-व्यवस्था बदलने की जरूरत है। जब तक बीसठ बाले रहिये बेस्वामी की रहेंगी।

१३. डॉ० मेहता जब परीक्षक से परीक्षाची हो गए थे। वह मातली के सेवा त्याग समय और मातृत्वपूज कराना जाति उच्च मुर्खों पर रीत उठे थे। पड़त मातली उनके लिए प्यासी थी जब वह मातली के लिए प्यासे थे। मातली ने उनकी मापर बाही की जिसकी को व्यवस्थित करने का काम अपने जिम्मे ले लिया। मेहता अब मातली के पाम ही रहने लगे। जोर में अब मातली के पहाँ लीकरी कर सी थी। उसके जिम्मे बाप की बेचमाल का काम था। मातली अब झुनिया के बच्चे को माता की तरह प्यार करती थी। एक बार बासक मजूस को ठेक प्यार आ गया। मातली ने बड़े स्नेह से उपचार किया। बच्चे को अपने कमरे में ही रखा। सारी रात वह स्वयं मातली और बच्चे की देखभाल करती। एक रात मेहता ने मातली की वह मानु-मूर्ति देखी तो नरनर हा गए। वे बाबाबेस में मातली से कुछ पाचना करने की अनुमति चाहते लगे। मातली का हृदय भी प्रेम-प्यार से तल था। किन्तु उसने संभव रहकर मेहता से कहा कि स्त्री-पुरुष बन कर रहने से मिल बन कर रहता नहीं अच्छा है। संकुचित मूहरी के बन्धन में बँधकर अपनी आत्मा को मज्जीने नहीं करना चाहिए। सेवा और प्रेम का मार्ग अप्रमत्त प्रगल्भ है। मेहता मातली की बात धिरो धाम करने हैं। दोनों प्रभावित हुए हैं।

१४. सिनिया, म. मातासीन, के बच्चे को, अलग दिया। 'जब मातासीन बच्चे को देखने चुपके-चुपके रोम खाता। लड़का ठीक उसी को पड़ा था। बड़ा बन्धन गटपन। किन्तु सिनिया की जिह्मना बालक को मास का होकर गए गया। मातासीन को बहुत दुःख हुआ। एक दिन मातासीन सिनिया से खुल पड़ा और अपना कर पढ़ कर अपनी



सहायक सिद्ध हुई है। एक ओर मरीच किनारा है जिन्हें एक धून भी पेट-भर भोजन नहीं मिलता भी-बूझ भजन सगाने तक को नहीं मिलता मामूली बचा-बाक के बभाव में उनके बच्चे मर जाते हैं। बेहरो पर मुर्वनी छाई रहती है। दूसरी ओर जमींदार हैं। पू बीपति हैं। नुमछरें उड़ाते हैं, हजारेों रुपये व्यसन में खर्च कर बेते हैं। मुकदमेबाजी इमजानन भिकार धनुष-यज्ञ आदि पर बेहिमाब खज करते हैं। मामूली फुगगी या मिर बर हो जाय तो बड़े-बड़े सर्जन बीच डाक्टर बुलाये जाते हैं। मरीच किसान सारा धान परिष्कृत करता है। सर्षी-धूप-बरमात-सोबा में मरता-जमता-गसता और सूखता है। उषर शहरी घनी लोच निठलसे रहते हैं और भुक्त की उड़ाते हैं। यह तुमना बिछा कर ग्रामीण कुपक-कचा में अत्यधिक कच्चा भरता ही शहरी कचा का उद्भव है। इस दृष्टि से यह अवान्तर कचा भी नहीं कही जा सकती। शहरी कचा ग्रामीण कचा की पूरक-सी बन जाती है।

फिर भी कुछ प्रसङ्ग अवश्य ऐसे हैं, जिनका विस्तार बचाने में ही अच्छाई थी। धनुष-यज्ञ का प्रसङ्ग १०-१२ पृष्ठों का विस्तृत प्रसंग है। इसमें पत्तकार जोकार नाथ का उत्पन्न बनाने और मेहता के बान बनकर उपस्थित होने के इत्थ बड़े अस्वाभाविक है। पत्तकार जोकारनाथ को जिस ढङ्ग से मामली बनाती है उसमें मनोवैज्ञानिक कथाई स्पष्ट मकर जाती है। जो मासती पहल जोकारनाथ का विरोध और मजाक कर रही है, उसके बाव के प्रजसात्मक शब्दों पर एकदम जोकारनाथ ने कैम बिश्वास कर लिया ? एक साधारण व्यक्ति भी इस जोखने मजाक को समझ सकता था न जाने पत्तकार-जैसा सठक प्राणी उस क्यों नहीं समझ सका ! लपटा है बेचारे जोकारनाथ की प्रेमचन्द न स्पर्श ही कुर्गति कराई है। कोई बौद्धिक चतुराई इस प्रसंग के मूल में दिखाई नहीं देती। इसी प्रकार मेहता का धान बनकर जा उपस्थित होना और उसकी वाक्य-आवाज का पहचाना न जाना अस्वाभाविक ही है। कचा लक में बीबिस्य और अशुभ बटना चक्र प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति प्रेमचन्द में बटमा प्रधान उपन्यासों के प्रभाव से कुछ-न-कुछ रही है। वे अपने उपन्यासों में कच-बीबिस्य या चमत्कार उत्पन्न करने के फेर में कहीं-कहीं अवश्य पड़ते रहे हैं। 'कामाकस्य' इस प्रवृत्ति का विभिन्न रूप है। 'प्रेमाश्रम' में भी राय कमलानन्द के चरित की विभिन्नता तथा आकस्मिक हत्याओं के मूल में यही प्रवृत्ति है। पुन-उपन्यासों में आकस्मिक बट गार्ने भी इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। शायद 'मोक्षम' में मेहता का यह चमत्कारी रूप भी इसी प्रवृत्ति का प्रेरित है। धनुष-यज्ञ का यह विस्तृत छटा परिच्छेद न तो विशेष रोचक ही बन सका और न ही कचा के विक्रम में इतना सहायक सिद्ध हुआ है। इसका सलित होना ही अच्छा था। अगला भिकार वाला चण्ड अपेक्षाकृत रोचक है। किन्तु यह भी ३६-३७ पृष्ठों का विस्तृत हो गया है। इसे भी दूर छोड़ दिया

गता तो अच्छा रहता। इन दोनों वर्गों के ९५-७० पृष्ठों में फेम जाने से होरी गोबर की अधिक रोचक अधिक संवेदनापूर्ण कथा में व्याघात उपस्थित हुआ है। गाँव की उत्सुकता और रूचि उस कथा में अधिक थी इसलिए इन प्रसंगों को पढ़ते हुए पाठक के मन में पूर्वकथा की अव्यति आने की जितनी उत्सुकता बनी रहती है उसनी इन प्रसंगों में रूचि बह नहीं स पाता। यदि ये प्रसंग सक्षिप्त होते और अधिक स्वाभाविक होते तो इनकी रोचकता भी बढ़ जाती और पाठक की उत्सुकता बनी रहती। इसी प्रकार एक-दो प्रासंगिक दृश्य और अनावश्यक-से प्रतीत होते हैं—जैसे बारहवें परिच्छेद में कोहरी का प्रसंग। बुबक-बुबकी का मानना-मनाना पहले गोबर पर बुरी तरह शिङ्ग जाना और फिर एकदम उस ठहरने का निमन्यन ही नहीं माता को समझा देने का अमुरोध करना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सद्योप ही है। इस प्रसंग को हटा देने से कथा की कोई हानि नहीं होती बल्कि कथा-संगठन अधिक दृढ़ और अधिक मार्मिक हो जाता। इसी प्रकार १२ वाँ परिच्छेद अनावश्यक है और वही रही कि यह प्रसंग ठोस-सा ही है लेकिन ने कुर्गों और मेहता के बेस्मा-समस्या सम्बन्धी विवाद को बढ़ने से बचा लिया अन्यथा बहुत अच्छरता।

किन्तु कथा-सङ्गठन के ये कुछ दोष बहुत अच्छरने वाले नहीं। अधिकांश प्रसङ्ग रोचक और कथा-विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। गहरी प्रसङ्गों को ग्रामीण कथा की संवेदना के पूरक ही मानना चाहिए। इस तुलनात्मक अध्ययन के बिना ग्रामीण जीवन की विपमता स्पष्ट न होती जो लेखक का उद्देश्य है। कथा की रोचक निमोदना में प्रेमचन्द की सबसे बड़ी विषमता है उत्सुकता-वृद्धि का गुण। रोचक प्रसङ्गों का चयन भी इस गुण के बिना सम्भव इतना प्रभावकारी न होता। रोचकता बढ़ाने के लिए प्रेमचन्द कोई-न-कोई समस्या उपस्थित रखते हैं। पहले कोई कठिन परिस्थिति प्रकट कर देते हैं फिर उसके हल की बिना निराम कर पाठक की उत्सुकता शांत कर देते हैं। सोना के विवाह की समस्या है। पटेलवरी मोखेयाम के लड़के ठाक-भाँक करने लगे हैं। हवा बरखा है। कम्पा का विवाह बीघ्र कर देना चाहिए। बहू-खर्च की समस्या है। कुसारी ने सहरा मिस जाया है। समस्या शांत होम को है। पर उम्मीद मीसाम हो जाने पर कुसारी धबाव दे बेठी है। फिर समस्या उपस्थित होती है। तब मोहरी उबारती है। इस प्रकार पाठक की उत्सुकता को बार-बार जमाकर शांत करने का सफल प्रयास प्रेमचन्द की विधेयता है।

प्रेमचन्द ने उत्सुकता-वृद्धि का एक और उपाय मातृकीय अव्यवस्थित परिस्थितियों उपस्थित करके अपनाया है। मोमा में मिलिया को भेजकर मधुरा और उसके पिता से मनवाया कि हम बात-चुहेज न लेंगे। पाठक समझता है यमो समस्या

समाप्त हुई। पर अब धनिया इससे उल्टा प्रभावित होकर नाई को कहती है कि मैंने क्यों नहीं अपनी मरजाद कोई छोड़ता है। तो उसके इस अप्रत्याशित उत्तर से पाठक चमत्कृत हो जाता है और उसकी उत्सुकता बढ़ती है। इसी प्रकार का और प्रसङ्ग है। मोमा होरी के दोनों बँस खोस से जाता है। होरी अब धनों के बिना खेती कैसे करेगा? तभी याब के स्वप्न और भोग मोमा को सराकारते हैं। पाठक समझता है बस अब मोमा को बँस सौटाने पड़ेंगे। पर होरी की बात पर सहसा बाताचीन भावि अपना भाव ब्रम्भ लेने है और मोमा को बँस से जाने देते हैं। पाठक और भी उत्सुक हो जाता है। मेहता-मालती का चौथी रात में नदी पर मिलन और बातचीत भी ऐसा ही प्रसङ्ग है। मेहता-द्वारा प्रेम की व्याख्या में अप्रत्याशित और उत्सुकता-बर्द्धक परिणाम निकलता है।

हमने चारम्भ में भी पिछले दोषों के परिहार पर विचार करते हुए, कहा था कि 'गोदान' में जाने की चटनाओं के बारे में सूक्ष्म-परोक्ष संकेत देने का मनोवक्ता निकड़ झूझ अपनाया है। इससे भी पाठक की जिज्ञासा और उत्सुकता-वृद्धि हुई है। जहाँ पहली रचनाओं में ऐसे संकेत बोधपूर्ण थे वहाँ 'गोदान' में मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक होने से केवल उत्सुकता बढ़ाते हैं। बाताचीन का यह कथन 'बाहर न बोधना यह कहे देते हैं और हीरा का यह कहना 'भयवान् चाहेंगे बहुत दिन बाव न रहेगी' ऐसे ही उत्सुकतापूर्ण भावी संकेत हैं। इनका पूरा अर्थ चटना के बाद ही खुलता है। पहले तो ये उत्सुकता और जाबजुबा को बगाते हैं। होरी का मारम्भ का कथन 'साठे तक पहुँचने की शीघ्रता ही न जाने पावेसी धनिया! इसके पहले ही बस देंगे' अन्त में अत्यन्त सिद्ध होता है पर पहले हम केवल उत्कण्ठित रहते हैं।

इस प्रकार प्रेमचन्द ने पाठक की उत्कण्ठा को स्वाग-स्वाग पर बगामे रखा है। उत्कण्ठा को बगाकर कमजोर मान्य होती हुई उत्कण्ठा को तीव्र करने या एक बार उत्कण्ठा को मान्य करके पुनः जागृत करने के ये ढंग कथा को बहुत रोचक और आकर्षक बना देते हैं। कथा का क्रमिक विकास भी अत्यन्त स्वाभाविक है। होरी की धमनीय दशा के दिन दिन बिगड़ते जाने का बड़ा मार्मिक क्रमिक चित्रण हुआ है। डाँड में मकान रहन रहना पड़ा बनाब पया कर्ज दिन दिन बढ़ रहा है बँस जाते हैं खेती जाती है ऊब नीलाम हो जाती है किसी मूरत भी पैसा हाथ नहीं लगता। वह मजदूर बन जाता है। मेदबशी होम वाली है। बाप-दादा की जमीन बनाने के लिए कन्या कन्या का विवाह बड़े रामसेवक से करता है और बाद में अस्वस्थानि से चलता है। वह अपना कलङ्क धोने के लिए सक्ति से बहुत अधिक परिचय करता है और अन्त में अदुरी सार्थे लिए ही दूढ़ जाता है। सारी परिस्थितियाँ अन्त में अरम-अवस्था को प्राप्त होती हैं वही उपयाम समाप्त हो जाता है। इतना सुन्दर स्वाभाविक क्रमिक

बाबलु-समीक्षा

विकास प्रेमचन्द के किसी अन्य बड़े उपन्यास का तो है ही नहीं साथ ही हिन्दी साहित्य का मायदा हो कोई बड़ा उपन्यास ऐसा स्वाभाविक विकास-क्रम लिए हा।

इस विकास-क्रम में भी एक-आध हल्का-सा साँप पाया जाता है। एक-आध स्थान पर प्रमत्तों के पूर्वपर क्रम में प्रेमचन्द ने दोषपूर्ण प्रभाव किया है। बीच परिच्छेद में गाय का चुटी है। गाय के बाले पर हीरा-सनिया का सगड़ा भी हा चुटता है। सारा साँप गाय का देख चुकता है। पर प्रेमचन्द सगड़े (पाँचवें) परिच्छेद को आरम्भ करते हुए कहते हैं "उत्तर गोबर खाना बाहर ग्रहिराने में जा पहुँचा। और इस क्षण में वे गोबर-द्वारा पाय सात और मुनिया में बात-बीन हाल का प्रसङ्ग बन है। क्या का इस प्रकार का कम-विज्ञान उचित नहीं माना जा सकता। जो पाठ पढ़ने परिच्छेद में आगे की घटना में उपस्थित हो चुका उसका मकर उनके पूरे प्रमत्त की वर्षा बाद में मुक्तिमुक्त नहीं। प्रमचन्द पर मात्त करके बाले 'प्रेमचन्द एक लक्ष्यपत्र' के लक्षक का राजशहर बुद्ध ने 'गोदान' के कथा-निर्देशन पर दिने

बल-पद्धति का प्रभाव बताया है। उनका कथन है कि प्रमचन्द इस समय तक निरमा में सम्बन्धित रहने के कारण मित-चित्त-पद्धति में परिचित हो चुके थे। यही कारण है कि 'गोदान' में निरमा-जैसी शक्तियों के रूप में उन्होंने कथा प्रस्तुत की है। इस सम्बन्ध में हमारा निश्चय है कि उपन्यास की कथा-शिल्प को ही सिनेमा-कथन में अपनाया है। निर-चित्त उपन्यासों में बड़ों पर ही बहुत आरम्भ हुए थे और बाद तक उपन्यास का शिल्प अपनाकर प्रस्तुत किए जाते हैं। प्रेमचन्द के 'गोदान' में मित चित्त 'नैनी के प्रभाव की कोई विशेष बात नहीं जाती। बल्कि उपर्युक्त सम्बोधन में लगता है कि निरमा की इति प्रमचन्द की भी ही नहीं शिल्पों पर पत्र छानकर बताया यह हृदयिकर अपभाव। निर-मित इस प्रमत्त शिल्पों के रूप में कथा निरोधना की पद्धति उन्होंने नामात्मक औपन्यासिक शिल्प से ही ग्रहण की है निरमा के प्रभाव से नहीं। यह पद्धति उनका निरमा बगल में जान में बहुत कुछ 'वैवाचक' में भी पाई जाती है।

कथा-क्रम का उपर्युक्त दोष अपवाद ही है। प्रेमचन्द की कथा स्वाभाविक गति में विकसित होगी है। पात्रों और घटनाओं का 'गोदान' में अशुभ सामञ्जस्य है। पात्र अपने चरित्रों की विनिश्चयता में घटनाओं और परिस्थितियों का उत्तर करते हैं और घटनाएँ और परिस्थितियाँ भी पात्रों के चरित्रों को परिचित करती हैं। इस प्रकार चरित्र और कथानक एक दूसरे के पूरक बने रहते हैं। 'गोदान' में पूर्ण घटनाएँ अधिक महत्त्व रखती थी पर 'गोदान' में होना का बचकर महत्त्व है।

अपने पक्ष उपन्यासों में तो प्रेमचन्द प्रकृति में ही आरम्भकारी रहे हैं। इन्होंने उल्लेखित अपने प्रायः सभी पक्ष उपन्यासों में कथा और चरित्रों को अपने आरम्भ

के अनुकूल परिवर्तित किया है। प्रायः उनके पछि बुराई से अच्छाई की ओर परिवर्तित पाने हैं और यही बात कथा के बारे में कही जा सकती है। 'बोधान' में भी यह स्वयं तो आदर्श ही है पर यहाँ प्रेमचन्द ने अधिक मायगु से पकड़ा है—कम-से-कम कात्पनिक आदर्शवाद किसी सुधार या आधुनिक-निर्माण के बकर में से नहीं पड़े हैं। इससे कथा की यथार्थवादी रक्षा हुई है।

अब सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि 'बोधान' का कथा-विषय प्रेमचन्द के कथाकार की सफलता का परिचायक है। प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा-विषय को एक सच्चा यथार्थवादी मोड़ प्रदान किया। 'सेवानन्दन' में यदि उन्होंने हिन्दी उपन्यास की कथा-वस्तु को तिलस्म और ऐयासी के बहुरंग विकासकर जीवन की वास्तविकता से सम्बद्ध किया था तो 'बोधान' में पड़ोसी बार बरिष्ठ कुपक को नामक बनाकर जीवन का मार्मिक पिचन किया। कथा का मार्मिक चमन 'समुकटावट'क नियोजना रोचक प्रसङ्गों की उद्भावना तथा सुन्दर क्रमिक विकास उनके कथा-विषय की विशेषता है। उपन्यास का कनेक्टर बड़ा होने के कारण कुछ धूलें हो गई हैं किन्तु वे बहुत झलकते वाली नहीं। ऐसी धूलों को बचाया जा सकता था यदि स्वयं प्रेमचन्द अपनी रचना को ध्यान से पढ़ लेते। जैसे जल्ला की पत्नी का सर्वप्रथम कामिनी खन्ना नाम से परिचय दिया गया है पर बाद में सर्व्व गोविन्दी नाम चमता है। होरी की लड़की कथा को पहले ही गृह पर आठ साप की बताया है और जागे तीसरे चरण में उसे पाँच-छ. साप की छोकरी कहा है। इसी प्रकार मिमिया के बासक के बारे में ३४ वें परिच्छेद के आरम्भ में ही कहा गया है—'मिमिया का बासक जब दा साप का हो रहा था और सारे गाँव में बीड़ लगाता था। अपने साप एक विचित्र माया साया था और उसी में मोलता था। थाड़े कोई समझें या न समझें। परन्तु जामे बीजे ही गृह पर कहते हैं 'राम भव वीर्य सया था। कुछ-कुछ बकरी पसने भी लगा था। मुन्नीजी धूम खाते हैं कि कुछ बेर पहले जिस बच्चे के बारे में वह कह आये हैं कि सारे गाँव में बीड़ लगाता है और बहुत चंचल है तोड़नी बोनी बोसता है उसीके बारे में यह कहता कि जब बैठने लगा है और उसकी सपट भूभु की सूचना देना कितना अद्भुत लगता। कास-बोप की एक छोटी-सी मूल और देखिए। १७ वें परिच्छेद में कहा गया है कि 'जब माघ बीत गया और मोसा के रुपये न मिले तो एक दिन वह सजाता हुआ आ धमका और होरी के बेत में गया। किन्तु जागे इसी कथा का विकास करते हुए १७ वें परिच्छेद में मुन्नीजी काठिक के महीने पर आजाते हैं—'काठिक के महीने में किसान के बैल मर जायें तो उसके दोनों हाथ कट जाते हैं। होरी के दोनों हाथ कट गये थे। माघ का महीना काठिक के बाद ही आता है। इसी प्रकार होरी का पाँच बेमारी है और उसके

अमीरार राममाहब सेमरी में रहते हैं। परन्तु २१ वें परिच्छेद के आरम्भ में भुन से होती के नाब को सेमरी बन्द दिया है। ३० वें अध्याय के आरम्भ में मजबूतों की समस्या मुकामाने के लिए अन्ना येहता-नोबिम्बी आदि से सत्ताह सेते रह जाते हैं। आने की बात कहता प्रेमचन्द भूल ही गये हैं। कम-से-कम निर्वय का खेते ही देते तो भी मजबूत रहता। इससे हम अन्ना का आरम्भिक अंत निरर्थक समझकर रह गया है। और वही है कि यह प्रामाणिक बात की। इस प्रकार की मूर्खे वृद्ध कथा-प्रवाह में लम्ब ही है। कुछ मिला कर 'योदान' की कथा-अस्तु प्रेमचन्द की अन्ना कथाकार सिद्ध करती है।

## ४ चरित्र चित्रण

### (क) पात्र-परिचय

होटी चरित्र की वे मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ जिससे वह भारतीय किसान का प्रतीक प्रतीति होता है। उपन्यास का नायक होटी कृष्ण-वर्ण का प्रतिनिधि पात्र। यह प्रेमचन्द की अमर चरित्र-सृष्टि है। उनका चरित्र-चित्रण प्रेमचन्द की अत्यन्त उच्च योग्यता का परिचायक है। भारतीय साहित्य में सचमुचे पहली बार एक उच्च व्यक्ति का नायक के रूप में इतना सजीव चित्रण हुआ। यद्यपि उसके चरित्र में व्यक्तिगत विमिश्रता की कुछ बातों में दिखाई देती है परन्तु अधिकतर वह कृष्ण वर्ण के प्रतिनिधि-रूप में चित्रित किया गया है। उनकी सम्पूर्ण मनोभूमि कृष्ण की मनोभूमि है। वह जो कुछ सोचता-विचारता करता-करता है उस सब के मूल में उसके कृष्ण-वर्णक ही दिखाई देते हैं। इसी कारण 'पात्र' कृष्ण-संस्कृति की लोक-परम्परा का प्रतीक उपन्यास बन गया है।

आरम्भिक पृष्ठों में ही हमें उनके चिर-पुरातन कृष्ण-वर्ण का चित्रण ही मिला है। 'होटी' कदम बढ़ाये बना जाता था। पगबन्दी के दोनों ओर उच्च के पोछों की लहराती हुई इरियाली देखकर उसने मनमें कहा—मजबान् कहीं तो से बरखा कर दें और कहीं भी सुभीते से रहे तो एक गाय लेकर लेया। उनकी लूक सेवा करना। मऊ से ही तो दार की मोला है। लहरे-लहरे गऊ के दमन हो जायें तो क्या कहना। न जाने कब यह गाछ पूरी हापी कम वह मुन रिन आवेगा। गाय की लालसा भारतीय किसान की अन्त-अस्कारगत लालसा है। मऊ को वह माता मानता है। उनके बछड़े की उनका अनूय बन होने हैं। और अपनी लहसहानी गेठी की देखकर प्रसन्न होना और मजबान् से उनकी मही-ममामन वृद्ध और पुष्टि की कामना-आर्पणा कृष्ण की आधुनिक मार्क्सवादीक प्रकृति है।

भारतीय विज्ञान युग-युग से सामग्र्यवाद और अमीरारी पद्धति का विचार बना बना आ रहा है। अपनी दयनीय दशा को वह मजबान् की देन मजबान्

बहु भाग्यवादी बन गया है। होरी के मानसिक संस्कार इसी दृष्टि में बसे हैं। अपनी दयनीय दशा का उस दुःख तो है पर इस भगवान् की मरणी या भाग्य की बात समझकर वह असंतुष्ट और निराशही नहीं होता अगिनु अपने मासिकों की कुलामर और उनका कृपा-पात बनने में ही अपना समा समझता है। होरी अपने प्रमीदार से मिलने जाता है। अनिया के विरोध करने पर वह कहता है— 'इसी मिससे-बुनते रहने का परताप है कि अब तक काम बर्बाद हुई है। जब दूसरों के पाँवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पाँवों को सहजाने में ही कुसल है। जब मोबर अपने पिता की कुलामरी प्रवृत्ति की आलोचना करता है तो होरी अपने बेटे के विरोध भाव को दबाता हुआ कहता है— 'सलाभी करने न चारों तो रहें नन्हीं ? भगवान् ने कुलाम बना दिया है तो अपना क्या बस है। किसान की गई पीढ़ी में विरोध और असंतोष तीव्र है। असंतोष होरी की पुरानी पीढ़ी में भी व्याप्त है पर वह अपनी भलाई विरोध में नहीं मिश्र-समाज में समझती है अकड़ने से निबाह नहीं होया। गोबर कहता है भगवान् ने तो सबको बराबर ही बनाया है। पर होरी कहता है— 'यह बात नहीं है बेटा छोटे-बड़े भगवान् के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी उपस्था से मिलती है। उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये थे उसका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संभा तो भोगें क्या ? इस प्रकार भगवान् की सीमा में हारी का बटम विश्वास है। जन्म-जन्मांतरवाद कर्मवाद और भाग्यवाद पर उनकी निष्ठा है। ये समूचे कृपक-वर्ग के ही विश्वास हैं।

अपने छोटे-मोटे स्वार्थों को कृपक हर समय सामने रखता है। वह उधार को मुफ्त समझता है। होरी 'जानता था घर में रुपये नहीं हैं अभी तक लगान नहीं चुकाया था सका बिसमर साहू का देना भी बाकी है जिस पर जाने क्या का सुब बढ़ रहा है लेकिन बहिष्कार में जो एक प्रकार की मजबूरबख्ति होती है वह निर्मम जगता जो ठकावे चाभी और मार से भी भयभीत नहीं होती उसने' होरी को भोला से गाम उधार देने के लिए प्रोत्साहित किया। 'उसे अभी चार सौ रुपये देने में लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ्त समझता था। होरी भोला को सवाई हिमाने का साक्षात् वेता है। उसकी प्रशंसा करता है। वह बालाकी से उसकी नाय हथियाता चाहता है। यह सब उसकी नीति में बुराई न थी। वह पाय की मातछा पूरी करना चाहता है। 'कहीं भोला की सगाई ठीक हो गई, तो साम-बो साम तो वह बोसेगा भी नहीं। सगाई न भी हुई, तो होरी का क्या बिनड़ता है ? मही तो होगा कि भोला बार-बार तमाशा करने आयेगा बिगड़ेगा गामियाँ देगा लेकिन होरी को इसकी व्यावाहिक चर्चा न थी। इस व्यवहार का वह जादी था। कृपक के जीवन का तो यह प्रसाद है। भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उनकी

जाना के समुद्रम न था। अब भी लेन-देन में उसके लिए लिखा-पढ़ी होने और न  
लि में कोई बन्तर न था। ईश्वर का यह रूप सदा उसके सामने रहता था। पर  
छ छ उसकी नीति में छन न था। यह केवल स्वार्थ सिद्धि थी और यह कोई  
दुरी बात न थी। इस तरह का छन तो वह दिन रात करता रहता था। घर में दो  
बार रुपये पड़े रहने पर भी महाजन के सामने कस्मे ला जाता था कि एक पाई भी  
बड़ी है। उन को कुछ गीमा कर देना और रुई में कुछ बिनीसे भर देना उसकी नीति  
में बाबज था। इस प्रकार का स्वार्थ परीब किसान की रग-रग में समाया रहता  
है। अपने माइयों से होरी दो-बार रुपयों के मोभ से बेईमानी करता है। वह बमड़ी  
बंदोर को साठ के बाँस बेचने में माइयों से छोटा करना चाहता है। ठकुर-सुहाती  
उसकी प्रवृत्ति बन गई है। होरी अपना स्वार्थ गाँठने के लिए दुसारी-सहुआइन  
गोहरी बापि की ठकुर-सुहाती करता है।

परन्तु वह चाह बिताता स्वार्थी हो अपने छेँटे-मोटे मोभ-मोभ के लिए वह  
बड़े ही पोड़ा-सा छन-कपट भर सता हो उसका मन कुत्सित नहीं। किसान पक्का  
स्वार्थी होता है इसमें सन्देह नहीं। उसकी पाँठ से रिस्वत के पैस बड़ी मुस्कम से  
निकलते हैं पाव-ताब में भी वह चौकस होता है ब्याब की एक-एक पाई छुड़ाने के  
लिए वह महाजन की मट्टों बिनीरी करता है जब तक पक्का बिश्वास न हो जाय  
वह किसी के फुलमाने में नहीं जाता लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्वायी  
सहयोग है।—ऐसी सपति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान। होरी किसान  
था और किसी के जलते हुए घर में हाब सेकना उसने सीखा ही न था।" अब मोमा  
भूसे की कमी के सङ्कट से गाय बेचने की बिबधता बाहिर करता है तो उसकी  
सङ्कट-कबा सुनते ही होरी की मनोकृति बबल गई। वह गाय बेने से बबाब दे देता  
है। सङ्कट की बीज लना उसके लिए पाप है। वह साफ कहता है—भूसे के लिए  
पुम धाय बेचोये और मैं शु गा। मेरे हाब न कट जायमे?—किसी भाई का नीसाम  
पर बड़ा हुमा बस लेने में जो पाप है, वही इस समय तुम्हारी पाप भने में है।  
जिस भाई से वह दो-बार रुपये की बेईमानी करना चाहता है उसी के लिए जान  
भी दे सकता है बून-पसीना एक कर सकता है। हीरा के धाग बाने पर वह उसके  
केतों में बुर काम करता है, उसकी गृहस्थी का पूरा खयाल रखता है। हीरा के बापस  
सौट जाने पर वह उस गले लबा लना है उसके अपराध को क्षमा कर देता है। वह  
त्रिपुधिता मिहिया को अपने पाँच भाइयों देता है। इस प्रकार किसान की भूख  
दुबलताएँ तथा उच्च संस्कारों की मानवीय सबलताएँ सब होरी में पाई जाती है।

किसान का जीवन सम्मान और जाबर के अभाव का जीवन रहा है। इसी से  
वह पोड़ा-सा सम्मान पाकर ही पूभ जाता है। वह घुमरों से अपने का बिदिह समझ



कर प्रसन्नता का अनुभव करता है। जब होरी रायसाहब को मिलने जाता है तो 'बोनों ओर बेटों में काम करने वाले किसान उसे देखकर राम राम करते और सम्मान भाव से चिमम पीने का निमन्त्रण देते थे—'उसके जल्दर बँटी हुई सम्मान-मानछा ऐसा बाहर पाकर उसके लूये मुख पर गर्व की झलक पैदा कर देती थी'। अनुप-यज्ञ में वह राजा जनक का मासी बना पूजा नहीं ममाता। जब माम घर जाती है तो वह उसे बाहर बाँधना चाहता है ताकि द्वार पर ऐसी बढ़िया गाय बँधी देखकर लोग कहें कि यह होरी भइलो का घर है। इसी गर्व-भावना से वह बातावीन के चाये बीट चढ़ाता है कि माम मिले भोसा से लज्ज भी है।

किसान धर्म-भीरु और समाज-विरादरी-भीरु भी होता है। धर्म के बाह्य रूप पर उसका विश्वास होता है। जाति-पाँति और कुमासूत को वह प्रह्न दिने रखता है। होरी इसी परम्परागत संस्कार के आश्रय बाह्यता वातावीन को विनिष्ट मानता है। उसके रुपये वह कैसे रख सकता है। ईश्वर का वह रूप उसे हृदयम डगता रहता है। जब गोबर बातावीन को एक रुपया सँकड़ा ध्यात्र के हिसाब से रुपय देना चाहता है तो होरी इसे नीति के विच्छेद समझ कर कहता है—'हमें नीति हाथ से नहीं छोड़नी चाहिए। जिस दर पर रुपया लिया है वही देना चाहिए। और फिर बाह्यता के रुपये। जब चिमिया का पिता हरजू और माई मातावीन को पकड़कर उनका मुँह में हड्डी छुभाते हैं तो होरी बाह्यता के प्रति इस अन्याय को न सहकर कहता है, 'अच्छा अब बहुत हुआ हरजू। गया चाहते हो तो यहाँ से चले जाओ।

पन्नों और विरादरी पर उसका अहित विश्वास होता है। जब धुनिया के रख लेने पर विरादरी न हो-हुस्ना मचता है और पन्नायत होरी पर डाँड सजा देती है तो होरी पन्नों का फेंकसा स्वीकार करता है—'पन्ना में परमेश्वर रहते हैं। उनका जो त्याग है वह सिर-जाँघों पर। अगर मनवान् की यही इच्छा है कि हम गाँव छोड़ कर भाग जायें तो हमारा क्या बस। धनिया इस अन्याय का विरोध करती हुई कहती है—'मैं न एक बाना बनाऊँगी न एक कोड़ी डाँड। हमें नहीं रहना है विरादरी में। विरादरी में रहकर हमारी मुक़ुत न हो जायगी। तब होरी उसे रोकता हुआ कहता है—'धनिया तेरे पैरों पड़ता है, चुप रह। हम सब विरादरी के आकर हैं उसके धाहुर नहीं जा सकते। वह जो डाँड लगाती है उसे सिर झुकाकर मबूर कर। 'जाज मर जायें तो विरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगायेगी।

यह दखि किसान भी अपनी एक 'मरजाब' मानता है। उस मरजाब का पासन उसके लिए बहुत आवश्यक है। अपने बाप-बादा के दिये मकान-येतों से उसका मोह होता है। वह बेगी करना ही अपनी मरजाब समझता है मजदूरी में उसे चाहे

विद्वाना अधिक मिला पर वह अपनी मरजाब छोड़ना कुरा समझता है। होरी मोबर से कहता है—'हमी को खेती से क्या मिलता है ? एक आने गफरी की मजूरी भी तो नहीं पड़ती। जो वस रुपये महीने का भी नौकर है वह भी हम से अच्छा जाता पढ़ता है। बकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। खेती छोड़ दें तो और करें क्या ?

फिर मरजाब भी तो पापना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाब है वह नौकरी में तो नहीं है। वह कुल-मर्यादा का निबाह करना घम मानता है। अपनी मड़की रोना के निबाह में रहेब बेना उसकी कुल-मर्यादा है। चाहे उधार मकर ही रहेब बेना पड़े पर कुल-मर्यादा कैसे छोड़े ! बाप-बाबों की बापवाद आने का उसे अपार दुख होता है। वह सोचता है, एक बे सपूत होते हैं जो बाप-बाबों की बापवाद की रक्षा और वृद्धि करते हैं। एक वह अयोग्य और अभागा है कि उसे क्या भी नहीं पाना। मकान रहन निखन का उसे दुख है। तीन बीघा जमीन ही पूर्वजों की निहानी बची है उसकी भी बेदखली का दावा हो जाता है। वह इस निशानी को बचाने के लिए क्या की जाही अच्छा रामसेवक से कर देता है। वह सोचता है, कन्या की ऐसी बेमेस छाही भी उसकी कुल-मर्यादा के निरुद्ध है। पर क्या करे, खेतों के निरुद्धने में भी तो मरजाब बिपड़ती है। बारागा-बारा तलाशी होने में भी उसकी कुल-मर्यादा जाती है।

यह किसान होरी घम भीर है, बिरादरी से डरता है, ईश्वर से डरता है, राजा से डरता है, सरकार-हाकिमों से भय जाता है, पुलिस-बारोगा से कांपता है, तलाशी को हम्मा समझता है, परन्तु बीसे साहसी है। समाज की दूषित व्यवस्था से बचा होने पर भी वह अकृति से कायर नहीं है। जब धनुष-यज्ञ के प्रथम पर मेहता पठान बनकर जाता है तो जहाँ सब सहरी 'जर्जामर्ब' भयभीत हो जाते हैं, वहाँ होरी पठान से भय नहीं जाता वह उसे पछाड़ देता है। 'होरी रँबार बा। साम पमकी देखकर उसके प्राण निकल जाते थे लेकिन मस्त साइ पर लाठी लेकर पिल पड़ता बा। वह कायर न था मरना और माग्ना जानता था मगर पुलिस के हथकण्डों के सामने उसकी एक न बसती थी। बेंबे-बेंबे कौन फिरे, रिस्मत के खय कहाँ से साम बास-बाबों को किस पर छोड़े। जगहा करना उसकी प्रकृति के विरुद्ध बा। 'मगर जब मामिक ललकागते हैं तो फिर किसबा डर ? तब तो वह यौन के मुह में भी डूब सकता है। उसने आपटकर जान की कमर पकड़ी और ऐसा मडङ्गा मारा कि जान चारों जानें बिता जमीन पर आ रहे—'।"

होरी का गान, पीपल, पेड़ और रोहिलों की चिन्ता में पीतता है। वह मुट्ठा है। मामिक-महाजनों की सि-कियाँ-गालियाँ सहता है, घर में कभी बेने भी धाङ्क मरी बातें सुनता है, जमी पत्नी की पटकार पाना है अपने माइयों की जमी-कटी

सुनता है पर सब-कुछ सहते हुए भी परिधम-पूर्वक कर्म करना उसकी सहज प्रवृत्ति बन गई है। इतनी कर्मचीसता कृष्ण की संस्कारगत प्रवृत्ति है। मरना-अपना उसके माम् में ही रहा है। होरी मातायीन से कहता भी है। किसान और किसान के बंस इनको बमराज ही पिसिम से तो मिले। (२६ वाँ परिच्छेद)। इतनी जान आपने पर भी वह अपनी पत्नी पुन पतोहू पीस किसी को सुखी नहीं बना सका। मुझ का एक क्षण भी उसकी गृहस्थी में नहीं आया। यही उसके जीवन की दू बेड़ी है। अन्त में लड़की रूपा के बनेक व्याह की चोट बेटी बेचने का कुछ सबसे बातक सिद्ध होता है। इस चोट ने भी उसे अपनी अक्ति से बाहर मजुरी का परिधम करने को उर्त बिठ किया जो उसके प्राण लेकर ही रहा।

इस प्रकार होरी एक सीधा-सरल घोसा-भासा साफ हृदय का किसान है। उसके छेदे-से हृदय में भाव-श्रेम की कबाह भाव-साध है। बाल्यस्य से मर उसका हृदय अपनी सतान ही नहीं। सुनिया सिमिया-बैसी गिराभिताओं के लिए भी उबार बन जाता है। अपने भाइयों पर वह अब भी जान देता है। हीरा के मुह से अपनी आलोचना और कुछई सुनकर वह झगड़ने नहीं जाता अपितु आत्म-पीडा का अनुभव करता हुआ गाय झींगने को तैयार हो जाता है। उसकी कृष्ण प्रकृति सपने से दूर भागती है। बार बार सुनकर भी चुप रह जाना ही उसके सरल स्वभाव का नियम है। अपनी परी से बीछटे-सागड़टे रहने पर भी वह उसके बहूट प्रेम-बन्धन में बंधा हुआ है। वह एक आदर्श शायीन पति है।

कृष्णकोचित ये सब आधुनिक विशेषताएँ होने के साथ-साथ होरी में कुछ निजी व्यक्तिगत आधुनिक विशेषताएँ भी हैं। उसका चरित्र है मुख्यतः गाँवत ही पर उसकी आकृति-प्रकृति का देखा बिज उसकी अधिष्ठित उबार मानवीय भावना पेट में बात न पचा पाने तथा घोसा घनिभा कुमारी आदि सबकी प्रशंसा करके अपने पत्र में कर लेने की व्यक्तिगत आधुनिक विशेषताएँ उसके आधुनिक को भी सजीव रूप प्रदान करती हैं।

### गोबर

होरी का बेटा गोबरधन नई पीढ़ी का मुख्य किसान है। अपनी विधम आर्थिक दशा के कारण असन्तोष और बिग्रोह उसकी नय-नय में व्याप्त हो चुका है। वह 'साँवसा सम्बा एकहूरा मुखक है। प्रसन्नता की जगह मुख पर असन्तोष और बिग्रोह छाया रहता था। अपने पिता की कुबामयी मनोवृत्ति से उसे बिड़ है। वह स्पष्ट कहता है—“यह तुम रोज रोज गालियों की कुबामब करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है बेमार बेनी ही पड़ती है। मजर-नम् राम सब तो हमसे मरामा जाता है। फिर किसी की क्यों सतामी करो ?

वर्ष-वेतना उसकी बहुत बड़ी-बड़ी है। यह छाटे-बड़ की विषयता समुप्य ने हो उत्पन्न की है। भयवान् ने तो सबको बराबर ही बनाया है। कर्मवान् या पूर्वजन्म को शान्ति को भी वह दिन समझाने की बातें मानता है। जिसके हाथ में साठी है वरी परीशों का कुचसकर बड़ा आत्मीय बन जाता है। बड़े योग दान धर्म-भगवद्भजन शान्ति वरीशों के विर पर ही करने हैं व करें तो पाप का तन कम पड़े ?

बहु होरी के अर्माभापन पर व्यग्य करना है। भाषा का मुख में घूसा देना उसे मण्ड्य नहीं मगता। जब होरी बनाता है कि भोला नाम दे रहा था मैंने सफ़्त में पड़ जादमी की याव सेना जल्लन न समझा तो वह कहता है—'तुम्हारा मही वर्णवाचन ता तुम्हारी दुर्गति कर रहा है। भाफ-भाफ तो बात है। जन्मी रुपये की नाद है हमस बीस रुपये का घूसा लेलें और भाव हम दे दें। नाठ रुपय रहे जार्ये वह हम सीरे-सीरे दे देंगे।

मोहर अन्धम को बहुत नहीं कर सकता। गहर में रहे लेने पर उसका विग्रह सन्निव हो जाता है। वह बाताशील का एक रुपय सीक्रे के हिमाज से ही भाज देना चाहता है। वह होरी को भाफ कहता है किमी को एक पैसा मत दो सब महाजनों से एक रुपया सैकड़ा भाज करणा होमा। मोहराम की बईमानी पर वह उसे ऐसा फटकारता है कि मोहराम बेचना रहे जाना है। वह सब सोपकों की खबर मना है। मारे पाँच के मुबक उसे मेना बना सने हैं। हापी के दिन वह अपने द्वार पर मण्डनी जमाता है। रात-भर सोपक महाजनों और ग्राम-स्थानों की तकलें होती हैं। वह उन पचों पर बाका करना चाहता है जिन्होंने उस पर डीठ मगाया था। वह सबके सामने मजनी देकड़ी जमाता है। वह अधिक दिन रहे तो इन सोपकों का निवाज डीठ कर है। उसकी विग्रही प्रकृति मजदूर-पमप में भी पीछ नहीं रहती। अनिया क मना करने पर भी वह भाग में कूर पड़ता है और बुरी तरह पायन होता है।

आरम्भ में वह एक जन्तु मुखक दिखाई देता है। घेम और पुरप-वकी के सम्बन्धों में वह अनिया म पीछे दिखाई देना है। 'याँच में जिनकी मुकतियाँ थी वह या ना उसकी बहनें थी या भाषियाँ। भाषियों से कभी-कभी वह ठगोभी कर निवा करता था पर वह केवल मरन विनोद था। अनिया ने बडावा पाने ही 'उम कुमार में भी पत्ता लड़कने ही किमी सोये हुए दिखायी जानवर की तरह मोहन जाय उठा। जब अनिया उसे उत्तर में बहती है कि दम हारे जाने वाले भिन्नूओं की मैं मुह नहीं मजानी। ऐसे तो यन्नी-यन्नी मिलने हैं। फिर भिन्नूक देना क्या है धनीय। जमीनों में तो निमी का पैर नहीं भरता। मन्दबुद्धि मोहर उसका आशय नहीं समझ पाता। अनिया ने भी मजब जाव ने उसकी मोर देखा जितना भीना है कुछ समझता ही

नहीं। जब अनिया 'सर्वस सेने' की बात कहती है तो वह कहने समझता है—मेरे पास क्या है अनिया ?

परन्तु एक बार सीधे जाय जाने पर वह उसके ससे में दूब जाता है। अनिया को वह जब अपने साथ ले जाता है तो ताड़ी पीने लगता है। अपनी बीन खुश को वृत्त करने के लिए वह बक्त-बैवक्त अनिया को तग करता है। वह खाड़ी रात बीते कर जाने लगता है। गर्म-भार से बची दुखी अनिया की वह उपेक्षा करने समझता है। यहाँ तक कि वह अनिया के प्रसन्न के प्रति बेपरवाही करता है।

वह स्वभाव का उच्छ्वी है। अपने अधिमान और उच्छ्वता में वह झूठा आये बड़ जाता है कि अपने माता-पिता को भी जल्दी-कड़ी सुनाने लगता है। वह यहाँ तक कहने से भी नहीं शिस्तकता कि माँ-बाप भी पैसे के मतलबी हैं। मैं कहीं-कहीं तक पुम्हारी करनी चुगलू मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं। उसके मुख से इतनी बड़ी बड़ी बातें कहलवाकर प्रेमचन्दजी ने कुछ अति कर दी है। यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सगठ-सा नहीं लगता। जो गोबर सहर बाटे हुए रास्ते में यह सोचता जाता था कि वह सहर में खूब मंहलत करेगा स्वये अन्धायता और सबसे पहले एक पक्कीही गऊ लायेगा और बाबा से कहेगा कि बस गऊ माता की सेवा करो ताकि पुम्हारा यह सोक और परलोक दोनों सुखरें जो अनिया को घर में रख लेने पर माता पिता के प्रति कृतज्ञता और सम्मान-साधना प्रकट करता है। वह माता-पिता से इतनी बुराई से पेट आवे यह कुछ सज्जत-सा नहीं समझता। फिर उसका स्वभाव उच्छ्वता से ओठ प्रोठ है इसमें सन्देह नहीं। हो सक्ता है पैसे की गर्मी ने उसे अधिक अधिमानी बना दिया हो। भार पैसे जमाकर वह एक तरह से महाजन बन ही गया था।

बोट लगने के बाद जब अनिया उसकी खूब सेवा-सुख्दूपा करती है तब अचानक होने पर उसकी मागबता जाय उठती है। अब वह अनिया के प्रति अपने अत्याचारों से पछताता है। उससे दामा-याचना करता है। रूपा के विवाह में जब वह बाबारा घर जाता है तो अपने माता-पिता के प्रति उसका अत्यन्त दिनभर व्यवहार उनके स्वभाव के परिचर्जन का परिचायक है। अब उसमें गम्भीरता आ जाती है। वह सोचने-विचारने लग गया है। जब होटी रूपा के विवाह के अपने अपराध पर उसके सामने फूट पड़ता है तो वह पिता को धामलगा ही देता है और उनका कोई दोष नहीं मानता। जिसे पेट की रोटियाँ ही समझार नहीं उसके लिए मरबाद और सम्मान सब डीन हैं। वह अब अपनी जिम्मेदारी समझने लगा है। वह सब महा जनो की किरतें कराने स्वयं अदा करने की बात जताता है। उसने अब समझ लिया है कि 'अपना नाम खूब बनाना होना अपनी बुद्धि और छाहस से इन आपत्तों पर विजय पाया होना। कोई बेवता कोई वृत्त ललित उनकी मदद करने में

मेरी। और उसमें पहरी संवेचना सजग हो उगी है। अब उसमें वह पहले की दृष्टता और बकर नहीं है। वह लक्ष और उद्योगशील हो गया है। होरी को अब कोई काम करते देखता है तो उसे हटाकर कुछ करने लगता है जैसे पछन बर्बरार का प्रायश्चित्त करना चाहता हो। कहता है बापा अब कोई बिन्ता मत दो घाट घाट मुझ पर छोड़ दो मैं अब हर महीने बर्ष भेजूंगा इसने दिन तो छोड़-बपते रहे कुछ दिन तो आराम कर लो मुझे सिद्धार है कि मेरे रहते तुम्हें क्या कह उठाना पड़े। वह गाँव की दुर्बला देखकर अब विषेय दुखी होता है।

इस प्रकार मोघर के चरित्र का बड़ा स्वाभाविक विकास प्रेमचन्दजी ने स्तुत किया है। बीच में उसकी माता पिता के प्रति अतिशय उद्दण्डता बरत आकरती बन्धना उसके चरित्र की सजी रेखाएँ अत्यन्त सजीव हैं।

जमींदार रामसाहब अमरपालसिंह—रामसाहब अमरपालसिंह ५० वीं बर्षी जमींदार है जो अपने बर्ग की समस्त दुर्बलताओं से परिचित है। उसके चरित्र में एक बलवत्त विरोधामास है। एक ओर वह अपने बर्ग और जमींदारी-पद्धति की अपूर भावोचना करता है दूसरी ओर उससे कुरी तरह बिपन्न हुआ भी है। वह गाँव के बौद्धिक युग का जमींदार है। अपने पूर्वजों से वह बहुत भिन्न हो गया है। गाँव के बौद्धिक युग में कोई सभाट, कोई सामन्त अबका पु बीपति अपने स्वरूप का तद्विध बौधित्य प्रकट करने बिना सम्मान नहीं पा सकता। इसी से जमींदार रामसाहब को एक तरह रंगा सिमार बनना पड़ता है। वह 'प्रेमाभम' के राम प्रमत्तानन्द का ही विकसित रूप है। सिद्धान्त रूप में वह पूरा समाजवादी या साम्यवादी है जो अपने बग और सम्पूर्ण सामन्तीय एवं पु बीवादी समाज-व्यवस्था का विरोध करता है। विचारधारा की दृष्टि से वह पूरा प्रगतिवादी है। किन्तु उसके मन बचन और रूप में भारी भेद है। वह विज्ञान के लिए राष्ट्रवादी बना फिरता है एक बार जेल भी हो आया है वह प्रचारित करता है कि वह असामियों को दियापतें देना चाहता है विज्ञान के लिए उसने गाँव की काशी जमीन चरणगाह के लिए छोड़ी हुई है—होरी कहता है 'कई किसान इस गह्वे (गाँव की जमीन) का पट्टा निजाने को तयार थे। अच्छी रकम देते थे पर ईश्वर भला करे राम साहब का कि उन्होंने साफ कह दिया—वह जमीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी शम पर भी न उठई आयगी। कोई स्वार्थी जमींदार होता तो कहता कि भावें भावें भाड़ में हमें रुपये मिलते हैं तो क्यों छोड़ें। किन्तु यह सब विज्ञान-भाव है। लोगों में अपना सिर रखने के लिए बहुरूपियाण है। मेहुता रामसाहब को आड़े हाथों लेते हुए कहने हैं— मैं चाहता हूँ हमारा जीवन हमारे मित्रानों के अनुकूल

आदि सबकी कड़वी बातों को पीछाते हैं। इस दृष्टि से रामा सूर्यप्रताप से उनका भेद स्पष्ट है। रामा सूर्यप्रताप उद्वेग के साथ अपनी मङ्गली के विवाह में कौटा बनी हुई सरोज के अस्तित्व को ही मित्रा शासने की नीच बात कहते हैं, जबकि रामसाहब ऐसा सोच भी नहीं सकते। रामसाहब अपने बर्न के लोगों की मनोवृत्ति के विस्फुट विपरीत मोप-बिताम हो कोमों हुए हैं। वह विधुर-जीवन ही बिताते हैं दूधरी घाटी तक नहीं करतें। शराब नहीं पीते। वह स्पष्ट कहते हैं—इन लोगों (अपने बर्न के भाई बन्धुजा) ने मुझ भाव बितास में फँसाने के लिए कम चालें नहीं जमीं और अन्ततः चलते जाते हैं। इस प्रकार रामसाहब का चरित्र अत्यन्त सजीव और स्वाभाविक है। उसके चरित्र में प्रेमचन्द ने जो बिरोधाभास प्रस्तुत किया है वह एक अत्यन्त सफल मनोवैज्ञानिक युग-सत्य है।

### मेहता

डा० मेहता ब्रिजवासी में बर्न-शास्त्र के अध्यापक हैं। उनका चरित्र आदर्शवादी है। गोरा चिट्ठा रंग स्वास्थ्य की नासिमा मामों में चमकती हुई, नीची अचकन बुझीदार पाजामा मुनहरी एक सौम्यता के रबता में समते हैं। बर्न के गहरे अध्ययन में भी डा० बी० मेहता में अपने स्वास्थ्य की पूरी रक्षा की थी। "उनकी मांसल भुआएँ चौड़ी छाती और मछलीदार बार्ने बिनी पुचनी प्रतिमा के सुगठित अङ्गों की भाँति उनके पुरुषार्थ का परिचय दे रही थी। ऐसा वाक्यक व्यक्तित्व है मेहता का। उनकी योग्यता और व्यक्तित्व की विनिश्चिता पर मामली एकबारगी मुग्ध हो जाती है।

मेहता अपनी आत्मा का सच्चा पुत हैं। उस बिबाध और बनावट से मुक्त हैं। उसके मन-बचन और क्रम में सङ्गति है। वह जो कहता है वही करता है। उसका चरित्र व्यक्ति-वैचित्त्य से पूरा है। बर्न का प्राध्यापक होते हुए भी वह बिनोद प्रिय पण्डित और मस्त हैं। बिचार में वह बहुत आनन्द मता हैं। प्रकृति के बीच वह चहक उठता है। प्रकृति उसके लिए आङ्गाव और प्ररजा की वस्तु है। अपने बन्धी में उसने तरह-तरह के फूल-पौधे लगवाये हुए हैं और बटों उनमें जो बाँटा है। चौबनी रात में मनी के तट पर वह चहक उठते हैं। वह स्वयं मामली से कहते हैं—'प्रकृति का स्पर्श होते ही जैसे मुझमें एक नया जीवन आ जाता है। मस-मस में स्फूर्ति दौड़ने लगती है। एक-एक पक्षी एक-एक पशु जैसे मुझे आनन्द का निमन्त्रण देता हुआ जान पड़ता है।' यह आनन्द मुझे और वही नहीं मिलता—सङ्गीत के मोहक स्वरों में भी नहीं बर्न की ठोड़ी उड़ानों में भी नहीं। मेहता की मस्ती का यह हाल है कि शराब पीकर वह ऐसा मस्त हो जाता है कि 'उस मस्ती में उनका चरण उड़ जाता है और बिनोद सजीव हो जाता है। काम का अभिनय करने और

सेबू बघा से शय्ये साब लाने में उनकी जिहादिली सजीव हो उठी है। अभिनय उन्हें बहुत शौक है। 'कम' शरने में वह मन्त्रे-मन्त्रों को चरित्र कर लेते थे।

आत्मसेवा से बढ़कर उनकी नजरों में कोई पाप नहीं था। उनका जीवन ऐश्वर्य, परसहृदयता और उदारता का जीवन है। अपने बेतम का अधिकार वह शरीर विचारियों, खनापों और विद्यवाओं की सहायता में दे देते हैं। अपने बारे में वह हमें साफ़बाह है कि पुरानी अचकल से ही काम बनाते आ रहे हैं। नई बन बने का उन्हें ध्यान ही नहीं। अपने व्यय का वह कोई हिसाब नहीं रखते। मकान का किराया कई-कई महीने चुक जाता है। उनकी बरेसू व्यवस्था मामूली ही ठीक पड़ी है। जब मासली उनके लिए वो नई अचकलें और एक नई नई मँगाकर बेटी है तो सकोच के बारे में कहना कई दिन भर से बाहर ही न निकल। आत्मसेवा से बड़ा उनकी नजर में दूसरा अपराध न था।

मेहता सतत कर्मधीन व्यक्ति हैं। अपना समय वे व्यर्थ नहीं गँवाते। 'डा० मेहता को काम करने का मना था। आधी रात को सोते थे और बड़ी रात रहे उठ बैठते थे। कंसा भी काम हो उनके लिए वे वहीं न कहीं से समय निकाल लेते थे। हाकी खेलना हो या मुनिबसिटी प्रिन्ट हो ग्राम्य सङ्गठन हो या किसी खादी का निबंध सभी कामों के लिए उनके पास समय भी और समय था। मेहता के रूप में भी उनकी व्यस्तता कुछ कम नहीं थी। वह पलों में खेद सिखाते थे। वह कई साल से एक बृहद् बचन-ग्रन्थ लिख रहे थे। अपने बगीचे में बैठे वह पीपों पर बिछुस संचार क्रिया की परीक्षा करते थे। उन्होंने हाल में एक विज्ञान परिषद् में यह सिद्ध किया था कि फलमें बिजली के जोर से बहुत जोड़े समय में पका की जा सकती हैं। उनकी पंदावार बढ़ाई जा सकती है और अफ़मल की चीजें भी उपबाई जा सकती हैं। आखिर अपने अनवरत परिश्रम का वह फल पाते हैं। उनकी एक रचना को फ्रांस की एकेडमी ने इस गताष्टी की सबसे उत्तम कृति कहकर सम्मानित किया।

मेहता का किञ्चिद बीजन-वजन है जो पहले प्रकट कर आए हैं। वह हम की ऐला गुप्तों से आकर्षित होते हैं। नर कुम की रमणियों से पनाह मांगते थे। पुरुषों भी मङ्गली में बूब बहकत पर ज्योंही कोई महिला आई, आपकी बबान बन्द हुई। वह गरी-स्वच्छता के विरोधी हैं। गरी का आदर्श वह सवा त्याग स्नह और कठ सं-परायणता मानते हैं। मानृत्य उनकी उच्च सिद्धि है। गरी का कार्यहीन वह सवा त्याग परीक्षण, उदारता आदि में ही स्वीकार करते हैं। व्यर्थ के व्यय सपेनों में नहीं। ईमान और विनाम-भावना से उन्हें बिड़ है। गोविन्दी को वह आदेश गरी मानते हैं। दाम्पत्य से बाहर नर-गरी के प्रेम का वह धोखा कहते हैं। गोविन्दी के प्रति शरा से धरुह होकर वह उनके बरा-से मकेत पर जीवन-भर गराव न पीने की



भी जानता हूँ कि दौलत इस्तान को कितना सुन्दर बना देती है कितना ऐश पशम कितना मञ्जार, कितना बेग़रत ।

'मिर्जा का हाता झूठ भी है कचहरी भी बचाड़ा भी । दिन भर जमपन मचा रहता है । मुहस्से में बचाड़े के लिए कहीं जगह न मिलती भी । मिर्जा ने एक छप्पर डलवाकर बचाड़ा बनवा दिया । वहाँ लिये छी-पचास सड़न्तिरे आ चुटते हैं । मिर्जाजी भी उनके साथ खोर करते हैं । मुहस्से की पचायतें भी यहीं होती हैं । मिर्जा की उपार प्रवृत्ति है कि गोबर उनकी कोठरी में साम धर रहता है मगर उन्होंने एक पसा किराया नहीं लिया । सराय की लत मिर्जा को गोबर से रुपये छप्पर माँगने पर मजबूर करती है । उनके हाथ में रुपये टिकते ही न बं इसर आये उधर गावब । सराय क बिना मिर्जा जिन्या नहीं रह सकते । वह दो रुपये में अपनी अँगूठी तक गोबर के पास रखने को तैयार हो जाते हैं ।

मिल-मालिक चन्द्रप्रकाश ब्रह्मा व्यावसायिक बुद्धि का पूर्णोपति है । वह एक मामूली आवामी से बैंक का मैनेजर और उद्योगपति बन जाता है । बङ्कर मिल खोल सेठा है । पँचा कमाने के लिए वो 'उपस्मा' करनी पड़ती है वह उसने खूब की । साध दिन कम कमाने की धुन में लगा बीबी-बच्चों और घर से बेचमन लिया । अपने सिद्धान्तों की हत्या की । मिल में किसानों की ऊख ठामने के लिए जास भौकर रखे नकसी बाट रखे 'बिजनेस इज बिजनेस' का टका-बम अपनाया तब कहीं बाकर दौलत बना हुई । बङ्कर मिल में आग लग जाने से उन्हें भारी दुःख हुआ । वह सिर पीट सेठा है । घन की हानि से उनकी मानबता बाग जाती है । वह अब अनुभव करने लगे हैं कि गोविन्दी के प्रति उन्होंने कितना बरबाचार किया ।

ब्रह्मा के चरित्र में भी प्रेमचन्दजी ने मानवीय 'धु' और 'कु' प्रवृत्तियों का बख्खम इन्द्र प्रस्तुत किया है । 'अन्य कितने ही प्राचिनों की भाँति ब्रह्मा का जीवन भी दोहरा या दो-रुबी था । एक ओर वह त्याग और जनसेवा और उपकार के लक्ष्य थे हा दूसरी ओर स्वार्थ और विनास और प्रभुता के । कदाचित् उनकी आत्मा का उत्तम भावा सेवा और सहृदयता से बना हुआ था मझिम भावा स्वार्थ और विनास से । पर उत्तम और मझिम में बराबर संघर्ष होता रहता था । और मझिम ही अपनी उच्छृङ्खला और हठ के कारण सौम्य और क्षांति उत्तम पर गालिब जाता था । उनका मझिम मासती की ओर झुकता था उत्तम मेहता की ओर । मिस में जान लमने से पूर्व ब्रह्मा का मझिम प्रबल था । वह अपने छन के लसे में विनास और ऐक्य को ही जीवन समझते थे । मिस मासती पर वह कुरी तरह पीसे हुए थे । वह इसी कारण अपनी सती-साध्वी पत्नी गोविन्दी को भी क्षांति में नहीं लाते थे घर बच्चों से विदेय भगाव यहीं रखते थे । मासती की एक-एक पंखाबत पूरी करना वह

पता कर्तव्य समझते थे। उनकी व्यावसायिक बुद्धि अपने मित्रों से भी लाभ कमाने नहीं हिचकती थी। जब रामसाहब को इसमनज और मुकामा सहने तथा मड़की में बांधी करने के लिये रुपये की सख्त जरूरत होती है, तो खन्ना अपने प्रयत्नों में पूरी कटिनाई से सया रिजाने की मूरत में अपना कमीशन माँग लते हैं। रामसाहब उनके बन्तरङ्ग मित्रों में थे। पर हम मामले में मिहान करना उन्होंने सीखा ही न था। विवरेण्ड इन् बिजनेस—मामा व्यापार में माई और मित्र कस ? व्यापार व्यापार है किना और माईबाप असल बात है। इस प्रकार की स्वार्थी मनोकृति बाम खन्ना ही नहीं तब चुनती है जब उसकी मिल बनकर राख हो जाती है। वह सिर पीट मैला है सान्बना के बच्चों को पाने के लिए निरीह प्राणी की तरह मेहता और रोविन्दी की ओर देखता है। इसके साथ ही जब मामती उसे अँगूठा दिखा जाती है तब उसे अपनी पत्नी के सच्चे प्रेम का ज्ञान होता है। तब उसका उत्तम समझ हो जाता है और मरिम बब जाता है।

सहरी पातों में विवरेण्ड—सम्पादक औंकारनाथ भी उत्पन्ननीय हैं। आप घर के बोटी-कुर्या पहनते हैं और ऐनक लगाते हैं। 'वेश-चिन्ता' में उन्हें चुन्ना डाला है। प्रेमचन्द ने समाज में विकसित होम वाले मधेनव वर्गों और उनके प्रतिनिधि व्यक्तियों का भी ध्यान रखा है। सहरी पातों में पत्रकार औंकारनाथ और तब्रा ऐसे ही व्यक्ति हैं। औंकारनाथ अपना पत्र बनाने के लिए पेड़ी बोटी का ओर लगाते हैं। सिद्धान्त उन्होंने बहुत ऊँचे बना रखे हैं—जनता की सेवा सच्चाई और स्वदेशी आदि श्रेष्ठ-द्विती की रक्षा व्यापार का पर्याप्त करके व्याप की निर्धनक प्रतिष्ठा आदि उनके आदर्श हैं पर सिद्धान्तों और व्यवहार में टक्कर होती रहती है। उनके पत्र को आर्थिक संकट हरबम रहता है। इसे दूर करने के लिए उन्हें अपने सिद्धान्तों को फिनारे रखा पड़ता है सहायता के लिए माचना करनी पड़ती है और स्वार्थ का पत्रा पकड़ना पड़ता है। स्वदेशी के बबरहस्त हामी होते हुए भी विज्ञापन का लाभ कमाने के लिए, बिदेसी ब्राह्मणों और वस्तुओं के वह बिजलान छपते हैं। रामसाहब से भी साहूनों के अपने का बायबा पाकर उनकी गरज-बापी पूर्ण हो जाती है। पत्र की सहायता के लिए वह मिसस चन्ना की चापसूरी करते हैं। अपने पत्र को जनता से लोकप्रिय बनाने के लिए वह कोई-न-कोई बिगड़ा छेरे रखना चाहते हैं। मजदूरों को बदनाम कर हड़ताल करा देते हैं पर चुर्चानी के बल पाम हूँ आप ?

औंकारनाथ सरम-नीय स्वभाव के हैं। पत्र-नी प्रजंगा और गहामुद्रिन ने पत्र फुर जाते हैं। धनुष-मन-मन पर मायनी किंग इन् न उनका उन्म बनानी है कोई पत्रकार मायब ही पैगा बुझू हा डि मायनी के मशक का ग ममम मर । पर औंकारनाथ की यह विविध क्षमता है। उनी बाग्य उनकी पत्नी भी ११/४

कहती है— 'इसीन तो मैं तुम्हें बुझू कहती हूँ जब किसी न सहानुभूति दिखाई और तुम फूस उठे ।' मातली-द्वारा प्रकटा धुनकर ओझारनाथ ऐसा उम्झू बन गया कि धराब न पीने के अपने नियम की भी उसने एक क्षण में तोड़ डाला ।

प्रयामबिहारी तबसा एक और विचित्र कहरी बात है । वह इस डङ्ग के नवयुग के स्वार्थी व्यक्तियों का प्रतिनिधि भी है और अपने विचित्र रूप चरित्र में व्यक्ति-विशिष्ट भी है । 'धूमरे महाधाय जो कोट-नीष्ट में है वह है तो बकील पर बकासत न बनने के कारण एक बीमा-कम्पनी की बसामी करते हैं । और ठाकुरके-द्वारो को महाजनो एव बीड्डो से कय विमाने में बकासत से कही ज्यादा कमाई करते हैं । तबसा पूरा स्वार्थी और बालबाब आचमी है । वह बहाँ जाता है अपने मतलब की बात करता है । तिकार में उसे कोई रुचि नहीं । प्रेमचन्द उसका परिचय देते हुए कहते हैं 'मि० तबसा बीच-बेच के आचमी व चौदा पटाने में मुजामसा बुलसाने में अडक़ा भगाने में बाधु से ठेस निकालने में यमा बवाने में धुम छाड़ कर निकल जाने में बड़े छिछहस्त । कहिये तो रेश में नाव बसाई पत्थर पर बूब उवा हैं । धाकुरकेद्वारो को महाजनो से कर्ब हिसाला नही कम्पनियाँ खोलना बुताब के जबसर पर उम्मेदवार बड़े करना—अभी उनका व्यवसाय बा । बामकर बुताब के समय उनकी तकवीर कमकठी थी । किसी पीड़ उम्मीदवार को बड़ा करते दस-बीस हजार बना सेठे । जब जिसका जोर देखा उधर हो गये । सहर के रईसों व अफमरों से मेल-जोल रखने में । वह रामसाहब को राजा सूर्यप्रतापसिंह के बिरुद्ध बड़ा कर नेता है इस विश्वास पर कि बाव में राजा साहब से बीस-तीस हजार उठाकर राम साहब का बिठा दिया जाय । मगर इस तरह कुछ बनता न देख और रामसाहब से कुछ मिलने की उम्मीद न पाकर राजा सूर्यप्रतापसिंह का पक्ष लेते हैं और उनस दस-बीस हजार बनाता चाहते हैं । राजा सूर्यप्रतापसिंह उसे परमे बर्जे का बेईमान कहता है । जब रामसाहब मिनिल्टर बन जाते हैं तो तबसा उनकी बुलामर और बिरीरी के मिये हाथिर हो जाता है । वह मतलब के लिए गवे को भी वाप बना सता है । जब कुर्ब उमे यह सोच लेते हैं कि वह बुताब में तबसा की मर्जी के मुताबिक बड़े हो जायेंगे और बीमे वह कहेंगे बैठ जायेंगे तब सोच में आकर वह हिरण को उठा में बसता है । मिर्जा कुर्ब ने उसको बूब उम्झू बनाया ।

गाँव के पुरुष-पाता में—बाताबीन, मिथुरी, नीबेराम, बदेन्दरो आदि एक ही बीली के बट्ट-बट्ट खोपक पात हैं । ये ग्राम-सगाव के स्वप्न बने हुए हैं और अपने बग और पीछे की उज्ज्वा से प्रतिष्ठित हैं । धर्म-कर्म पूजा-पाठ, छपा-तिसक सब करने हैं पर भववान के सामने से उठते ही इनकी मनुष्यता न-जाने कहाँ भाग जाती है । ये सब स्वार्थी-खोपक हैं । बेगार डीठ बनासी अत्यधिक मूढ़ लेकर ये किसानों

को मूटते हैं। पर इनके भी व्यक्तित्व की विविध असम-असम रेखाएँ स्पष्ट प्रस्तुत की गई हैं। सिगुरीसिंह सबसे बलवत्—'भाटे मोटे कस्बाट, काम मम्बी नाक और बड़ी-बड़ी मूछों वाले आदमी व भिस्कुल विरूपक जैसे। और वे भी बड़े हँसोड़। इन पाँच को अपनी समुदाय बनाकर मर्चों से खास या ससुर और औरतों में माफी या सलहज का नाता जोड़ लिया था। रास्ते में सड़के उन्हें चिज्ञाने—पण्डितजी पात्रमी ! ( क्योंकि ठाकुर सिगुरी ने एक बाह्यनी रखी हुई थी )। और सिगुरीसिंह उन्हें बटपट आभीर्य देते—गुम्हारी आँखें फूँटें गुम्हा दूँते—'आदि— मगर नने-देने के मामले में बड़ कठोर थे। वह सहर क बड़े महाजन का एजेण्ट है। पक्का प्रायज निवाला है, मजराणा बलवत् नेता है, दस्तूरी बलवत् स्टाप्प की निवाँर बलवत्। म पर एक सास का ब्याज बलवत् वैसयी काटकर बपा देता है। पक्षीय हत्ये का प्रायज सिखो तो मुक्तिसे से सहर बपये हाव सगत थे।

मोबेराम—'भाटे मोटे कस्बाट मम्बी नाक और छोटी-छोटी आँखों वाले नाने आदमी थे। बड़ा-सा पगड बाँधते पीछा कुरता पहनते और जादों में तिहाफ जोड़कर बाहर आते-जाते थे। उन्हें तेज की मामिन कराने में बड़ा जानन्द आता था इसलिए उनके कपड़े हमेशा जैसे चीक रहते थे। राम-पण्डित उन्होंने पिता की पर म्य से पाई थी। बच्चे बड़े पण्डित्यो बनाने व। जमींदार रायसाहब के कारिन्दे थे। बेतन तो बोहा ही का पर रीव बहुत था। सक्ती से लवान बमूम करते थे। बेमार नेता मजर-मजरणा उठाना और कभी-कभी वेईमानी से दोबारा लगान बमूम करना तथा महाजनी बनाना उनके पयकूर घन्ने हैं। डाँड-रिस्वत का सीका भी नहीं प्रेड़ते। मोहरी के प्रयत्न में उनकी विविधता पूरी तरह सतिन होती है। मोहरी को वह रस सेते हैं। कोई उनकी या मोहरी की शान में एक मज्द भी ऐसा-बैसा नहीं कह सकता। पटेभरी को वह ऐसा आते हाथों सेते हैं कि वह बरम हो जाता है। शानाहीन पाँच के नारद हैं। बग्य में लादी-ब्याह में मरण में सब अवसरों पर पुरोहित बनकर सेने वाले। पोषी-पना बाँचकर वह कमलें बगार वह सेवें महाजनी उनकी डाँड-मजरणा उनका। धर्म क नाम पर मोपन वह करें व्यवहार के नाम पर वह। स्वार्थी और हुबह-हीन। अपनी जगामी में कम रुमिया भी नहीं थे। ईमते हुए उनकी हँसी मम्बी मूछों में छिन जाती है। जाय-पाँच छुआ-सून उनका सामाजिक विधान है। उनका बेटा माताहीन भी आरम्भ में पिता का अनुसर है। वह निमिया जमातिन को फेंका जाता है। उनका सब तन-मन ले जाता है पर अपना लाँक-उशम भी नहीं देता। पर जमारों-शाय उसकी बुर्गिन होने पर, उन को पक्षाताप करता पड़ता है और वह बीमार रहता है उगमे उनकी मानवता पवित्र हो जाती है। प्रेमपथ के पार्श्व में एक यह भी गामाग्य मनोवैज्ञानिक सत्य रहता है कि

अपने पुत्र और भोला की विधवा सड़की के सम्बन्ध को चाप सेनी है। वह बारोना और पंचों की बहमाजी समझ जाती है। गाय जाने के बाद जब रात की हीरा की बात सुनकर होरी का मन सुख्य हो जाता है और वह गाय बापस लौटाने की सोचता है और धनिया से कहता है कि लोग हमारी चर्चा करते हैं कहते हैं भाइयों के साथ हुए दपमों से ही गाय लाई गई है तो धनिया एक बम भांप जाती है कि यह स्वर किसका है। वह निश्चित भाव से कहती है— 'हीरा कहता होगा ?'

वह एक खगपड़ औरत है। जत ऐसी नारी में विश्राम अन्ध-विश्वास आदि दुर्बलताएँ भी उसमें पाई जाती हैं। गाय के जाने पर उसे नजर समने का भय है। वह गाय को बाहर बाँधने नहीं देती। वह गाय के गले में कासा छागा बाँध देती है। अपने देवरों के प्रति भी उसके मन में क्रोध और असहिष्णुता का भाव है। वह हीरा से मिड़ जाती है और उसे जब भिन्नबाने पर तैयार हो जाती है। जिन देवर-ज्येष्ठ धनियों के लिए एक समय उसने इतना किया अपनी जान बचाई, देवरों को पुत्रों की तरह रखा उनकी ईर्ष्या और अनन वह सह नहीं सकती। अपनी बरा सी प्रमत्ता सुनकर धनिया पूस जाती है। पड़से तो वह भोला को भूसा देने का बहुत विरोध करती है पर जब होरी कहता है कि भोला तेरी बहुत प्रमत्ता कर रहा बा—ऐसी मज्जमी है ऐसी समीकदार है। तो यह सुनकर धनिया के मुख पर स्निग्धता समक जाती है हृदय गर्गह हो जाता है। वह एक नहीं तीन-तीन बड़े बाँधे घूसे के मरकर देने का आग्रह करने लगती है। होरी उससे इस परिवर्तनशील स्वभाव की आलोचना करता हुआ कहता है— 'या तो जसभी नहीं या जनेभी तो चौकने सयेबी।

इस प्रकार धनिया का चरित्र एक कृपक-नारी का बर्णन सजीव रूप में है और व्यक्तिगत विशिष्टता से ओछ-ओछ भी। अपनी परिधमशीलता मातृत्व स्नेह बया ममता अस्तोप अन्धविश्वास सामाजिक धार्मिक विश्वास अज्ञान की ऐसी आदि में वह सोलह जाने अपन बर्ग का प्रतिनिधित्व करती है किन्तु अपनी अविश्राम उदात्ता अन्वयतम साहस (गण्डासिंह जैसे बारोगा को भी सताइ देने में—जिसके एक मामुसी प्यारे-सिपाही की लाल पयड़ी से उसके मर्ब किसान भय खाते हैं) अपने जगदी रूप में वह विशिष्ट है। धनिया के अधि में बिद्रोह है असन्तोष है क्रोध है होरी में मज्जता सुकना बबता समझीता करना बिबल रह जाना लून के घूट पीना है। होरी के लिए प्रतिरोध का खर्च है गुप रह जाना आत्मपीड़न या बिबलता बाहिर करना पर धनिया के लिए प्रतिरोध का अर्थ है बिद्रोह अन्याय के बिनाप बुसा आबाब ठठाना बिझी ठठाना अग्न करना क्रोध से फुकार मारना। उसके दम्य हृदय से निमृत्त असन्तोष और बिद्रोह की ज्वाला तथा ममता का पिचमा हुआ मान दोनों ही स्वात-स्वात पर सञ्च-रूप लिये पड़े हैं।

सिलिया, फुनिया और सोना 'सोना' के तीन नारी-यात्रा ऐसे हैं जिनके जीवन और चरित्र में दाम्पत्य-प्रेम के तीन भावना भिन्न-भिन्न रूपों में मिलते हैं। सिलिया समर्पित है, 'सर्वरी सलोनी छत्ररी बानिजा जो रूपवती न हो कर भी वाचक भी। उसके हाथ में चितवन में अङ्गों के निवास में हर्ष का उमात्र का जिससे सम्पत्ति बोटी-बोटी नाचती थी। मातादीन के प्रेम में वह फँस जाती है। इसी प्रेम में अन्यत्र हुई वह मातादीन के खेत-बनियानों में घुब परिश्रम से काम करती है। सिर से वह एक बूँद के अङ्गुली में घनी पसीने से तर, सिर के बाल बांध खुले वह चौक चौक कर अनाज ओसाती है, मागो तन-मन से कोई खेल खेल रही हो। इसी प्रेम ने उसे स्वच्छन्द और मन-मौजी बना दिया है। वह जाट-बिरादरी माँ-बाप-भाई, मरणाद किसी की परवाह नहीं करती। अपने प्रेम में वह एकनिष्ठ है। सम्पत्ति मातादीन उससे बना करता है। सिलिया को भी कुछ तो होता है जब मातादीन उसके दिव्य रूप मुट्ठी-भर बाने पुनारी सहायन के पल्ले से सड़का लेता है और कहता है— तुने अनाज क्यों दे दिया? जिससे पूछकर दिया? तू कौन होती है मेरा अनाज देने वाली? सिलिया हक्का-बक्का होकर मातादीन का मुँह देखने लगती है। ऐसा जान पड़ा जिस जाल पर वह बैठी हुई थी वह टूट गई है और अब वह निराधार नीचे गिरी का रही है। परन्तु इस क्षणिक दुःख के बाद उमका मन प्रेम में हल हो जाता है। यदि मातादीन उसका तन और मन दोनों लेकर भी बचने में कुछ नहीं देना चाहता उस अब काम करने की महीन-मास समझता है तो वह तो बर्न नहीं छोड़ सकती। घर वालों और बिरादरी के आग्रहम और अत्याचार ने उसके अनुग्रह को और भी प्रचण्ड बना दिया। वह अपनी माता और भाइयों के साथ जाने पर राजी नहीं होती उनकी मार खाती रहती है। बाप के वीरों से लिपट कर वह रोती हुई कहती है— मार डालो बादा सब जने मिल कर मार डालो। हाय! मेरे पीछे पण्डित को भी तुमने मिरस्ट कर दिया। उसका घरम लेकर तुम्हें क्या मिला? अब तो वह भी मुझे न पूछेगा लेकिन पूछे या न पूछे, रहूँगी तो उसी के साथ। मुझे चाहे भूखी रहे चाहे मार डाले पर उसका माग न छोड़ूँगी। मर जाऊँगी पर हरबाई न बर्नूँगी एक बार जिसने बाँह पकड़ ली उसी की रहूँगी। यह है सिलिया का एकनिष्ठ प्रेम। वह प्रेम का प्रतिदान नहीं चाहती। निराश्रिता होकर वह भूखी रहती है अपने परिश्रम की बूँदें निकाल कर पेट की ज्वाला शांत करती है पर मातादीन के नाम को नहीं छोड़ती। अपनी मेहनत पर उसे विश्वास है। इस वियोगिनी बलिष्ठ परिश्रम के हर्ष का उस दिन पारवाह नहीं था जब उसे पछतावा मातादीन नहीं उसके भेजे हुए दो रुपये ही मिलते हैं। पछतावे मातादीन को पाकर तो यह

प्रेम-मुनारिम अपने मन से चुड़ा जाती है।

मुनिया मोमा अहीर की कन्या है। इस यात्रि में विवाह त्याग जाता सब प्रचलित है। जमानी में ही वह विधवा हो जाती है। समुदास में कोई सहाय न पाकर पिता के घर रहती है पर मावर्बें उसमें क्षमकृती हैं। 'उसके माँगत स्वस्थ मुगलित जङ्गों में मानो यौवन सहन मार रहा था। मुह बड़ा और दोत बा कपोन फूले हुए, माँछें छोटी और भीतर बँधी हुई, माथा पतला। पर बल का उमार और बाट का वही मुदमुदापन माँचों को भीँसता था। वह सहर-गाँवों में डाहकों को घुस वही देने जाती रही है। तरह-तरह के मोयों से उसका बास्ता पड़ता रहा है। उसकों की लगावटवायियाँ उस गृहस्थ-कन्या के पृथिवीय को कुचल नहीं पाई थीं। गोबर को बेशकर उसका यौवन चम्कल हो उठता है। वह स्थायी सहाय पाना चाहती है। वह बात भीत करने सीखा पढ़ाने में बड़ी चतुर है। पोबर से कहती है— 'जान देने का करण है माव रह कर निवाह करना। एक बार हाथ पकड़ कर उमिर-मर निवाह करते रहना चाहे मुनिया कुछ कड़े चाहे माँ पाप माई-बँव घर-घर सबकुछ छोड़ना पड़े। मुह से जान देने वाले बहुतों को बेश चुकी।

वह अपने प्यार का पूरा प्रतिदान चाहती है। इस बारे में वह पूरी माप-जोख से काम लेती है। जितना प्यार लेती है ठीक उतना ही वापस चाहती है। वह गाँव से साफ सख्यों में कह देती है— 'सर्वन ता तमी पाओगे जब अपना सर्वस दोगे। दोनों ओर से प्यार मिले तो वह निमाने को तैयार है जयबा यदि पुरुष अपने को स्वच्छन्द समझता है, तो वह भी स्वच्छन्द है। उसने अपने पहले दिन का भी साफ-साफ कह दिया था— 'अगर तुम इसर-उमर सपके तो मेरी भी जो इच्छा होगी वह करूँगी। वह सिनिया की तरह एकनिष्ठ रहने वाली नहीं है या एकनिष्ठ तमी रह सकती है जबकि पुरुष से भी एकनिष्ठ प्रेम की सम्भावना हो। जब मातावीन किसी न-किसी बहाने होरी के घर आकर मुनिया से बातें करना और अपना रङ्ग बमाना चाहता है तो 'सिनाय मीठी-मीठी बातों के वह अनिमा से कुछ नहीं पा सकता। और अपनी मीठी बातों को माँगे बामों बेचना भी उसे आता है। वह सोना से कहती है— 'मैं ऐसी अनिमी नहीं हूँ कि किसी के अँसि में आ जाऊँ। हाँ जब जान जाऊँगी कि तुम्हारे भैया ने वहाँ किसी को रख लिया है तब भी नहीं चलाती। तब मेरे ऊपर किसी का कोई बलन न रहेगा।

इतना होते हुए भी वह नारी की धीरता और सहनशीलता का शुभ प्रकट करती है। शहर में लाकर ओबर उसकी उपेक्षा करने लगता है। उस केवल बावना पुनि का बिजोमा समझता है तब भी वह नैयपूर्वक सहन करती है। वह पति के मोट कपने पर उसकी सब धंसा करती है। गोबर के मुह से पम्मात्ताप और प्रायश्चित के

इस मुनकर तो उसका प्रेम और भी डूब-भरा हो जाता है।

सोना का आदर्श और भी उच्च है। वह पति का जरा-सा बहक जाना भी जब घर के लिए भी बर्बाद नहीं कर सकती। "सोना की दृष्टि में सब से बड़ा पाप स्त्री दुष्ट या पर-श्री और स्त्री का पर-मुग्ध की आर ताकना था। इस अपराध के लिए उसके यहाँ कोई क्षमा न थी। जब सिलिया उस अपने बिगड़ प्रेम के बनने की बुझबुझ देते उसके घर जाती है और सोना अपने पति को खेड़-झड़ उससे उस बात देती है, तो वह एकदम प्रचण्ड हो जाती है और कठोर बर्तन में फटती है— "तूने उस पापी को सात क्यों नहीं मारी? रात क्यों नहीं काट दिया? उसका कून क्यों नहीं पो सिया? चिझाई क्यों नहीं?" यह है सोना के प्रेम का प्रचण्ड आदर्श। वह भारतीय और पवित्रता मारी है। विवाह से पहले प्यार की बात को वह व्यभिचार समझती है।

सोना के चरित्र का बड़ा स्वाभाविक विकास प्रेमचन्द ने दिखाया है। वह मोची-मासी किशोरी-रूप में भी विचारशील बालिका थी—अपने माता पिता के साथ मैनों पर सब काम करने वाली। घर-गृहस्थी की समस्याओं ने ही उसका बौद्धिक विकास किया। अपने रूप-मुख और मनो-कुल का उसे गह है। अपने पिता की दयनीय अवस्था को वह समझती थी। इसी से जब बड़े-बड़े देने की बात जाती तो उनसे मिलिमा के हाथ अपने माँ की पति को सफा कहना मेवा कि सोना को पाना चाहते हो तो बड़े-बड़े से जबाब देना होगा। उनके गह स्वाभिमान पितृ प्रेम चरित्र की हफ्ता स्वभाव का समुल्लस आदि मुख उसके इस साहसिक आचरण से ही प्रकट हो गति है। वह माय्य की सीधे-सोना, निकली। घर, घर-गृहस्थी सब सुखद मित्र। सिलिया जब विवाह के बाद उसके घर आकर मिलती है तो उसके सृष्टिणी के तप सपाते बसब को देखकर चकित रह जाती है। उसके प्रचण्ड आदर्शवाद के मूल में उसके पतुष्ट-सम्भार ही है। वह बहुतो कुल की है और अपने पिता और अपनी माता के आश्रय का आदर्श उसका संस्कार बना हुआ है।

एक ही गाँव की ये तीनों नारियाँ अपने-अपने कुल शक्ति-आकाशरम के संस्कारों के साथ किशोरी मजबूत हैं। तीनों के प्रेम में किशोरी समानता है, और किशोरी विभ्रता भी।

पुनी या पुनिषा हीरा की अपनी पुनिषा भी साथ का एक ययार्थ मारी बिब है। ककमा पबाल की लेख। "बच्चे दो ही हुए थे सिर्फिन डन गई थी। अमाव और बिबशापा ने उसकी प्रकृति का जाम सुलाकर कनेर और मुक्क बना दिया था जिस पर एखबार छाबड़ा भी उबन जाता था।" वह अपने घर की मानकिन थी। उसी के बिरोह से पारणों में अन्धपीठा हुआ था। अनिया को परान्त करने के घर हो



गई थी। हीरा कभी-कभी उसे पीटता था। लेकिन अपना पचाधिकार वह किसी तरह न छोड़ती थी।" इसी अधिकार को वह हमड़ी बंसोर प्रसंग में अताती है। वह वह बर्बात नहीं कर सकती कि उसके सामने के बाँस उसके पूछे बिना कोई बम बमों पर काट-कटवा स। वह हमड़ी बंसोर के पीछे पड़ जाती है और पुनियाने तक लग जाती है। मामकम ने अधिकार का अमिमान वह पति के आगे भी नहीं छोड़ती। जब हीरा उसे मारता है तो वह भी उसे बराबर गालियाँ देती है। जब हीरा हमड़ी बंसोर को पन्द्रह रुपये के भाव ही बाँस काटने को कह देता है तब 'कहाँ तो पुसी बैठे रो रही थी। वहाँ लमककर उठी और अपना सिर पीट कर बोली—सगा रे घर में आग भुझे क्या करना है? भाग पूर गया कि तुम-जैसे कसाई के पासे पड़ी।" कैसा मनोवैज्ञानिक चित्र है हम गारी-स्वभाव का। पुनिया को अपनी बृहन्मी का पूरा क्याम है। पाव-काँठ के बाद हीरा के पाव जाने पर वह अपने बर-बेत का सारा काम सँभासती है। अकेली होकर वह रोटी-सुकती नहीं और भी प्रचण्ड हो जाती है। अपनी बंठानी से उसका हृ प था। पर उसकी आँखों का पानी बिस्फुल मर नहीं गया है। वह होरी के उपकार को मानती है और जब उसे पता चलता है कि पुनिया के घर अनाज का एक ढागा भी नहीं है तो डेर-साथ अनाज अपने मही से ले देती है। महत्तो मे ही तो उसकी बेटी बचाई है और मुख के दिन चाहे लड़कर काटो मुसीबत तो मेम से ही कटती है।

मोहरी मोहरी पुरुष-समाज की विनाश-वास्तना तथा दूषित वैवाहिक-पद्धति का शिकार गांव का ऐसा गारी-पात है जिसके कारण ग्राम-जीवन में नैतिक पतन आता है। वह जवानी में ही विधवा हो गई थी। बूढ़े भोला की तार टपक पड़ी। झटपट शिकार मार साम। जब तक सगाई न हुई, उसका (मोहरी का) घर खोद डाला। मोहराम के विरोध आशय में मोहरी बचल हो जाती है। मोहराम उससे अनुपिठ सम्बन्ध बाँट लेता है। मोहरी की बड़ी छातिर होती है। प्यादे और सहने तक इसका इबाज भामने सपते हैं। वह भी गर्भ से फूली नहीं समाती। वह बूढ़े पति की बचला पत्नी बन जाती है। जब मोहरी के बारे में कनबतियाँ होती हैं और भोला वहाँ से बसम का प्रस्ताव उसके सामने रखता है तो वह साफ जबाब दे देती है—'तुम्हें जाना हो तो जाओ मैं नहीं जाती। वह भोला की बुबलता से परिचित हो चुकी थी। किन्तु जब भोला उसे छोड़ स्वयं जाने को रँमार होता है तो वह झुत्तों से उसकी ऐसी जबर भेती है कि देचारे को रुम दबाकर बैठ रहना पड़ता है। मोहराम के हम पर मोहरी प्रचण्ड करने सपती है। पटेस्वरी ने उससे जरा छोड़ छड़ की तो उसने भी लूब सुनाई और प्रोध का ऐसा अधिनय किया कि मोहराम और पटेस्वरी दोनों को मचा डाला। उसके हय सिया-बलि का बहुत सुन्दर और

इरीष भिन्न हुआ है। वह लोगों का मुँह बन्द करने के लिए होरी को मझकी के सिवाइ के लिए स्पष्ट देती है। वह अपनी उड़ती हुई गर्द को रोक्ना चाहती है। वह बूझ चीट उड़ाती है। वह होरी को अपना समीची मानती है और अपने देकर अपने पक्ष में करना चाहती है। होरी स कहती है—तनिक समझा नहीं देते राखत मो। अब इन्हीं लोगों के बीच रहना है तो ऐसे रहना चाहिए न कि बार बादमी करने हो जाने और इनका हास यह है कि सबसे सबाई, सबसे सपका। अब तुम मुझे रास्ते में नहीं रख सकते मुझे दूसरों की मझूरी बननी पड़ती है तो यह कैसे निवृत्त पड़ता है कि मैं न किसी से ईशू न बापू न कोई मरी और ठाके नहीं। उन्नी समझ में कोई बात आती ही नहीं कभी मझकों के साथ रहने की सोचते हैं कभी सबनक जाकर रहने की सोचते हैं। इस प्रकार मोहरी की चंपनता चप वसा उस बनुर भी बना देती है। वह घोषा की तो दुर्गति ही कर बासती है।

मिस मासती—ग्राम-ममाव के इन उपर्युक्त प्रमुख नारी-यात्रों के अतिरिक्त 'मोहन' में बहरी जीवन के परिचायक नारी-यात्रा भी अपना महत्त्व रखते हैं। इन बहरी नारी-यात्रों में प्रमुख है मासती। मासती का चरित्र चित्रण भी बहुत सजीव। प्रमचन्द ने इन शब्दों में मासती का परिचय दिया है—'दूसरी महिला जोड़ की ही का बूटा पहने हुए है—और जिनकी मुक-स्त्रि पर हँसी फूली पड़ती है मिस मासती है। आप इकसैस ने बोंकरी पड़ जाई है और अब प्रीक्स करती है। तास्तुकेषारों के मझों में उनका बहुत प्रवेश है। आप नबयुष की साक्षात् प्रतिमा हैं। बाव कोमल पर चपमता फूट-फूट कर मरी हुई। सिसक या सझोच का कहीं नाम नहीं मेकमप में प्रवीण बसा की हाबिर नबाव पुरख-मनोविज्ञान की जख्ती जानकार, आनोद प्रभाव की जीवन का तत्त्व समझने वाली सुमाने और रिखाने की कला में निपुण जहाँ जलमा का स्थान है वहाँ प्रवर्तन वहाँ हृदय का स्थान है वहाँ हाव-भाव मनोद्वारों पर कठोर निग्रह जिसमें इच्छा या अभिलाषा का सोप-सा हो गया है। मासती के इन चरित्र-चित्र की सत्यता हमें छठे और आठवें परिच्छेदों के पढ़ने से ही ज्ञात हो जाती है। चम्पनता बुद्धि-बालुर्ष आत्माभिमान नबाकठ स्वार्थपटा आदि उसके स्वभाव की सभी विशेषताएँ और कुबलताएँ अनुप-यत प्रयत्न में ही स्पष्ट हो जाती हैं। विवेकी-निष्ठा के प्रभाव ने उसे तितनी बना दिया है। मनोरञ्जन और हास-विनास ही उसके जीवन की ऊमरी सतह पर छाया हुआ है। दूसरों की हँसी उठाने व्यास करने में वह बहुत तेज है। वह जग भर में ही बोंकारनाप को उन्नी बना बासती है। उसका समनमायक हुरदम अपने चारों ओर रमिकों का प्रमय चाहता है। अपने हाव-भाव से पुरुषों को मजाना वह बूझ जानती है। मिस-मालिक बसा भी उमने इती तरह उन्नी बना रखा है। वह बिम से मेहता

के प्रति आकर्षित है। स्वार्थ का ऐसी कि भुखीत सिर पर आने से भी वह हाथ बाधे हजार रुपये आसानी से छोड़ना नहीं चाहती। पठान को देखकर वह भयभीत हो जाती है। पर पठान की प्रेम-भरी बातों और रसीली आँखों को देखकर उसका आचारा मन आश्रित हो गया। 'उसका हृदय कुछ दूर इस नर-पुत्रों के बीच में रहकर उसमें बरबर प्रेम का आश्रय उठाने के लिए सज्जता रहा था। विद्व-प्रेम की दुर्बलता और निर्जीवता का उन्हें अनुभव हो चुका था। आज अचानक अनजान पठानों के सम्मत् प्रेम के लिए उनका मन झीझ रहा था।' उसका हृदय सङ्कुचित भी रहता है कि वह एक सामान्य कच्ची स्त्री के सेवा-भाव को भी लज्जा की दृष्टि से देखती है और मेहता को उसके प्रति झठा प्रकट करते देखकर हँसी से बस उठती है। वह नारी-स्वच्छन्दता की हामी है। आश्चर्य है कि वह एक बार जेग भी हो आई है।

किन्तु वह मासरी के चरित्र का ऊपरी पक्ष ही है। वह बाहर से पिटती है भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हँसी ही हँसी नहीं है। केवल गुड़ बाहर कौन भी सकता है। वह हँसती है इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका बहुलता और चमकना इसलिए नहीं है कि वह बहुलने और चमकने को ही जीवन समझती है या उसने निजत्व को अपनी आँखों में इतना बड़ा लिया है कि जो कुछ करे, अपने ही लिए करे। नहीं वह इसलिए बहुलती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है। सचमुच मासरी घर का सारा धार्मिक आप निभाती है। पिता के रोग से निरुत्साह हो जाने के कारण घर का सारा खर्च मासरी के ही बज से चलता है। दोनों बहनों की पढ़ाई-लिखाई का भी वही खर्च उठाती है। पिता के अनियमित खर्च को बर्दाश्त करती है। पारिवारिक शिष्टा से उसका ऊपरी ढोधा ही रेंगा गया है अन्तस्त्व भारतीय नारी का ही है। सेवा कर्तव्य सम्मीरता दयाभुता आदि गुणों के बीच उसमें विद्यमान हैं। उनके सफ़रार भुत नहीं हो गए। वह आहो किन्तु ही हाथ पाव दिखावे पुरुषों को मात्र लपकाकर उपहार पड़े पर उसका नारी-हृदय इसमें सम्योप नहीं पाता। वह एक ऐसा आश्रय चाहती है जो हक हो स्थायी हो। उसका मधुमक्खी मन मेहता के धुनों पर रीस जाता है। वह जी-जान से मेहता को चाहने लगती है। वह मेहता के एक-एक गुण को अपने हृदय में सञ्चित करना चाहती है।

मेहता का हक आचार पाने की आशा में उसका आर्थिक परिवर्तन आरम्भ होता है। वह जब सेवा और कर्तव्य का मार्ग अपना लेती है। वह महिलाओं के लिए एक व्यायामशाला का आयोजन करती है। व्यायामशाला कमेटी की समानेसी बनकर चम्पा हस्तु करती है। वह जब मेहता का सखेत पाकर बसा की पलटपड़नी भी दूर कर देती है और नोविग्री-बसा के बीच से विरक्तुन हट जाती है। वह चम्पा

रोशन के गरी-यात्र

को स्पष्ट गहरों में कूट देती है—मैं कपडनी हूँ। तुम भी मेरे अनक बाहने बार्सा में से एक हो। यह मरी कूपा थी कि जहाँ मैं बीरो के उनहार लोग देती थी तुम्हारी आत्मन्य म मायाव्य बीजों का धन्यवाद क साथ स्वीकार कर सती थी और अकृत्य जब पर तुमने स्वय भी मौम केनी की अगर तुमने अपन धनागमाद में इसका कोई इनए बर्ष निवास किया तो मैं जमा कऊँया। यह पुण्य-प्रवृत्ति है अपवाद नहीं अगर यह समझ लो कि धन मे आत्र तक किसी गरी के हृदय पर बिजय नहीं पायी और ब कमी पायेगा।

जो मायनी कही कुछ अपने बूने भी न पहनती थी जो कुछ बनी बिजनी वा बटन तक न बढाती थी बही अब पदम चमकर गाँवों में मेधा-कार्य के लिए जाने लगी है, गरीबों का मुक्त इनाम करने लपटी है। मायनी क रत्न-उज्ज की बायापम होनी जाती थी। 'जब तक बिजने मर उये जिने सही न उमकी बिवास हृति को हो उकसाया। उनकी त्याग-वृत्ति दिन-दिन सीप होनी जाती थी पर मेहता के मयग में आकर उनकी त्याग-भावना मत्रय हो उठी थी।' हिम्नु मेहता जब अब भी उठे परीक्षा की हृति मे दखते हैं और कहते हैं कि मैं जिस आघार पर जीवन का पवन बड़ा करना चाहता हूँ वह अन्धिर है तो मायनी मेहता का उपेक्षा-भाव देखकर अब भुव्य हो वह उन्नी है— तुमने मरब मुने परीक्षा की जीवों से सेवा बनी प्रेम की जीवों से नहीं। मैं क्यों अन्धिर और अन्ध्र हूँ, इसीलिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला जो मुझे स्तिर और अन्ध्र बनाना अगर तुमने मेरे सामने उठी तरह आत्म-अपमय किया हो— तब मैंने तुम्हारे सामने किया है ता तुम आज मुझ पर यह आत्मन्य न रखने।" यह आज कहती है— मैं प्रेम का सन्नेह से ऊपर सम लगी हूँ। वह देह की बन्धु नहीं आत्मा की बन्धु है। — "वह सम्पूर्ण आत्म-समपन है। उसके अन्धिर में तुम परीक्षक बन कर नहीं उपासक बनकर ही बरदान वा मरने हो।"

और गजमुब ही मायनी अब मेहता को उपासक बना छोड़ती है। 'आब मेहता मे जैसे उम टुकराकर उगरी आनन्दिक का जमा दिया। अब तक वह मेहता के आचर के हा मशारे जानती थी लत्र स्वय आदर बनन का हृद मुकृत्य उमन कर लिया। वह सेवा और ग्यास की मूलि बन गई। मेहता अब परीक्षक मे परीक्षाओं बन गए। मायनी मेहता के अन्ध्र-अन्ध्र जीवन को व्यवस्थित करनी है। उनकी मुत्र मुबिधाओं का पूरा ध्यान रखनी है पर मन में कोई व्यावृत्तता नहीं जाती सहज आब से बनना बन्धु मिताती है। उमने मातृ-आत्मन्य पर मेहता मुत्र हो उठे हैं। 'तब मायनी प्यारी थी अब मेहता प्यास मे बिजय है। मुबिधा के बावक मज्जन के प्रति जा आत्मन्य मायनी न दिखाया उमन मेहता की मरती में मायनी

बहुत ऊँची उठ गई— मासती केवल रमणी नहीं है माता भी है और ऐसी-वैसी माता नहीं सन्धे जहाँ में वेणी और माता और जीवन देने वाली जो परामे बालक को भी अपना समझ सकती है जैसे उसने मातापन का सर्वत्र संघम किया हो और (मधुमयी की तरह) आज बोगों हावों से उसे सुटा रही हो। उसके मङ्गल-मङ्गल से मातापन फूटा पड़ता था मानो यही उसका यथार्थ रूप हो। यह हाव-भाव वह सौंफ सिंगार उसके मातापन के आवरण-मास हो जिसमें उस निभूति की रक्षा होती रहे।

मासती को अब अनुभव हुआ कि 'इस स्वाय के जीवन में कितना आनन्द है। दूसरों के कष्ट-निवारण में उसने जिस सुख और उन्माद का अनुभव किया वह कभी भोग-विलास के जीवन में न किया था। अब वह प्रेम की वस्तु नहीं ब्रह्मा की वस्तु थी। अब मेहता याचना करते हैं और विवाह का प्रस्ताव मासती के सामने रखते हैं तो वह कहती है— 'मिल बनकर रहना स्त्री-पुरुष बनकर रहने से कहीं सुखकर है।' 'अपनी छोटी-सी गृहस्त्री बनाकर, अपनी आत्माओं का छोटे-से पिन्डे में बन्ध करके अपने बुद्ध-मुख की अपन ही तक रख कर, क्या हम असीम के निकट पहुँच सकते हैं? तुम्हारे-जैसे विचारवान् प्रतिभावाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस काठमार में बन्द नहीं करना चाहती।

इस प्रकार मासती का चरित्र आदर्श में परिणति पाता है। यह विकास अत्यन्त सजीव और स्वाभाविक है। वह जीवन की पूर्णता का आदर्श प्रस्तुत करती है।

गोविन्दी—आरम्भ में प्रेमचन्द ने गोविन्दी का परिचय कामिनी बच्चा नाम से दिया है—वह जो जहर की छाड़ी पहने बहुत धम्मीर और विचारशील-सी है मिस्टर बच्चा की पत्नी कामिनी बच्चा है। किन्तु इस प्रसंग के बाद में सब बयान गोविन्दी नाम ही आता है। साबब मूल से ही ऐसा हुआ है। गोविन्दी एक ऐसी पति-भरपूरवा सखी धाँसी धारणीय नारी है जिसका उज्ज्वल मानव स्वार्थ के स्वान पर त्याग आत्मरति के स्वान पर सेवा साब-सखी और कुलमिता की बमह साक्षी और स्वाभाविकता हास भिलास की अगह कठम्य-पासन को ही ग्रहण करती है। दुर्भाग्य से उसका पति विपरीत स्वभाव का है। वह अपने मनोमार्ग में ही मग्न रहता है। भिलास रसिकता के कारण घर-गृहस्त्री में वह कोई रुचि नहीं लेता। वह गोविन्दी की उपेक्षा करता है और मिला मासती के बचकर मे फँसा है। गोविन्दी को यह बहुत बटकता है। फिर भी वह उसी प्रेम और मिठा से पति की सेवा क्रिये जाती है। पति की 'बपार सम्पत्ति जैसे उसकी आत्मा का कुचलती रहती है। इन आश्चर्यों और पाठकों से मुक्त होने के लिए उसका मन सर्वत्र समझाया करता है।

'इस बारे सागर में वह प्यासी पड़ी रहती है। विनोदित पति की सख्यता और

जैसा बयान होनी चाही है। खया अपनत्व ही नहीं भाव-वीर भी करने मये है। एक दिन पति के साथ सपका रह जाता है। गोविन्दी सुख होकर घर बच्चों का पोहो त्याग कर घर से निकल जाने का निश्चय कर पती है। वह देवता मोर के नाम को लेकर बनी जाती है—यह महाभय इनीमिय रीत जमाते हैं कि वह मेरा नाम करते हैं मैं अब कुछ अपना पालन करूँगी। पार्क में उसे खया मिल आते हैं और उसकी प्रशंसा तथा उसके प्रति भय-भाव प्रकट करते हुए साम्बता बताकर घर वापस आते हैं। वह भी मातृत्व का मोह नहीं त्याग पाई थी? मिन के मत जाने पर वह अपने पति को समझाती हुई कहती है कि ब्रह्म-सम्पत्ति के नाम पर इतना कुछ क्यों? धन के लिए कुछ जो सारे पाप की जरूरत है? धन छोड़कर अगर हम अपनी आत्मा को वा लके तो यह कोई महँगा मोश नहीं है। उसकी सेवा उसका त्याग उसका मातृत्व विषय पाते हैं। खया उसका महत्त्व समझने मकते हैं।

### चरित्र चित्रण की विशेषताएँ

पात्रों के चरित्र-चित्रण में प्रेमचन्द की सफलता अविशेष है। प्रेमचन्दजी की चरित्र-चित्रण की एक प्रमुख विशेषता है उनकी विविधता। प्रेमचन्द ने विभिन्न प्रकार के पात्रों को अपनाया है। न केवल बग और पेड़ की दृष्टि से वान विभिन्न हैं बल्कि स्वभाव और प्रकृति में भी उनमें पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। राजा मूय प्रतापसिंह, पदमावत, अमरनाथसिंह जैसे जमींदार, मिन, मातृत्व, खया, पद्मावत, ब्रौकरनाथ, प्रोफेसर डा० मेहता, मोती, मदन, सुन्दर, मुपुतकार, चामाक, रंधा, दण्ड, न्याय, होरी, पद्मावती, पटेलवरी, राम-वर्मा, दादाजी, जमींदार का कारकून, लोने, व पुतिम, दारोगा, मन्नासिंह, सिन्धु-मनक, आदि महान्न, मोमा, अहीर, मन्नु, स्वच्छन्द, बुद्धिमत्, मातृती-मरोग, आदर्श, पत्नी, गोविन्दी तथा धनिया-मुनिया, सिया आदि विभिन्न-विभिन्न वर्गों की साम-नारियाँ आदि अनेक प्रकार के पात्र उप-रान के बृहत् कलेवर में यथा-न्याय उचित मात्रा में टीक प्रकार चित्रित हैं। इन ब्रह्म-विभिन्न बय-देखे के पात्रों के चित्रण से जीवन की एक विस्तृत झलकी स्वयं ही स्पष्ट हो गई है। जीवन के इतने व्यापक चित्र-पत्र को इतने बाल पात्रों का बयान तथा की विस्तृत जीवन दृष्टि का परिचायक है।

पात्रों में 'कु' और 'पु' : स्वभाव और प्रकृति की दृष्टि से 'मोशल' के पात्रों को हम चार भागों में बाँटा जा सकता है। १—सर्वाधिक पात्र आचार्य साधव्य, मयार्थ, ब्रौकी के हैं, जिनमें अण्छाई-बुछाई दोनों ही विद्यमान रहती हैं न तो वे आदर्श पात्र कहें जा सकते हैं न अधम निरुद्ध। मोर, होरी, धनिया, मिनिया, मुनिया, मोया, पुनिया आदि प्राचीन गोपिन पात्र तथा सुन्दर, ब्रौकरनाथ आदि महरी पात्र प्राय-तः यथा-यथ ही हैं। न तो वे अपनी अण्छाईयों में देवता बनते हैं न बुद्ध

वह जब बाह्य की अपेक्षा ज़माने बनकर रहना अच्छा समझता है। निमिया से क्षमा मागता करता है। इसी प्रकार लहर में झुनिया को सेवाकर गोबर उनकी अपेक्षा करने लगता है। उसके साथ बुध्द्व्यवहार करने लगता है, मारता-पीटता है। किन्तु जब वह हड़तामियों के क्षय में लुप्त तरह घायल होता है, दुखी होता है तब मानो बुध्द की अग्नि में पड़कर उसकी आत्मा का वस्तुप जल जाता है। अब वह पछाने लगता है और झुनिया से अपने बुध्द्व्यवहार के लिए क्षमा माँगता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से भी यह बहुत सचार्थ है। दुखों में हम अपने दोषों का परिष्कार और परिहार करने लगते हैं।

सजीवता—ये सभी पात्र अत्यन्त सजीव हैं। अनावश्यक भी शायद कोई नहीं है। कबा के प्रबन्ध में सब अपना-अपना स्थान रखते हैं। गौन-से-गौन पात्र का भी अपना महत्व है। ममम्ब पात्रों को भी प्रेमचन्द ने सजीव रूप प्रदान किया है। बुद्धिया गिरधर शङ्करास आदि गौण पात्र भी अत्यन्त स्वाभाविक और सजीव हैं। बुद्धिया का आगमन केवल चार-पाँच पृष्ठों के प्रसङ्ग में होता है किन्तु उसका चरित्र कितना कुशलतापूर्वक चित्रित हुआ है! “बोहरी देह की कामी-कमूटी माटी कुबपा बड़े-बड़े स्तन वाली स्त्री। उसका पति एकका शक्तिता था और वह कुब लकड़ी की दुकान करती थी। उसकी झुनिया के प्रति सङ्गठनभूति स्वयं बार्द का काम निभा देना उसकी निर्भीकता गोबर को भी छटकार देना आदि प्रसंग घुमाए भी नहीं झूलता। किसी को भाटस्त्री कहते सुन लेती थी तो उसके माठ पुरखों तक बढ़ जाती थी। चरित्र-विवरण-कला की यही सबसे बड़ी विशेषता होती है कि सेवक प्रमुख पात्रों को तो सजीव रूप प्रदान करे ही गौण पात्रों को भी निर्भीक और बिस्मरणीय न रहने दे। होरी गोबर, धनिया मेहता कुबेंद्र मामती आदि पात्र तो प्रेमचन्द की अमर चरित्र-सृष्टि हैं ही, बुद्धिया जैसे गौण पात्र बिस्मरणीय हैं।

वर्षभल और व्यक्तित्व चरित्र-सृष्टि— प्रेमचन्द

सजीव व्यक्तित्व रखते हैं। सब अपने संस्कारों पर स्थिति अनुकूल विकसित हुए हैं। सेवक के हाथ की कठपुतली नहीं बन आए हैं कि पहले उपन्यासों में ज्ञानलङ्कार, भुली जोहरा आदि के झूठे पर चमते दिखाई देते हैं किन्तु 'गोदान' में ऐसा सभी पात्र अपने मन-बचन और कर्म की संयति प्रकट करते हैं। स्वाभाविकता पाई जाती है।

अपने पात्रों को सजीव व्यक्तित्व देने के लिए प्रेमचन्द ने अपनाई है। वे प्राग्-प्रत्येक पात्र का वैयक्तिक प्रस्तुत कर

बाह्य आकार-प्रकार, व्यक्तित्व आदि के माये समीप हो जाता है। प्रेमचन्द के रेखा-चित्र भी पात्र के आन्तरिक व्यक्तित्व से पूरा संयत होते हैं एक-दो उदाहरण देखिए। हरेणू चमार (सिमिया का पिता)—'छाठ साल का बूढ़ा कासा हुआ मूधी मिर्च की तरह पिचका हुआ पर उतना ही तीव्र। मगक साहू—कासा रंग तोंड कमर के नीचे गटकटी हुई, बड़े-बड़े दाँत सामने जैसे फाट जाने को निकसे हुए, सिर पर टोपी गले में बाहर उभर बनी पछास से ज्यादा नहीं पर भाटी के सहारे चमत से चट्टिया का मरब हो गया या और काँसी भी जाती थी।' हीरा—'गोब में कोश के लिए प्रसिद्ध। छोटा बीस गठा हुआ कपूर, बाँझें कौड़ी की तरह निकल आती थीं और रसम की नसें छन गयी थीं। बसावीन—इन्केबासा सिर बुटा बिजड़ी बाड़ी और कना। प्रेमचन्द के 'गोदान' से पहले उपन्यासों में यह रेखा चित्र-चिन्तन-कला भी विशेष विकसित नहीं हुई थी। प्रेमचन्द ने पात्रों की आकृति-प्रकृति को इन रेखा चित्रों के सहारे नये-नये ढाँचों में स्पष्ट कर दिया है। गोब-मुँह सभी पात्रों के रेखा-चित्र पाये जाते हैं। इस रेखा चित्र के साथ ही प्रेमचन्द कभी-कभी पात्रों की बोल-चाल चाल-ढाल में उनकी पात्र भक्तियों की विशिष्टता भी प्रकट कर देते हैं जिससे पात्र का व्यक्तित्व और उभर जाता है।

प्रेमचन्द सामाजिक उपन्यासकार हैं। अतः उनकी चरित्र-सृष्टि में मुख्य रूप-से बर्चस्व पात्र ही हैं। सामाजिक उपन्यासकार का मुख्य ध्यान समाधि की ओर रहता है। अतः वह पात्रों के उनकी क्षिया-कलापों और प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करता है जो उसके सामाजिक आचरण को स्पष्ट करें। प्रेमचन्द ने मानव का स्वतन्त्र अध्ययन करने की अपेक्षा सामाजिक परिवेश में ही उसका चरित्र अध्ययन किया है। यही कारण है कि उनके पात्रों में भिन्न-भिन्न वर्गों के प्रतिनिधि पात्र ही मुख्य-रूप से मिलते हैं व्यक्ति-व्यक्तित्वपूर्ण पात्र बहुत कम होते हैं। प्रेमचन्द ने इन भिन्न-भिन्न वर्गगत पात्रों का ऐसा समीप चरित्र-चिन्तन किया है कि लगता है प्रेमचन्द ने इन सब वर्गों में रह कर पूरा आन्तरिक परिचय प्राप्त किया हो। कृषक-जग की समूची परिस्थितियाँ प्रवृत्तियाँ संस्कार और भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होरी के जीवन और चरित्र में बिंबित हुई हैं। बसीदार-वर्ग का सम्पूर्ण परिचय रामसाहब और राजा पूर्वप्रठापसिंह के चरित्रों से मिल जाता है। महाजनी मनोवृत्ति सिन्धुड़ी आदि गाँव के महाजनों से समीप हो उठी है। बातावीन गोब के पण्डित-बाह्यण-वर्ग का भव्य प्रतीक है। मासठी और सरोज आधुनिक शिक्षित मुबली-वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। औदार गाँव आजकल के टण्डुलिये अममर्ष पल्लार-वर्ग के प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार भिन्न भिन्न वर्गों का समीप अध्ययन प्रेमचन्द के वर्गगत पात्रों से सम्पूनी हो जाता है।

इस वर्गगत चरित्र-सृष्टि की एक विशेषता यह है कि न केवल प्रेमचन्द का ज्ञान



उपन्यासकार प्रेमचन्द और उनका 'योशान'

वह अब बाह्य की अपेक्षा अंदर कमकर रहना अच्छा समझता है। निमिया से समा साधना करता है। इसी प्रकार नहर में निया को सेजाकर गोबर उसकी उपेक्षा करने लगता है। उसके साथ पुष्पबहार करने लगता है। मारता-पीटता है। किन्तु वह हड़तालियों के सर्प में बुरी तरह बाँध होता है, मुँही होता है। तब माँ की मर्ति से पड़कर उसकी आत्मा का कसुप पल जाता है। अब वह पकड़ने लग है और निया से अपने पुष्पबहार के लिए धमा मीचता है। मनोविज्ञान की दृष्टि भी यह बहुत यथार्थ है। दुखों में हम अपने दोषों का परिष्कार और परिहार कर सकते हैं।

सजीवता—ये सभी पात्र अत्यन्त सजीव हैं। अनावश्यक भी आपस कोई नहीं है। कबा के प्रवृत्ति से सब अपना अपना स्वाम रखते हैं। गौन-से-पीन पात्र का भी अपना महत्त्व है। नम्र पात्रों को भी प्रेमचन्द ने सजीव रूप प्रदान किया है। बुहिया गिट्ठर, बड़पाल आदि गौन पात्र भी अत्यन्त स्वाभाविक और सजीव हैं। बुहिया का आगमन केवल बार-पाँच पृष्ठों के प्रसङ्ग में होता है किन्तु उसका चरित्र किता कृपणतापूर्वक चित्रित हुआ है। "बोहरी देह की कानी-कसूरी गायी कसूरी बो दुकाव करती थी। उसकी निया के प्रति सहानुभूति स्वयं हाई का काम निभा देना उसकी निर्भीकता गोबर को भी कटकार देना आदि प्रसंग भुलाए भी नहीं भूलवा। किसी को घाटम्भी कहते सुन सेठी भी तो उसके साथ पुरखों तक बढ़ जाती थी। चरित्र-चित्रण-कला की मही सबसे बड़ी विशेषता होती है कि लेखक प्रमुख पात्रों को तो सजीव रूप प्रदान करे ही गौन पात्रों को भी निर्जीव और विस्मरणीय न रहने दें। बोहरी गोबर, निया मेहना कुर्सेव मासठी आदि प्रमुख पात्र तो प्रमत्त की अमर चरित्र-सृष्टि हैं ही बुहिया जैसे गौन पात्र भी अविस्मरणीय हैं।

वर्मणत और व्यक्तिगत चरित्र-सृष्टि—प्रेमचन्द के सब पात्र अपना स्वयं सजीव व्यक्तित्व रखते हैं। सब अपने संस्कारों परित्वितियों तथा वातावरण के अनुकूल विकसित हुए हैं। लेखक के हाथ की कठपुतली नहीं बने हैं। गोबे हम कह आए हैं कि पहले उपन्यासों में जागतिक, मुँही जोहर आदि पात्र कई बार लेखक के हस्ते पर बसते दिखाई देते हैं किन्तु 'योशान' में ऐसा एक भी जगह नहीं। सभी पात्र अपने मन कथन और क्रम की सगति प्रकट करते हैं। सब में मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता पाई जाती है।

अपने पात्रों को सजीव व्यक्तित्व देने के लिए प्रेमचन्द ने रेखा-चित्र-शैली भी अपनाई है। वे प्रायः प्रत्येक पात्र का रेखा-चित्र प्रस्तुत कर देते हैं जिससे उनका

बाह्य आकार-प्रकार व्यक्तित्व आँखों के माये मजीब हो जाता है। प्रेमचन्द के रेखा-चित्र भी पात्र के आन्तरिक व्यक्तित्व से पूरा समत होत हैं एक-शे उदाहरण देखिए। हरबू चमार (मिलिया का पिता)—‘छाठ मास का बूढ़ा कामा दुबसा जूही मिर्च की तरह पिचका हुआ पर उठता ही सीक्य। यपर माह—कामा रंग और कमर के नीचे लटकती हुई, बड़े-बड़े हाँव मागने जैसे काट काम को निकस हुए, तिर बर टोपी बल में चादर, उम्र अभी पचाम से ज्यादा नहीं पर माटी के महारे बनते ब दडिया का सरक हो गया था और चौड़ी भी आती थी। हीरा—‘माँ में क्रोध के लिए प्रसिद्ध। छोटा बीस पछा हुआ कठोर, आँखें कौड़ी की तरह निकस आधी की और धँस की नखें टन गयी थी। खमादीन—दुककेबामा मिर बुटा बिचड़ी दाढ़ी और काना। प्रेमचन्द के ‘चोराम’ से पहले उपन्यासों में यह रेखा-चित्र-चित्रण-कला भी विशेष विकसित नहीं हुई थी। प्रेमचन्द ने पात्रों की आकृति प्रकृति को इन रेखा-चित्रों के सहारे अपने-सुने कव्यों में स्पष्ट कर दिया है। बोज-मुक्य सभी पात्रों के रेखा-चित्र पाये जाते हैं। इन रेखा-चित्र के साथ ही प्रेमचन्द कभी-कभी पात्रों की बोल-बाल बाल-बाल में उनकी भाव भावियों की विविधता भी प्रकट कर देते हैं जिससे पात्र का व्यक्तित्व और उभर आता है।

प्रेमचन्द सामाजिक उपन्यासकार हैं। अतः उनकी चरित्र-सृष्टि में मुख्य रूप-से ब्यपन पात्र ही हैं। सामाजिक उपन्यासकार का मुख्य इमान समाज की ओर रहता है। अतः वह पात्रों के उन्ही क्लिया-कलापों और प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करता है जो उसके सामाजिक आचरण को स्पष्ट करें। प्रेमचन्द ने मानव का स्वतन्त्र अध्ययन करने की अवेक्षा सामाजिक परिवेश में ही समझा चरित्र अध्ययन किया है। यही कारण है कि उनके पात्रों में भिन्न-भिन्न वर्गों के प्रतिनिधि पात्र ही मुख्य-रूप से मिलते हैं। व्यक्ति-व्यक्ति-व्यपन पात्र बहुत कम होने हैं। प्रेमचन्द ने इन भिन्न-भिन्न ब्यपन पात्रों का ऐसा मजीब चरित्र-चित्रण किया है कि लगता है प्रेमचन्द ने इन सब वर्गों में रह कर पूरा आन्तरिक परिचय प्राप्त किया हो। कुरक-बग की सम्पूर्ण परिस्थितियाँ प्रवृत्तियाँ संस्कार और भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होरी के जीवन और चरित्र में विभिन्न हुई हैं। जमींदार-बग का सम्पूर्ण परिचय रामदासह और रामा कुरमप्रतापसिंह के चरित्रों से मिल आता है। महाजनी ममोवृत्ति शिबुरी आदि पात्र के महाजनों में लकीर हो उठी हैं। बाताचीन पात्र के पण्डित-बाह्य-बग का चरित्र प्रतीक है। पाली और मरोज आधुनिक निहित मुकनी-बर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। लोकार गाव आदर के टण्डुलिये अगम्य पञ्चकार-बग के प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार भिन्न भिन्न वर्गों का मजीब अध्ययन प्रेमचन्द के वर्णन पात्रों से बनती हो जाता है।

इस वर्णन चरित्र-सृष्टि को एक विशेषता यह है कि न केवल प्रेमचन्द का ज्ञान

पुरुषों बर्गों की ओर गया है अपितु आधुनिक युग में विकसित होन वाले गये टाइपों का भी उन्होंने अनुभव किया है। उन्हा ऐसा ही टाइप है। वर्तमान युग में ऐसे स्वार्थी सुपतखोर सबमरबादी व्यक्ति भी अपना एक विशेष टाइप बना चुके हैं। मासती के पिता मि० कौत के परिचय में भी ऐसे वर्ग की ध्वनि मिलती है। उसने बाप उन विभिन्न जीवों में से जो केवल जयाग की मदद से भावों के नारे-भ्यारे करते थे। बड़े बड़े बर्मीदारों और रईसों की बामबादे बिकमाना उन्हें कर्बा दिताना या उनके मुकामनों को बफसरों से मिलकर लय करा देना यही उनका व्यवसाय था। हमारे सख्यों में दसास थे। "किन्ही राजा की खावी किन्ही राजकुमारी से ठीक करबा ही और दस-बीस हजार उसी में भार लिये।" पतकार ओंकारनाथ का वर्ण भी गया है। उन्हा और ओंकारनाथ का परिचय हम ऊपर है चुक है।

प्रेमचन्द ने बगवत चरित-विषय में पीढ़ियों के अन्तर का ध्यान रखा है। छोटी पुरानी पीढ़ी का किसान है जो बागबाब, समझौता, बुझास में बिब्याम करता है गावर, रामसेबक, गिरमर आदि एकक लई पीढ़ी के प्रतीक है, जिनमें असतोप बिद्रोह और उदता है। रामसाहब और कल्याण की पीढ़ियों में भी अन्तर स्पष्ट है। यही नहीं, प्रेमचन्द ने एक ही वर्ग में बिबमित्त टाइपों के सूक्ष्म अन्तर भी पहचान हैं। सिपूरीसिंह सन्न के मन्त्रावन का एनेष्ट है जो लिबा-नकी करा के ही कर्ब देता है मयकनाह आदि कामच नहीं मिछाते। रामसाहब और राजा मूर्वप्रताप सिंह में भी अन्तर है। दूसरा परम वर्ग का बुद्ध और निर्बपी है रामसाहब इतना नहीं।

प्रेमचन्द के बगवत पात्रों में भी ब्यक्तिगत बिबेपताएँ रहती हैं बितके कारण उनका चरित बोहरा रहता है। एक ओर वे अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, दूसरी ओर अपना स्वतन्त्र निजी ब्यक्तित्व भी रखने हैं। प्रेमचन्द ने देखाचिनों उन्हा बिबिध मनोवृत्तिओं के प्रकाशन-द्वारा अपने पर्यन्त पात्रों को भी बिबिध ब्यक्तित्व प्रदान किया है। बनिबा जहाँ एक कृष्ण-नारी है वहाँ उसकी निर्भीकता बिबेबकर पुनिष्ठ बारोगा को भी फन्कार देना पन्नों को भी आड़े हाथों बना उसका निजीपन है। बिस बग के पुरुषों को बाल पगड़ी से कपकपी चढ़ जाती है उनका नारी में इतनी निर्भीकता बिरल ही है। उसकी कर्मठता अदम्ब साहस असतोप-बिद्रोह उन्हा बिबिध ब्यक्तित्व प्रदान करता है। इन्ही प्रकार सिपूरीसिंह में जहाँ और बाएँ बर्बयत ही हैं वहाँ उनका हंसमुख ब्यवसाय छारे गाँव को धसुरास बनाकर रूना सबको सासा समझना बर्बों को गालियाँ देना-मुनमा आदि उनके ब्यक्तित्व-को बिबेपता प्रदान करते हैं। रामसाहब बर्मीवार वर्ग का है पर बुद्ध ऐसी बाटे उसमें भी हैं जो उसे बिबिध बनाती हैं जैसे उसका हड़ चरित बह्मभोम-बिबाम से बूर रहता है यही तक कि हमरी मायी भी गही करता। धनुष-बज रखाता है ब्रामा बाप बिब

लेगा है, बहुत मित्रानुकारी है, आदि ।

प्रमचन्द्र कई बार एक ही बर्ग और प्रकृति के पात्रों में भी परिस्थिति विरोध में अन्दर खिटा कर उनका अलग-अलग व्यक्तित्व को उभारने का प्रयत्न करता है जैसे दावेदा-दादा होरी की तमाची बने की घनची देने पर बाई दादादीन मातराम आदि बहुत बच बठाते हैं और ३० रुपये से कम देने की मही साबसे 'ममर पनेश्वरी' में यह ब्यापक न देखा गया । कोई डाका या कपल तो हुआ नहीं । केवल तमाची हा रही है । इनका निष्पत्ति बचने बहुत है ।" इसी प्रकार दादादीन और मातादीन एक ही बर्ग के हैं, पर उनकी मजदुरी बरत हुये जब होरी छूटिन हा बाठा है तो बाई दादादीन को दया छूनी भी नहीं बाई मातादीन उसका निष्पत्ति कुछ भी से बाठा है । यह अपने बाप-बैठी निष्पत्ति नहीं बठाता ।

प्रमचन्द्र के 'पात्र' में कम-से-कम दो पात्र छेडे हैं जो व्यक्ति-व्यक्तियुक्त चरित्र-कला के चोटक हैं । एक है डॉ० मेहता और दूसरे मिर्जा खुर्शेद । इन दोनों में बर्ग-प्रकृति विरोध नहीं है, बरिष्ठ इनका चरित्र व्यक्तित्व विविधताओं से ओत-मोत है । मेहता विविध मित्रानुकारी है । उसका विविध आदर्शवादी-व्यावहारिक धार्मिक जीवन-रमन है । यह सामाजिक यत्नीर और विवेकशील है । पर साथ ही परमे देव का विनोदमय भी मराव में पुर होकर बहक और बहक दोनों ही प्रकट करता है । यह अपनी आत्मा का लया आकाशारी पुन है । उसका प्रम-व्यापार भी विविध है । इसी प्रकार खुर्शेद एक बन्त भील है । उनके चरित्र की विविधता को भी हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं ।

इस प्रकार 'चोबान' में यद्यपि अतिशयतन संयोजन चरित्र-मूर्ति हुई है, तथापि प्रमचन्द्र ने पात्रों की व्यक्तित्व विरोधताका और उनके चरित्रों के स्वतन्त्र विनय का भी पूरा ध्यान रखा है । मेहता-खुर्शेद जैसे एक-दो पात्र व्यक्तित्व-वैचित्र्यपूर्ण भी हैं । उनके अलग-अलग चरित्र-चित्रण भी उनके विस्तृत जीवन-अनुभव का परिचायक है ।

मनोविज्ञान चरित्र-चित्रण में प्रमचन्द्र ने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन तो नहीं किया है । उनके मरम धर्मिष्ठ और अज्ञान पात्रों में मनोवैज्ञानिक दृष्टियों और गुणात्मा के लिए कायक मुद्राङ्ग भी नहीं की फिर भी पात्रों का चरित्र विविध सर्वथा समाविज्ञान-आत्मन है । किसी पात्र की दार् हरेकत कोई चित्रण कोई बचन ऐसा प्रतीत नहीं होता जो मनोवैज्ञानिक हो । अपवाद-स्वरूप एकाग्र स्थान पर कोई मनोवैज्ञानिक कमी निम्न आए तो बान दूनी है । कई स्थानों पर भी पात्रों की मनोवृत्तियों का अध्ययन अपना मूल मनोवैज्ञानिकता का परिचायक है । सुनिया के आगे पर सुनिया के पात्र-चरित्रों का मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण हम बीच-बीच में करते हैं । रिंग प्रचार सातृष और बादीर के सत्रप होने

पर उसकी वह उद्यता और प्रवण्डता समाप्त हो जाती है यह इष्टम् ही है। गाय के जाने पर भी गजर मगने व उसके ध्व की बड़ी सुन्दर मनोवैज्ञानिक साँकी प्रस्तुत हुई है। जब दायादीन गाव का बूख जाँकना है तो 'धनिया ने तुरन्त टोका—'मेरे नहीं महाराज इतना बूख कहाँ? बुकिया तो हो गई है। फिर वहाँ पठित्व कहाँ घरा है? उसकी मनोवृत्ति का कँसा सुन्दर चित्रण है। जाइयों के मनोभाव बिसपकर हीरा के चचन सुनकर होरी का गाव परिवर्तन किना मनोवैज्ञानिक है। बह इतनी सावध लाई हुई गाय को भी बापस करने की सोच लेता है। हमड़ी बँसोर के प्रमङ्ग में भी होरी की मनोवृत्तियों का कँसा भव्य चित्रण हुआ है। जब हीरा इली प्रमङ्ग में पुनिया को मारता है तो पुनिया की मनोवृत्ति का कँसा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। जब हीरा हमड़ी बँसोर को १५ रुपये के गाव ही बाँव निकाल लिया गया है तो कहाँ तो पुनी बँटी रो रही थी कहाँ समक कर उठी काटने को कह देता है तो कहाँ तो पुनी बँटी रो रही थी कहाँ समक कर उठी कि तुम जैसे कसाई के पावे पड़ी।" गरीब मनोविज्ञान का एक और अत्यन्त सुन्दर उदाहरण योवर के जाने पर पुनिया के सोच मान का है। चात्पय यह कि प्रेमचन्द ने वालों की मनोवृत्तियों का बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन किया है।

अपवाद-स्वरूप एक-आध स्वयं पर मनोविज्ञान कुछ कच्चा भी दिखाई देता है। एक उदाहरण है कोरई और उसकी पत्नी के पारस्परिक सवड़े का प्रमङ्ग इस प्रमङ्ग में प्रेमचन्द पूरी मनोवैज्ञानिकता नहीं ला सके। उनका पहले योवर पर घुरी तरह बिसा जाना और फिर तुरन्त उस ठहरने का निमन्त्रण ही नहीं माता को समझा देने का अनुरोध करना मनोवैज्ञानिक इच्छा नहीं रखता। इनी प्रकार की मनोवैज्ञानिक कमी एक और प्रमङ्ग पर दिखाई देती है। योवर घहर से जब कमा कर आता है तो उसका माँ-बाप से भी सगझ हो जाता है। प्रेमचन्द ने इस प्रमङ्ग में योवर की बदनमीनी की अति कर दी है जो अजरले सगती है। वह अपनी माँ से यहाँ तक कह देता है—'और वह तो स्वाराज का संसार है। जिसके साथ बार में तम बामो बही अपना। कासी हाथ तो माँ-बाप भी नहीं पुछते।—और दादा भी बाहूते है कि मैं साथ करजा चुकाऊँ सपाग दूँ सङ्कर्मों का ध्याऊँ कर्म', यहाँ से मेरी जिन्यपी मुन्हारा देना भरने ही के लिए है। मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं। यद्यपि सपड़े और घोष की अवस्था में वेग भी माँ-बाप के प्रति उद्दण्डता का व्यवहार कर सकता है पर योवर का उपर्युक्त कथन कुछ सीमा के बाहर हो गया है—'मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं।' यदि बचन योवर-जैसे बेटे के मुँह से होरी-धनिया जैसे माँ-बाप के सामने नहीं निकल सकते। इस अपवाद के सिवा 'योपाप' में सर्वत्र मनोवैज्ञानिक सङ्गति है।

'मोदान' के अधिकृत पात्र निश्चित प्रकृति के हैं। गोबर, मासती माठाहीन हीरा आदि ऐसे पात्र हैं जिनमें परिवर्तन हुआ है। प्रेमचन्द ने इन पात्रों के चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विकास ही प्रस्तुत किया है। पहले उपन्यासों में प्रेमचन्द के पात्रों का चरित्र-परिवर्तन कहीं-कहीं मनोवैज्ञानिक-मा हो जाता था किन्तु 'मोदान' के पात्रों के बारे में वह नहीं कहा जा सकता। प्रेमचन्द ने पात्रों के सार्वभौमिक विकास का भी ध्यान रखा है। छोटा बालिका से युवती और गृहिणी हो जाती है तो उसके सार्वभौमिक विकास की रीखाएँ भी स्पष्ट की हैं। निश्चित प्रकृति के पात्रों में सार्वभौमिक परिवर्तन नहीं होता किन्तु अवसर, बट्ठा तथा परिस्थिति-विशेष पर उनके मनोभावों तथा प्रवृत्तियों में मनोवैज्ञानिक विकास और परिवर्तन आदि स्पष्ट सजित होते हैं। वे पात्र स्वयं भी अपने आचरणों से परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं और परिस्थितियाँ तथा बट्ठाएँ भी उनके सार्वभौमिक विकास में सहयोग देती हैं। इस प्रकार कथा और चरित्र-विकास का सामन्वय्य चटित होता चलता है।

प्रेमचन्द ने अपने पात्रों के चरित्र-विकास के लिए देशाभिन्न जैसी व्याख्या इसी तथा जाटजीय जैसी आदि सब को अपनाया है। वे अधिकतर अपनी ओर से रिखा-विकास तथा व्याख्या ही प्रस्तुत करते हैं पात्रों की मनोवृत्तियों का मनोविश्लेषण नहीं करते। मनोवैज्ञानिक जैसी बेंचे भी सजित वैयक्तिक पात्रों के लिए ही प्रयुक्त की जाती है। प्रेमचन्द के पात्र धार्मिक वैयक्तिक पात्र नहीं हैं वे सरल सामाजिक पात्र हैं। अतः प्रेमचन्द को मनोवैज्ञानिक जैसी की जरूरत नहीं पड़ी। राष्ट्रीय श्रेणी अर्थात् पात्रों के क्रियाकलाप कर्मोपक्रम तथा परिस्थितियों द्वारा उनके चरित्रों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। यद्यपि प्रेमचन्द के पात्र इतने सरल हैं कि उनके चरित्र उनके कार्यकलापों, संवाद आदि से ही पूरी तरह स्पष्ट हो जाते हैं फिर भी प्रेमचन्द अपनी लक्ष्मी में उनका देशाभिन्न और सरल सार्वभौमिक व्याख्या प्रस्तुत करके उन्हें विशुद्ध बोधमय बना देते हैं।

इस प्रकार चरित्र-विकास की दृष्टि से प्रेमचन्द पूरा सफल रहे जा सकते हैं। उनकी चरित्र-वृद्धि अत्यन्त व्यापक है। भिन्न भिन्न वर्गों के पात्रों का उन्होंने सजीव चित्रण किया है। पात्रों में वर्गगत प्रवृत्तियाँ होती हुए भी व्यक्तिगत विशेषताएँ रहती हैं। देश विदेश द्वारा भी पात्रों का व्यक्तित्व मजबूत कर दिया गया है। चरित्र-विकास में मनोवैज्ञानिक सगति पाई जाती है। पात्रों में मानव-सुलभ 'हुँ' और 'तु' दोनों प्रवृत्तियाँ रहती हैं। वे पात्र इनी भरती हैं हमारे परिचित-स सजीव प्राणी हैं।

### ५. देशकाल-वातावरण

प्रेमचन्द सामाजिक उपन्यासकार हैं। सामाजिक उपन्यासकार को भी ऐ-

हासिक उपन्यासकार की तरह देशकाल-वातावरण के पूर्ण-निर्वाह का ध्यान रचना पड़ता है क्योंकि सच्चे सामाजिक उपन्यास भी वास्तव में ऐतिहासिक उपन्यास बन जाते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों का ऐतिहासिक महत्त्व अशुभ है। इस ऐतिहासिक महत्त्व का सम्मान कारण है उनमें देश-नाम-वातावरण की सजीवता। प्रेमचन्द के उपन्यासों में हमारे भारतीय जीवन का कम-से-कम पिछली अठ्ठा सतासी का सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास सजीव हो उठा है।

'गोदान' का चित्रण पर्याप्त विस्तृत है। यह ग्रामीण ग्राम-जीवन का तो वर्णन है ही साथ ही ग्रामीण जीवन के भी कुछ सजीव चित्र इसमें उभर कर आये हैं। गाँवों से नहर तक जीवन का व्यापक परिचय इसमें है। अतः देशकाल-वातावरण के भी स्पष्ट हो पड़ते हैं—एक ग्राम्य जीवन और वातावरण तथा दूसरा ग्रामीण जीवन-वातावरण।

ग्राम-जीवन का वर्णन—प्रेमचन्द गहरी गाँवों के चिरे हैं उनका अपना जीवन बहुतांशतः गाँवों में ही बीता था। अतः उन्हें ग्राम-जीवन के प्रत्येक आयाम और हर पहलू का व्यक्तिगत अनुभव था। उनकी अनेक कहानियों तथा 'प्रभाव' 'कमसूमि' 'रक्तसूमि' आदि 'गोदान' से पूर्व के उपन्यासों में भी उन्होंने ग्राम्य-जीवन की अनेक सक्रियाँ दी हैं पर समग्र रूप से एकत्रित ग्राम-जीवन का जैसा सच्य और पूर्ण चित्रण 'गोदान' में हुआ है वह पहले की किसी रचना में नहीं। सच तो यह है कि प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास के पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में भी ग्राम्य-जीवन की पुष्टता को उद्घाटित करने वाला 'गोदान' जैसा दूसरा उपन्यास उपलब्ध नहीं हुआ। 'गोदान' रूपक-संस्कृति की भोक्त-परम्परा का प्रतीक प्रेमचन्द का अन्ततम उपन्यास है। वह ग्राम-जीवन का महाकाव्य है।

ग्राम्य जीवन का सामाजिक ढाँचा 'गोदान' में बड़ी सजीवता से प्रस्तुत हुआ है। गाँव में कई वर्गों और जातियों के लोग रहते हैं। उनकी सामाजिक मर्यादाएँ, धर्मियाँ और स्तर भी अलग-अलग हैं। वातावरण-जैसे बाह्य हैं जिन्हें ग्राम-समाज ग्रम-भूत मान कर आदर की दृष्टि से देखता है। चौधरी महतो हैं, जिनकी अपनी मर्यादा है। हरजू-जैसे निम्नवर्ग के जमान हैं जिन्हें उच्चवर्ग वाले नीच समझते हैं। भोला-जैसे अहीर हैं जिनमें पुणर्विवाह त्याग समाज मजबूत है। ग्राम समाज के स्तरमय व्यवस्था के लोग हैं। उच्चता के दो आधार हैं—एक जाति और दूसरे प्रभाव और पसा। वातावरण बर की उच्चता का साथ पड़ा है तो भोलेपन और पटेचरी अपने अधिकार के प्रभाव से पंच बने हुए हैं। चिबुरीविह अपने दौरे के बस पर अधिकार प्राप्त किए हुए हैं।

परम्परागत समाज-व्यवस्था का गाँवों में आठक है। लोग सभी स्वेच्छा

यथा विवसतापूर्वक इय पर विवसाम रक्षित हैं। पञ्च परमेश्वर माने जाते हैं और विरादरी उद्धारक। व्यक्ति या परिवार को पञ्च और विरादरी के शासन में ही रहना पड़ता है। परम्परागत झूठी-सच्चाई मर्यादों का उन्मूलन करने वालों को पंचायत करके स्थित किया जाता है। विरादरी से बाहर कर देने का भय भी रहता है। विरादरी में झुकावानी बन्द होने से व्यक्ति या परिवार नहीं रहे और कैसे रहे? इन प्रश्न प्राचीन ग्राम-संस्थापन का रूप बिहल हो गया है। यह सब महाश्वरी संस्ति के विकास का फल है। सब बातों में पैसे की मांग-खोज चलती है।

ग्राम-संस्थापन का रूप बिगड़ गया है और प्राचीन सम्मिश्रित परिवार-व्यक्ति तो नष्ट ही होती जा रही है। मायब ही कोई घर ऐसा हो जहाँ दो माई माच मिल कर रहने हों। एक तो माय के अन्त-साधनों से माइयों में कटपन हो जाती है दूसरे मजदूरी बहूँ पड़ों के शासन से मुक्त होकर अलग रहना चाहती हैं और असमयता करना बेटी हैं। माइयों में मायब में रीत्या-डोप रहता है किन्तु मुनीबत के समय माई ही माई की मर्यादा रखता है माई ही माई के काम आता है। सम्मिश्रित परिवारों में साम-बहु मनद-माचजों बेधरानी-जेनाभी में रोक ठकुरार रहती है, मामूली-मामूली बातों पर झगडा और कहा-मुनी ही नहीं मार-पीट तक हो जाती है।

ग्राम-समाज भी पुरुष-प्रधान समाज है। पुरुष मारी को परों में रखना चाहता है। उच्चर्ग की नारियाँ विमेष रूप से परों में रहती हैं। किमान बहीर और निम्न बर्ग की नारियाँ सेत-कनिहान और पशु-डोर का भी सब काम करती हैं। इस कारण वे भी अपना कुछ अधिकार मागती हैं। फिर भी पुरुष की ही प्रमुखता है। पुरुष पत्नी को मारना और अपने शासन में रखना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझता है। पुत्री-जैमी नारियाँ अधिकारों की टक्कर होने पर, मार जाती हुई भी मामियों और पड़न द्वारा अपना अधिकार बताती हैं। वैवाहिक पद्धति में अनेक दोष भागए हैं। जन्मेस विवाह आम होते हैं। मोना-जैमा बूढ़ा जबान पत्नी का निकार मार साता है। छिपुरीसिद्ध को जबान पतिमा रने हुए है। कई बार विवसनामज होरी-जैसे पिता को भी अपनी मजकी जबड़ उमर के रामसेनक को बचनी पड़ जाती है। उच्च बज में विधवा विवाह मारी का पुनर्विवाह स्थाय आदि बखित है। निम्नबज में यह सब माय्य है। बेमज विवाह के परिणाम-स्वरूप कनी-कनी परों की भाइ में या टट्टी की मो में ताक-साव अनुचित सम्बन्ध आदि अनैतिक आचरण भी दिखाई देने हैं।

उच्च-श्रुत और जात-पात के बचन भी काफी कड़े हैं। गाबर जब बहीर की विधवा बम्मा को ले जाना है और होरी-थनिया उस अपने घर रख मेते हैं तो समाज-विरादरी में गुफान मच जाता है। उच्च-बज के माय विवाहीय मारियों को होरी-चारी ही रखन घनात है। बाह्यण आदि उच्च बज के लोग चमारों आदि



निम्न वर्ग से छुड़ाकर का व्यवहार करते हैं।

ब्राह्मण-धर्म अपने पूरे पाखण्डों-सहित गाँवों में विराजमान है। ब्राह्मण ही पूजा-पाठ, धर्म-कर्म लायी-भ्याह अन्वयेष्टि आदि कर्मों के निवामक हैं और अपने स्थाव्यों की सिद्धि के लिए धर्म का बोयी रूप प्रचारित करते हैं। इस धर्म ने ही ग्रामीणों को माग्यबाह पुनर्जन्म कर्म-फल पाप-मुष्प तथा ईश्वरीय म्याम आदि के अन्ध-विश्वासों में जकड़ रखा है। वही धर्माला समझा जाता है जो निममपूर्वक स्नान-भ्यास करे, तिलक-छपा लगाये किसी का छुआ मोहन न छाये कथा-वत पूजा निभाये। दाताहीन अपने धर्म का ऐसा ही धम्म इन पत्तियों में प्रकट करते हैं— 'कोई हमारी तरह नेमी बन तो मे। कितनों को जानता हूँ, जो कभी धम्मा धम्म भी नहीं करते न उन्हें धर्म से मतमन्न न करम से न कथा से मतमन्न, न पुरान से। वह भी अपने को ब्राह्मण कहते हैं। हमारे ऊपर क्या हूँसेगा कोई, जिसने अपने जीवन में एक एकावशी भी माया नहीं की कभी बिना स्नान-पूजन क्रिये मुह में पानी नहीं डाला। नम निधाना कठिन है। कोई बता दे कि हमने कभी बाजार की कोई चीज खाई हो या किसी बूखे के हाथ का पानी पिया हो वो उसकी टाँग की राह निकल जाऊ। सिमिया अपनी चौखट नहीं लांघने पाटी चौखट, बरतन-माँडे छूना तो बूखरी बात है। किसी कारण धर्म भ्रष्ट हो जाने पर ब्राह्मणों को मोह देने तथा प्रामन्वित की व्यवस्था निगाने से बिगड़ा धर्म सुधार सकता है। काशी के पण्डित इन गाँवों के ब्राह्मण-पण्डितों से भी बड़े धर्म-ध्वजी माने जाते हैं। मुह में हठी छू जाने से ही माताहीन का धर्म मल्ट हो गया और काशी के पण्डितों ने प्रामन्वित कराके सुधार दिया।

धर्म-मीकता और समाज-मीकता किसानों में सत्कार-बढ़ होपई है। नूठी मज्जावशी वह नहीं उठा सकते। ब्राह्मण का पैदा मारना उनके लिए पाप है। इस धर्म-समाज-मीकता ने जहाँ उनमें कुछ दुर्बलताएँ तथा अन्धविश्वास पैदा कर दिये हैं वहाँ इसके कारण गाँव बासा का नैतिक आचरण भी काफी हद रहता है। अपनी आर्थिक निबलता के कारण जो, 1-बहुत गूठ बोस सेना या छोटी छोटी बेईमानी कर सता आदि नैतिक क्षिप्रता उत्पन्न लगण्य है। रूप-धर्म के भोग फिर भी किसी के असते घर में हाथ नहीं छेकते प्रकृति के ससर्ग में रहने के कारण स्वार्थ की कमवित-कालिमा उनको छूटी भी नहीं। गाँव के सुखों का आचरण भी इतना नहीं बिगड़ा जितना शहर बासों का बिगड़ा गया है। मोबर के लिए गाँव की सभी सुखियाँ और बहुएँ बहनें बनबा भागियाँ भी वह किसी की ओर दुरी हडि से कभी नहीं देखता था। किन्तु जब से गाँव के सड़के शहर में पड़ल गये हैं उनकी साज-हया न जाने कहाँ मुस हो गई है। पटेवारी और मोसेराम के सड़के गाँव की

बेटियों की तार-सौंक करत भूमते फिरते हैं। ग्राम-समाज अक्षिप्त है असम्भ  
 फिर भी मानवता के नाते य लोग अनेक विधियों से मन्थे हैं।

पाँवों की आच्छिन्न स्थिति बहुत बिगड़ गई है। इने-गिने महाजनो को छोड़  
 देव सब लोग पैसे-पैस को मोहता है। सारा साम परिग्रह करने पर भी  
 नें उम्का पूरा फल नहीं मिलता। वो जून मोहन भी मयस्सर नहीं होता। भूमि  
 नै-दुर्लभ हो गई है—मनमोहे तथा बेरबानी के कारण नेत छाने-छोटे ठुकरों में  
 नै हुए हैं। पुराने बङ्ग ने ही बेटी हाती है। मगवान्-मगोसे ही बेनी रहती है।  
 किन्तु पुष्ट-वर्ग-पुष्ट कर्ब के बोस से बबले जा रहे हैं। एक जाना न दो जाना  
 ज्ञा तक व्याज देना पबता है। महाजनी-व्यवहार का बोम-बाला है। सगान  
 बुनने कमल बोने व्याह तारी आदि सब अबसरों पर किमानों को महाजनो का  
 मुह ताकना पबता है। होरी ५ बीने और एक हम का किमान है उमरी हामन  
 जब अपनी कुटी है तो उन हजारों किमानों की अबस्था का अनुमान समाय जा सकता  
 है बिनके पास न अपनी जरा भी जमीन है और न हम। किमान के पास से जमीन  
 छिनी जा रही है और वह मजदूर बनता जा रहा है—पाँव में जमीनार का और  
 बहर जाकर मिसमानिकों का। होरी कहता है—“पाँव में इतने आवमी तो हैं  
 किम पर बेरबानी नहीं आई।” जमीनार पायी समान की मक्की से बमुमी करके  
 तथा डाँड-बाँध जन्मा बेपार आदि लकर जमीनार का कारिन्ना भी बेपार तथा  
 व्याज-बट्टा बमुन करके महाजन पायी व्याज खाकर, पटवारी अपने रौब में बेपार  
 तथा नजर-नजरना लेकर, मिस जाने ऊँच आदि उपज को कम लीम कर, ब्राह्मण  
 अपनी पुरोहिताई तथा महाजनी बलाकर—सब लोग तरह-तरह से मदीब किमानों का  
 मोषण कर रहे हैं। किमान इस मोषण की चक्की में पिस रहा है। ग्रामीण बेपारे  
 मोटा-बच्चा खाते हैं मोटा-मोटा पहनते हैं फिर भी न पेट भरता है न तन पूरा  
 बकता है।

‘मोशन’ में ग्राम्य वातावरण अत्यन्त सजीव है। ग्रामीणों का ज्ञान-मान  
 पढ़नाका सम्कार, वातवीत व्यवहार सब सजीव हैं। तीसरे परिच्छेद की एक साँकी  
 देखिए—‘होरी अपने माँ के समीप पहुँचा तो देखा अभी तक पोबर सेत में ऊँच  
 गोड़ रहा है और दोनों मजकियाँ भी उसके साथ काम कर रही हैं। तीनों ने  
 हुयामें उठनी और उसके साथ हो लिए।’—‘बड़ी लड़की सोना-’माड़े की माँ  
 माड़ी जिने वह बुन्नों से मोड़कर कमर में बाँधे हुए थी उनके हल्के जटिर पर कुछे  
 सरी हुई-भी थी ‘छोटी स्था’ ‘मैनी’ सिर पर बालों का एक बोंमना सा बना  
 हुआ एक-समोटी कमर में बाँधे। द्वार पर बुन्नी था। हाँरी और पोबर ने  
 एक-एक कमगा पानी सिर पर डँटिया जपा को नहमाया और मोहन करने मये।

जो की रोटियाँ भी पर रोहूँ जैसी मुफ्त और बिकना। अरहर की दान भी जिसमें कच्चे आम पड़े हुए थे। क्या बाप की बाजी में खाने बटी।" मोता के जाने पर उसकी पाहुनो-जैसी छातिर हुई। 'गोबर न खाट काम ही मोता रम मोल मायी क्या उमानु भर मायी।' 'होरी और गोबर मिलकर एक खाँचा भूसा भर लाये। मोता ने तुरन्त अपने अँगोछे की बीड़ बनाकर सिर पर रखते हुए कहा—मैं इसे रख कर अभी भागा आता हूँ। एक खाँचा और धुँगा। इसी प्रकार का पूरा ग्रामीण बातावरण सारे उपन्यास में समीपता के साथ प्रकट हुआ है। उनकी बातचीत में ग्राम्य संस्कार विद्यमान हैं। पापा भी ग्रामीण बोलचाल की है जो बातावरण को विशिष्ट बनाने में सहायक है। क्या खेत-खलिहान में काम करने का वर्तन क्या होली के उत्सव का राग रंग होल-मंजीरों की बड़ताम चीपल भर-सोंपड़ी सब का बचन अत्यन्त स्वाभाविक है।

ग्रामीण जीवन-वातावरण—गोदान में ग्रामीण जीवन की कुछ प्रतिक्रियाएँ ही मिलती हैं। नगरों के बातावरण और जीवन का पूरा चित्रण नहीं है जैसा ग्रामीण है। वास्तव में ग्रामीण जीवन कमजोर सुनना के हेतु साब प्रस्तुत किया गया है यह लेखक का मुख्य उद्देश्य नहीं है। ग्रामीणों में जनक प्रकार के राजनीतिक सामाजिक आन्दोलन और तरह-तरह की विचारधाराएँ प्रचलित हैं। नारी-स्वायत्तता का आन्दोलन शिक्षित नारियों ने स्वरूप बनाया हुआ है। पाश्चात्य स्वयच्छा और भारतीय मर्वादावाद का संघर्ष है। सरोज मामठी आदि मजदूरियों पाश्चात्य स्वतन्त्रता के पक्ष में हैं, मेहता उसके स्थान पर नारीत्व का भारतीय आवर्ण प्रचारित करते हैं। 'विजयी सम्पादक' अँकारनाथ और उनका पत्र ग्राम-सुधार का बीड़ा उठाए हुए हैं। मिर्जा खुर्ब को तरह-तरह की दल्लतें भुगतती रहती हैं। कभी तो वह जैसे बाने ग्रामियों को कबड्डी दिखाने के लिए, उनसे टिकट के पैसे छाड़ कर गरीब मजदूरों में बाँटता है। कभी बेस्वामी की समस्या का इलाज ढूँढता है तो कभी मजदूरों को इकट्ठा करने के लिए मजबूत है। नगरों में नई-नई व्यापारिक कम्पनियाँ बीमा-कम्पनियाँ बैंक तथा मिस-कारखाने खुल रहे हैं। बड़े-बड़े धूँधीपति और उद्योगपति विकसित हो रहे हैं। हुसरी और ग्रामीणों में मजदूरों और गरीबों का जमाव हो रहा है। प्रेमचन्द ने ग्रामीण मजदूरों और बेकारों की बड़ी मजबूत जाँची प्रस्तुत की है—गर्व (कोदई के गाँव) के और कई आदमी मजदूरी की टोह में सहर जा रहे थे। बातचीत में रास्ता पट गया और नौ बजने-बजते सब सोय अमीनाबाबा के बाजार में जा पहुँचे। मोबर हरान था। इस आदमी नगर में कहाँ से आ गये? आदमी पर आदमी मिया पकटा था।

'उस दिन बाजार में चार-पाँच सौ मजदूरों से कम न थे। रात बहरी, सोहार, बेसदार, चान बुनने वाले टोकरी डोने वाले और सगनराज ममी जमा थे।

अन्तःशास्त्र

एक एक पट दबकर निराश हो गया। इतने मात्र मकुरा का बहो नाम मिला।  
 ॥१॥ छोटे-छोटे एक-एक करके मकुरों को काम मिलता जा रहा था। कुछ  
 तो निराश हाकर घर लौटे जा रहे थे। अचानक वह कुछ और निश्चय बच रहे थे  
 जिसका कोई पुछछार न था।”

प्रेमचन्द ने 'मकुर' में गहरी निम्न मध्यम वर्ग का जीवन चित्रित किया था।  
 निम्न शोहान में मुख्यतः उच्चवर्ग के जमींदार, मिथ-मानिक मिलित प्रोपेटर और  
 व्यापारियों के होते हैं। जराब-कबाब नाम चमत्ता है। वे चन्दा देते हैं और खुला  
 पैसा जीवन बिताते हैं। कारों में डूबते हैं बड़िया खान-महलते हैं, कोठी-बैठकों में  
 हैं। मरीच लोग गम्भीर शक्तियों तक कोठरियों गहनों में डूबर करते हैं।  
 और वे मकुरों कांन-बोले नामों का जीवन खिन्नता की कल्पना करती हैं।

गह्रा उच्चवर्ग—विशेषकर जमींदार और पूँजीपति विनाम-युक्त जीवन बिताते  
 हैं। कुँवर दिम्बिबर्षाविह और विनामि विहार शक्तिशाली शक्तियों और पुण्यों का  
 और विनामि हैं। उन्मुख भाग और स्वच्छन्द विहार शक्तिशाली शक्तियों और पुण्यों का  
 जीवन-मिथान्त बनता जा रहा है। शक्तिशाली शक्तिशाली शक्तियों और पुण्यों का  
 पुण्य बन रही है। वह निम्नी बनकर पुण्यों का अपन हमारे पर बनाने में आमन्त्र  
 मनाती है। शक्तिशाली पुण्य-पुण्यशक्ति प्रेम पर विश्वास करते हैं। दरपान  
 और मर्याद में ऐसा ही प्रेम-मन्त्रज्ञ हो गया। मी-बाप के विराट की भी परवाह  
 नहीं की जाती। रायमाहक की बात को दरपान टुकरा देता है। पुण्य की मर्यादा  
 के कारण कई बार पति-पत्नी में बहल हुआ जाता है और पारिवारिक शक्ति नहीं  
 रहती। जन्म-मोहिनी का उदाहरण ऐसा ही है। मीमांसी और दिम्बिबर्षाविह का  
 समझा तो पुनरी मीमांसा तक ही पहुँच जाता है। मर्यादा में भी पुण्य की ही  
 प्रभावता है। बही कमला है और अपना प्रभाव रखता है किन्तु बहल-मी शक्तिशाली  
 शक्तियों की अब जीवन के अनेक क्षणों में काम करने लगी है। मानता अपन माता  
 पिता-महलों के लक्षों का भार स्वयं वहन करती है।

गहरी जीवन में स्थाव बहल माता म पुण्य जा रहा है। मीमांसा के छट  
 महाशक्ति मय का गहरी विराट पूँजीपतियों की व्यावसायिक बुद्धि का रूप में हुआ  
 है। मीमांसा का माता है Business is business बर्षा व्यापार व्यापार है  
 व्यापार अर्थ का मीमांसा है। जन्म अपने मित रायमाहक म भी मीमांसा  
 मय बनकर जाता है। वे मांग गहरी भी मिलते हैं, अपने मयमाहक की बात करते हैं।  
 मीमांसा में जन्म मीमांसा की शक्ति नहीं। जन्म रायमाहक का पाम अपनी कम्पनी के  
 मयमाहक जाता है। तथा इन्वन्ट में मीमांसा मीमांसा का जन्म करके हमारे पाम में  
 हमारा मयमाहक की मांग मोचना है। मिथ-मानिक मकुरों को काम मकुरी देने

हैं मजदूरों का दो कुन खाना भी नहीं बनता।" उसका स्वयं मैनेजिंग बायर-रेक्टर बना हजारों रुपये मासिक वेतन लेता है। पर मजदूरों की मजदूरी और भी बढ़ा देता है। ऐसी स्थिति मजदूरों की अछाति का कारण बनती है। मजदूर हड़ताल कर देते हैं। सङ्घर्ष तम जाता है। मिर्सों में मजदूरों की हड़तालों और सङ्घर्ष उस युग में आए दिन होने लगे थे। पण-सम्पादक ओंकारनाथ और कुर्सेव जैसे नेता मजदूरों को बढ़का कर बाप में शॉक देते हैं बाप आग से जलन हो जाते हैं। ऐसे होंगी नेता जन-सेवा के नाम पर कई बार अपने स्वार्थों को ही छिद्र करने की कुन में रहते हैं। रामसाहब और मिम मामली-जैसी का जेल हो जाना ऐसे ही प्रयत्न थे। इन स्वार्थी मनोवृत्ति के कारण सहर में किसी को एक-दूसरे हैं सभी सद्मानुवृत्ति और नबेदना नहीं रही। रामसाहब अपने शर्त की सभी लसपीर प्रस्तुत करते हुए कहते हैं— 'तही सह सकता उनकी हँसी को अपने बराबर के है क्योंकि उनकी हँसी में ईप्सी ब्यस और जलन है।' "सम्पत्ति और सहृदयता में और है। हम भी जान दते हैं, घम करते हैं, लेकिन केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए" हम में से किसी पर किसी का नाम कुर्सी का बाप "हवालात हो जाय" और किसी का जमाना बेटा मर जाय तो उसके और पार्स उस पर हँसते बपले बजायेंगे " और मिलेंगे तो छतने प्रम से जैसे हमारे पछीने की जगह नून बहाने की तँवार है। झाडोम्पुबी जमींदारी का बहुत सुन्दर चित्तन प्रेमचन्द ने किया है। जमींदार भी अब सहर के रँडू और पूँबीपतियों पर आघारित हो गये हैं। अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए अनक डोंग रचते हैं—एक ओर जलता के औरकन ह बनते हैं दूसरी ओर सरकारी वफसदों से बगाकर रखते हैं।

क्रिश्चि तौकरबाही और पुनिस-पञ्चति के काने कारनामों का भी अच्छा चित्रण हुआ है। बारागा रिक्कत खदान की ही ताक में रहते हैं जमने-हाकिम बालियाँ सेते और नजर-नजराने जाते हैं और टिब्डीबन गाँवों पर हमला बोन दते हैं।

इस प्रकार प्रेमचन्दजी ने सहर की जीवन की भी अनेक शॉकिंग प्रस्तुत करके सामयिक समाज और आशावरण का सच्चा चित्रण किया है। इस सचार्थ देख-कान आशावरण के चित्रण से रचना में युग-वर्ग की पूरी रखा होती है। पाठक को सब कुछ स्वाभाविक प्रतीत होता है। सहर की शिक्षित पाठों की आदर्शीय भी उनके शिक्षित चस्कारों और बौद्धिक विकास की परिचायक होती है। उनकी आपा में भी नागरिकता है।

देवकाम-आशावरण की यह मजीबना और स्वाभाविकता जहाँ एक ओर रचना का ऐतिहासिक महत्त्व बढ़ाती है वहाँ उस-परिपाक में भी सहायक होती है।

न न-आमरी बर्बाद चाहिये-अनुभूतियों में ओषित्य की प्रतिष्ठा हो जाती है।  
 व शर्तों परित्यक्तियों और भयों का साधारणीकरण और सहज सम्प्रेषण हो जाता  
 । यह देश-काल की सजीवता प्रमत्त के उपमाओं के ऐतिहासिक एवं साहित्यिक  
 रूप को बनाने में बूझ सहायक सिद्ध हुई है। उनके व्यापक मानव-जीवन-अध्ययन  
 से ही व्यक्त-व्यक्ति होता पड़ता है।

### ६ संसार-बाली

संसार वा कबोपकरण भी किसी प्रबल रचना में अन्तर्भाव्य है। हमारा  
 दिन-रात-बीत बार्तालाप से ही कटता है। व्यापक और विस्तृत जीवन-प्रवृत्तियों  
 की बार्तालाप के बिना कल्पना ही नहीं की जा सकती। अतः कबोपकरण एक और  
 जीवन-प्रवृत्तियों की स्वाभाविक बगलें हैं। हमारी ओर उनके समावेश से प्रवृत्ति में  
 प्रवृत्ति की वृद्धि होती है। किन्तु कबो-प्रवृत्ति में उन संवादों की ही स्वाभाविकता  
 रहिये जो कबो तथा चरित्रों के विकास से सम्बन्ध रखते हों अथवा प्रवृत्ति में  
 निहितता का कारण बन जाते हैं। हम यहाँ भी विवेचन कर चुके हैं कि सबप्रवृत्ति  
 प्रवृत्ति में ही मनीष स्वाभाविक रोचक और सार्थक कबोपकरण का आद्य प्रस्तुत  
 किया। उसके 'मोदान' में संवाद-बाली भी कबो के उत्कर्ष पर पहुँची हुई है।

'मोदान' के साथ सभी संवाद पुनः शर्तक हैं। वे कबो और चरित्रों के  
 स्वाभाविक विकास में भी महत्वक सिद्ध हुए हैं तथा रोचक और मनीष-स्वाभाविक  
 भी हैं। मोदान का आग्रह भी इन्हीं शर्तक संवादों से हुआ है—होरी-राम न दोनों  
 बालों को मानी-गानी बैकर मानी स्त्री धनिया से कहा—मोदान को उठ मोदाने बैक  
 दना। मैं न जाने बब लीटूँ। जरा मेरी साटी दे दे।

धनिया के दोनों हाथ मोदान न बरे थे। उपम पाव बर आई थी। मोदी—  
 मरे, कुछ रम-गानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है ?

और पाठकों को बताने की आवश्यकता नहीं कि किन्तु प्रकार हारी-धनिया  
 का यह कहने का गुणों का बार्तालाप है। किन्तु स्वाभाविक और मनीष है। यह  
 होरी-धनिया के प्रगाढ़ पारस्परिक-प्रेम उनकी निष्ठा निर्वन्धता और दलीय  
 विविधता का तो परिचायक है ही साथ ही इसमें होरी और धनिया की मूल-प्रकृति  
 तथा चरित्र-व्यक्तता का पुनः पता चल जाता है। होरी की दृष्टि मुनामरी प्रकृति  
 और धनिया का अल्पयोग विरोध और प्रमत्त किन्तु सख और मनीष हैं। यह  
 बार्तालाप अद्भुत रोचक है। उदात्त आग्रह और हास्य-विमोह तथा कदवा की  
 छाया का बीना निर्वन्ध-मनन इन दो गुणों में पाया जाता है। अतः-बीत बीस और  
 अल्पयोग में बीते आग्रह-परिणाम में बरम जाती है और फिर उपमों 'साते' तक  
 पहुँचने की भीवत ही न मान पावपी' से बीते एकदम करणा की छाया पनीवृत्त हो

जाती है वह सब पड़ते ही बगता है। कनोपकथन के समस्त गुण इस संचार में विद्यमान हैं। सक्षिप्तता, स्वामाधिक-सजीवता, नाटकीयता, रोचकता और प्रवचन के सार्थकता आदि सब विशेषताएँ पाई जाती हैं।

प्रेमचन्द की संचार शक्ती में नाटकीयता का गुण ज़ूब पाया जाता है। 'गोदान' में यह चरमोत्कर्ष पर है। प्रेमचन्द बातलाप कराते हुए पातों की भाव भंगियों और चेष्टाओं का ऐसा सजीव वर्णन करते हैं कि पातों का अभिनय सामान्य जीवों के आगे नाथन लगता है। इस आरम्भिक संचार में ही 'होरी ने अपने मुरिया से भरे हुए माथे को सिकोड़कर कहा' — धनिया ने 'परतप्त होकर होरी की साटी मिरवाई पगड़ी झूने और उमाचू का बटुआ लाकर सामने पटक दिया' 'होरी ने उसकी ओर आँखें तरेरकर कहा' 'होरी के गहरे सॉबसे पिचके हुए गहरे पर मुसकराहट की मृदुला समक पड़ी। धनिया ने सचाटे हुग कहा' आदि में नाटकीय तत्त्व किन्ने स्पष्ट और स्वामाधिक हैं। इसी प्रकार कहीं धनिया 'हज़म मटककर' बोलती है तो कहीं पातावीन 'पनी दृष्टि से टाक कर' बाट करते हैं। कोई रोप में कौड़ी की-सी आँखें निकामकर उत्तर देता है तो कहीं राजसाहब 'मूछों में मुसकराहट सपेट कर' बप्ता से बात करते हैं। कनोपकथन कराते समय सावानुसूल भावभंगियों के ये नाटकीय संकेत बहुत ही उपयुक्त हैं।

'गोदान' में अधिकशत सुन्दर, स्वामाधिक, सजीव, सक्षिप्त रोचक और सार्थक संचार ही पाये जाते हैं। प्रेमचन्दजी ने स्वामाधिकता की रक्षा के लिए पाता मुसकता का पूरा इमान रखा है। सभी पात अपने-अपने स्वभाव प्रकृति संस्कार, शिक्षा और परिस्थिति के अनुसार बातचीत करते हैं। उनकी भाषा भी उनके शिक्षा अनुभव के अनुकूल ही होती है। प्रेमचन्द की पातानुसूल संचार शक्ती की एक बड़ी विशेषता यह है कि बातला उनके समूचे उपन्यास में पातों के बातलाप विविध प्रतीत होते हैं। यह पात-वैविध्य धनिया होरी गोबर मेहता आदि के संचारों में स्पष्ट दिखाई देता है। धनिया के कथन सरस या तो निराश्रय गरीबी और अन्वाम से सुख उसके हृदय के सन्ने उभ निशोभकारी निर्धनक व्यग्रपूज उद्गार होंगे या अपने आत्मीय बन्धुओं के प्रति उगक समतापूर्ण स्निग्ध स्नेह के परिचायक होंगे। गरीबी से अवलोक्य होरी के भोषेपन तथा भोषकों और समाज के ठेकेदारों के प्रति उसके उद्गारों में व्यग्र की निगमता विशिष्टता प्रकट करती है। गोबर के भी विग्रह और अवलोक्य के उद्गार ऐसे ही व्यग्रपूज हैं। वास्तव में प्रेमचन्द की सभी में व्यग्र का विशेष पुट सबल पाया जाता है। इस व्यग्रपूज संचार-शक्ती ने उपन्यास में मजबूत दिया है। यह बीमता रस और हास्य रस का अङ्ग बनकर प्रकट हुई है। एक-दो नवाङ्कन देखिए। होरी मासिकों की कुसामय करने गया था। गोबर ने सीधा फटासा

श्रीग— यह तुम रात्र रोत्र मानिकों की सुभासर करन क्यों मान है। “हारी नरु  
 कछई देना मुखा कहना है कि यत्रनर म माना है। शीघ्र में सर्वानर नहीं है योर न  
 मनामी करन में कोई बड़ा मुख मिकना है।” ता माकर की अग्नान्ति देखि—  
 “बहु मादमियों को ही में ही विमान में कुछ-न-कुछ मानन ता निरना ही है।  
 नहीं तो मोर मेम्बरि क लिए क्यों बने हों ?” शरणा और पनों का प्रीतिरी क  
 समय प्रनिरा के कचन दिनन मनीर और मायिक अग्ररूप है। महर में अब मकर  
 मुनिपा को मानता है और मुनिपा को बचान बापी महानृपुत्रिद्यापा मारी बुद्धि का  
 मो कहना है— “तुम यरे घर में मर आया करो” ता बुद्धिपा अग्र के माय कहनी  
 है— मुम्हारे घर न आऊ वा तो मेरा रात्रियाँ कम बनेगी ? यही स मान-बाँच क  
 मे बाँधी है, ठक ठका यम होता है। मैं न होडी माता ता यह बादी मात्र मुम्हारी  
 मानें खान क लिए बेंडी न हानी। हारी ने माना स गाय मन क लिए मगाई दू द  
 ताने का माना दिया जित्नु अब माना न बनना सकट मुनापा ता सकट की बीर  
 तना उमन अम्पीकार कर दिया और मूमा देन का बायदा कर दिया। गोबर-बनिपा  
 । अब यह बाप मुनी तो बहुत बजरी। गोबर बापा—“ता तुम अब सब की मयाई  
 गैर करते कियम ?” बनिपा ने तीली आँखों स दया—अब यही एक उद्यम ता रह  
 गया है। नहीं बना है हमें मूमा किसी को। यही मोरी-मोना किसी का करम नहीं  
 बाबा है।” और अब माना मूमा मन का पहुँचना है तो गोबर बाकर बोपा—  
 मोना बाबा का पहुँचने। मन-मो-मन मूमा है वह उम्हें दे का फिर उनकी मयाई  
 दू देने निकली।” कौनी बुद्धिपा अग्र-वैष्णवी है। अज्ञा का बचा बीमार है। गाविन्दी  
 हा० नाम की बुनान क लिए बहनी है। अज्ञा मान्यो को बुनाने के पत में है।  
 मोविन्दी अग्र करती है—“तुम उम पर मरोमा नहीं है। वह परको के रिम का  
 ग्राह करन और किसी का बचा उनक पास नहीं है। इस प्रकार की अग्रारमक  
 संवार मनी न रात्ररता मूर उतरन कर ही है। एम संवारा में पाकों की बाकपटुता  
 भी मूर दिखाई देनी है। इस प्रकार के बाकपटुता में मूर उतरा प्रमचन की कना  
 की बड़ी मक्ति है। हाय-परिग्रामपुन नबाच भी कुछेक स्वनों पर मिनते हैं। अब  
 उनिपा माना को मूमा देने का विराज करनी है ता हारी न पुचार दिया—  
 “मजिन उनकी अजममरी का भी ता देखा। तुम न अब मिनता है, मर बचन  
 ही करना है— ऐसी मजमरी है, ऐसी मर्माकार है।”

उनिपा के मुख पर निरुधना समर पड़ी। मन पाय मुनिपा हिमारे का  
 पाय ने मोनी—मैं उनके बचान की मुनी नहीं हूँ मे बचन बचन प्रने रहें।

होरी ने स्नेह-धरी मुनचान के पाय कहा—मैं न ता कह दिया मीपा न  
 माफ पर मरपी मा नहीं बहने देनी मारियों में बाग बनता है। पतिर मर मर...



बाप कि वह औरत नहीं सपत्नी है। कहा जा जिस दिन तुम्हारी बरबानी का मु सवेरे रेश मेला है उस दिन कुछ-न-कुछ बकर हाथ लगता है। मैं कहा—तुम्ह हाथ लगता होया यहाँ तो रोख देखते हैं कभी पसे से भेंट नहीं होती।

कपोपकचन की रोचकता और आकर्षण प्रत्युत्पन्न-मति अर्थात् हाबिर-जवा म बूढ़ बढ़ जाते हैं। यद्यपि 'बोरा' के संवादों में हाबिरजवाबी बहुत अधिक ना है हामाकि निम्न नागरिक पात्रों के चार्तानाप में बाक चातुर्य और प्रामुत्पन्नर्मा का पर्याप्त अवसर ना फिर भी मेहता मासती खुर्द आदि के कुछ चार्तानाप हाबिर जवाबी स ओग-प्रोग हैं। मानतो बान नीति करने में बहुत पटु है। वह मेहता प्रति आकर्षित है इसी से उनके हास्यपूर्ण चतुर बुद्धार्थ-संवाद का एक उदाहर देबिए। वह कहती है 'फियासफर हमेना मुर्दा-दिल होव है अब देबिए, अपं बिचारों में मग्न बठे हैं। आपकी तरफ पाछेगे मगर आपनी देखेगे नहीं आप उनां पावों किये कार्य कुछ मुझे नहीं। जैसे धूम्य में उड़ रहे हों। आकमफोर्ड में में फियासफी प्रोफेसर मिस्टर हसबैंड ये

जमा ने रोका—नाम तो निरामा है।

'जी हाँ और ये बवारे हैं

'मिरटर मेहता भी तो बवारे

'यह रोम सभी फियासफरों को होता है।

अब मेहता को अवसर मिला। बोस—आप भी तो इसी मर्ज में निरस्तार हैं।

'मैंने प्रतिज्ञा की है कि किसी फियासफर से शादी बक नी और यह बग भाबी के नाम से बबराता है। हमबीड साहब तो स्त्री को देखकर घर में छि जाते थे। -

इन बहरी पालों के कुछ संवाद बड़े हल्के भी हैं। लंछा और जमा आदि अब अपने मतलब की बातें करते हैं तो उनके कथन बहुत उपयुक्त नहीं समते उनमें चातुर्य और स्वाभाविकता भी नहीं बीबती। जैसे जमा अब बिकार सेमने के प्रसन्न में बूटियां मोल मेठा है और रायसाहब से धूपरों का उम्भु बनाने या अपने भड व सामु की प्रशंसा के बचन ओमता है या मासती ओंकारनाथ को बनाने के लिए उसकी प्रशंसा करती है तो ऐस उबावा में कृतिमता और अस्वाभाविकता ही प्रतीत होती है। मासती के इस अवसर के कथनों में कोई चातुर्य या चमत्कार नहीं है। पता नहीं ओंकारनाथ उसका मजाक कस नहीं समझ सका। इसी प्रकार लंछा का निम्न कथन भी अस्वाभाविक और कुछ थोड़ा हुआ-सा लगता है— 'नाटक कोई भी अच्छा हो सकता है अगर उसके अभिनेता अच्छे हो। अच्छे-स-अच्छ नाटक बुरे अभिनेताओं के हाथ में पड़कर मुरा हो सकता है। अब तक स्टेज पर निमित्त अभि

नेकियां नहीं जाती। हमारी नायकता का उद्धार नहीं हो सकता।" लब्धा का हिन्दी नायकता से न कोई सम्बन्ध है न उसका यह खोस ही है। अब उनके मुह से मदार-बैठ साहित्यकार के-से सख्त उपपुत्र नहीं बचते।

नागरिक पात्रों के ही चार्तामाप में कहीं-कहीं पात्र-सम्बन्ध कथोपकथन बोधपूर्ण हो गए हैं। बस्तुतः इनका उद्देश्य सिद्धान्त-प्राधान्य अथवा विविध विचारों को प्रकट करना है। फिर भी अनुपपन्न का सैशान्तिक चार्तामाप रायसाहब की स्वीकारोक्ति बाकि उचित और अधिक सारगर्भित होते तो कथा का उत्पन्न होता।

'बोधान' में स्वीकारोक्ति के रूप में मदार का एक विपक्षक प्रयोग पाया जाता है। रायसाहब और लब्धा की स्वीकारोक्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। लब्धा वर्ग के लोगों को मानने का यह बहुत बड़ा चमत्कारपूर्ण है। किन्तु रायसाहब के कुछ अन्य ही मनोविज्ञान और कथा दोनों दृष्टियों से अनुचित हैं जैसे वह अपने असामी के मामले अपने लिए 'गधा' शब्द तक का प्रयोग कर लेता है, और यहाँ तक कहता है—'सच कह रहे हैं कि बहुत बुरा हमारे बाग की हस्ती मिट जाने वाली है।' 'यों तुम्हारी माँ का सम्मान हमें भस्म नहीं कर सकते?' आदि। ठीक है कि ऐसा जमींदार को दिखाने के रूप में अन-सेवक बना हुआ है अपने वर्ग और पद्धति की आलोचना कर सकता है किन्तु फिर भी इतने सड़कान वाले मर्यादक करना कुछ मनोवैज्ञानिक दोष है।

'बोधान' में कहीं-कहीं अवशिष्टापूर्व विपक्ष संवाद भी हैं। पात्रों का मनोगत भाव तो कुछ और होता है किन्तु उक्त भाव को अनुपपन्न से छिपाकर अपना मतलब होने करने के लिए कुछ और ही बात करते दिखाई देते हैं। होरी के मन में नाम को देखकर मानस बाग बड़ी। अब वह मोला को सपना का भासा देता हुआ कहता है—मेरे समुदाय में एक मेहरिया है। तीन-चार साल हुए, उसका भावमी उसे छोड़ कर कसकते बना गया।—देखने-सुनने में भी अच्छी है। बस लच्छमी समझ लो। मोला छवि में आकर कहता है कि गाय चित्त नई गई हो तो सेलो। अब होरी अपने मन के भाव को छिपाता हुआ अनुपपन्न से चौंका पड़ा है—'यह नाम मेरे मान की नहीं है बाबा। मैं तुम्हें मुकदान नहीं पहुँचाना चाहता। अपना धर्म यह नहीं है कि मित्रों का गला बचावे। जैसे इतने दिन बीते हैं वैसे और भी बीत जायेंगे। इसी प्रकार बहुर में ऊँच से आकर बेचने की बात को होरी छिपाना चाहता है। नाम की मिराज में पूछ—तुम्हारी ऊँच कब तक आयी होरी काका?

हारी में क्षांता दिया—जमी तो कुछ ठीक नहीं है माई। तुम बच तक न आओगे?

परिस्थिति और प्रसङ्ग के अनुसार बात करने में मैमपन्न बहुत कुशल है।

वातावीन हारी के सामन क्या वे बिबाह की याचना जिस ढङ्ग से प्रस्तुत करता है वह पढ़ने ही बनता है। वातावीन ने आकर कहा—'क्या हुआ होरी तुम्हारी बदबसी के बारे में?'—सुना तारीख को पन्द्रह दिन और रह गये हैं। होरी ने बिबलता पठाई। पण्डितजी बागों मेफिम बजाए तो अचानी ही पड़ेगी। बिबाह कैसे होना। बाप-दादों की इतनी ही निशानी बच रही है। वह निकस गयी तो कहाँ रहोगे?

'मगधान की मरजी है भरा क्या बस !

'एक उपाय है जो तुम करो। यह सुनते ही निराल हारी न आवा से घर कर पण्डितजी के पास पकड़ लिए। पण्डितजी ने कहा—'निराल होने की कोई बात नहीं। बस इतना ही समझ लो कि सुख में आदमी का घरम कुछ और होता है। सुख में कुछ और। सुख में आदमी बान होता है मगर सुख में भीषण तक माँगता है।'—घरिद बज्ज रहना है तो हम बिना अपनान-पूजा क्रिये मुह में पानी भी नहीं डामने सेफिम बीमार हो जात हैं जो बिना महाये-आये कपड़े पहने खाट पर बैठे पम्प लेते हैं।'—'वापसकाम म थी रामचन्द्र ने सेवरी के जूने फम आये वे बानि का छिप कर बस किया था। जब सङ्कट म बड़े-बड़ों की मर्यादा टूट जाती है तो हमारी तुम्हारी कौन बान है। रामसेवक मरुतो को ता आगते हो न ?

होरी को सड़की का बिबाह अर्ध रामसेवक से करने के लिए राजी करने में इससे बढ़िया बातालाप की कल्पना नहीं हो सकती। हारी के मन में अँबार का मोह बमाने और उसकी मर्यादा भावना को निबिल करने का कँसा मनोबज्ञानिक ढङ्ग बरता गया है। ऐसी प्रभावपुन ( Convincing ) बिबवासेत्पादक बातालाप प्रेमचन्द-जीने भाव छिप्पी कमाकार से ही समभव हो सकती है।

कुस मिलाकर प्रेमचन्द की मबार-जीनी मरुत क-नाम्नक रानी कही जा सकती है। कपोपकचन के सभी गुण—रोबप्टा मधितता स्वाभाविकता माटकीबता सजीबता पातामुक्यता प्रसङ्गानुकूलता भावानुगतता सार्थकता आदि सब—उनके संवादों में बाये जाते हैं। व्यंग्यारमकता ने इनमें बिसेप छक्ति भर दी है।

### ७ भाषा शैली

मुन्गी प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा-साहित्य के लिए एक आदर्श भाषा-शैली का निर्माण किया। गद्य-शैली निर्माता के रूप में भी उनका अमर स्थान हिन्दी में मरा बना रहेगा। भाषा के सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने मरमता सहज स्वच्छन्दता मुहावर सौकोछि-श्रमोय स्वाभाविक लासबिहता आदि का जो आदर्श अपमाया वह आज तक सबमाय्य है। जन-भाषा का जो प्यारा रूप उनकी रचनाओं में पाया जाता है वही प्राप्त सब सङ्कों—बिरोपकर कमाकारों—के लिए अनुकरणीय बना। प्रेमचन्द की भाषा-शैली के बा रूप स्पष्ट राक्षित होते हैं—एक है बामीण पातों की बोम बान

की भाषा का रूप और दूसरा प्रेमचन्द की मिथी भाषा का साहित्यिक रूप। ग्रामीण पात्रों की भाषा में ग्राम्य भाषा—शब्दों का तज़ूब रूप और रचनीय जनभाषा का रूप पाया जाता है। ठेठ ग्रामीण शब्द जैसे—पुछतर, क्लोर, मफरी बोंगड़ा अन चढ़ नाच हून राखिब महीया भाटमगदी गोड़ना कोस्हाइ बेगलिया महाबट बनीनी बुड़बकपन आदि भी कहीं-कहीं ऐसे हैं जो प्रथम के सही ज्ञान से ही जोर रखने पर अपना अर्थ आपासित करते हैं। अधिकतर शब्द अर्थ-तत्पन्न या तज़ूब रूप में ही प्रकट हुए हैं जिनका समझना कठिन नहीं है जैसे—गिरस्त नून छिच्छर बना बिसम (बिस्मर) मुभ (मुभ) कारन निबाह राखलिन डाड़ीबार छप छाली मच्छन भरबाव परन परवाद आदि। इन ग्रामीण पात्रों की भाषा में उड़ू-फारसी के कुछ तज़ूब शब्द भी पाये जाते हैं जैसे—नमीच (नम शीक) ठहकिमाठ याम-दराम जंजाव बरीबाना भरब बरकन सावित हकनाहक छहावत हमा-नुमा आदि। दूरमुनियाँ हमटाम कामिब पुसुम आदि कुछ अंग्रेजी शब्द भी तज़ूब रूपों में ग्रामीणों की भाषा का अंग बने हुए हैं। प्रेमचन्द न जोड़ी शब्दों का प्रयोग सबसे किया है। ग्रामीण पात्रों की भाषा में भी कुछ-बो शब्द बुरे व्यञ्जक बने हुए हैं उस—रस-पानी सानी-पानी असमान-पूजा मिसना-कुसना टाभी-सतहब दूध-बी घूम-बास बाँ-बबारा टाक-साँक डौड-बाँस दषा-दाक, टीक-टाक मोल भाव नजर-अचरना घुप-बाम सेना-वेना बरना-उरना बाम-कौड़ी सँभालना-सँदेवना आदि।

काठ का उल्लू घुम बहाकर बैठना पानी रहना टाँग अड़ाना पाँव सह साणा साठे पर पाठ नाटन खेती बहुरिया बर, जल में रहकर मयर स बैर, बस पर नमक छि, कना जाँकों में घूस झोंकना परदन पर सवार होना बाढ़े हाथों सेना मुइ में टांगा सगाना जाँके निकल जाना जारी कनबा हुना बाजार तेज होना आदि मुहावरे और लोकोत्थि भी ग्रामीणों की बहान पर चढ़े हुए हैं। इनके प्रयोग से उनकी भाषा व्यक्तिक प्रभावशाली बनी हुई है। ग्रामीण-पात्रों की भाषा में भावानुकूलता और मणित बाध-योजना भी भी विद्यमान है। ग्रामीण-भाषा का मुन्दर वा इस बाल्यताप में दक्षिण स्वामाधिक मुहावरे, साधनिक व्यञ्जक शब्द द्विच शब्द सगल तज़ूब शब्द छोट छोटे बाध कोई-कोई ठेठ ग्रामीण शब्द भावानुकूलता आदि सब गुण इसमें विद्यमान हैं—‘सब की बाजार बहुत तेज वा महनो इनके अस्ती रुपये देने पड़े। शीर्षे निकल गयी। तीम-नीच रुपये तो दोनों बत्तोरों क रिय। तिस पर गाहक रुपये वा आठ मेर दूध पीपता है।’

‘बन घारी कमेजा है तुम मायों वा माँ केदिन फिर साप भी तो बह माय कि यहाँ बस-बाँव गाँवों में ता किन्नी के पाय निकलती नहीं।’

सोना पर नशा चढ़ने लगा। सोना—रायसाहब इसका सी रुपये देते थे। दोनों बत्तोरों के पचास-पचास रुपये लेकिन हमने न विये। भगवान ने पाहा तो सी रुपये इसी ध्यान में पीछे बुला।

'इसमें क्या खम्येह है भाई! सालिक क्या बाने लगे। नजराने में मिल जाय तो भत्त ही से स। यह तुम्ही भागों का गुर्बा है कि अनुमी-भर रुपये तकरीर के मरोसे गिन देते हो।' ।

प्रेमचन्द की भाषा में कहीं-कहीं बिधेयण के क्रिया-रूप प्रयोग बड़े स्वाभाविक और सुन्दर लगते हैं जैसे सुन्दर गेहूँ का रज्जु संभसा गया था बेहूत बिकना मया जादि।

उही पातों की भाषा में उत्तम और अर्द्ध-उत्तम शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक है। उत्तम-बहुला उमकी भी भाषा नहीं। डिरन ( बुझा ) शब्दों का प्रयोग यहाँ कम है। मुहावरें, सदाशिक प्रयोग भावानुस्यता जादि कुछ उनकी भाषा में भी पूरी तरह पाये जाते हैं। इनकी भाषा में अँग्रेजी-उद्गु के भी उत्तम और अर्द्ध उत्तम शब्द अपेक्षाकृत अधिक है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—( मि० लक्ष्मा रायसाहब से ) 'आप मन्दासी बन सकत हैं मैं तो नहीं बन सकता। मैं तो समझता हूँ जो भोकी नहीं है वह सप्राय में भी पूरे उसाह से महीँ का सकता। जो रमकी छे प्रेम नहीं कर सकता उसके देख-अग में मुक्त बिश्वास नहीं।

रायसाहब मुसकराये—आप मुझी पर आचार्य कसने लगे।

'मुझ आपके ऊपर क्या आवी है। आप जो करने लुकी निराह और चिन्तित हैं इसका एकमात्र कारण आपका निग्रह है। मैं तो यह नाटक खेल कर खुँसा जाहे दुखान्त ही क्यों न हो। वह मुझसे मजाक करती है बिजाती है कि मुझे तेरी परवा नहीं है तकिन मैं हिम्मत हारने वाला मनुष्य नहीं हूँ। मैं आ तक उसका निजाक नहीं समझ पाया। कहीं निजाता डीक बैठेगा इसका निश्चय न कर सका।

प्रेमचन्द की प्रौढ़ साहित्यिक भाषा उन स्वयं पर मिसती है जहाँ प्रेमचन्द अपनी अनुभूतियों के रूप में विषय परिस्थिति या पातों की मनोभूतियों की व्याख्या करते हैं। इस साहित्यिक भाषा में ही प्रेमचन्द की यश-भाषा-शक्ति का पूरा रूप मिलता है। स्वाभाविक रूप-उपमा जादि अमकूर, यक्षिया सारथिक प्रयोग अर्थमय बकता सृष्टि जादि साधनों से यह भाषा समरत होती है। सम्भावनी भी अपेक्षाकृत अधिक तरसमता लिए होती है। आरम्भ में ही होरी-धनिया के सुन्दर वातासाय के बाद धनिया की परिस्थिति का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं—विपत्तता के इस प्रवाह सागर में लोहाय ही वह लुख था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन अगज्जत अर्थों ने यथार्थ के निकट होने पर भी जानी भटकता डीकर उसके हाथ से वह लिखके का सहारा छोड़ दिया जाहा—बल्कि यथार्थ के निकट होने

के कारण ही बेचना-बिक्री आ गयी थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, यह क्या हो सोचों बाने शास्त्री को हो सकता है ?”

इस उदाहरण में परम्परागत रूपक उत्प्रेक्षा और इष्टान्त समझार, सूक्ति तथा ‘बड़ा देकर हाथ से छीन लेना’ ‘पकड़े हुए सागर को पार करना’ ‘तिमके का दहाप’ आदि साहित्यिक प्रयोग और मुहावरे आदि सबन मिलकर भाषा को किना प्रत्यक्ष और प्रौढ़ बना दिया है।

प्रेमचन्द की भाषा-संज्ञा की सब से बड़ी बल्लि है मुहावरे और साहित्यिक प्रयोग। चायद ही कोई तीसरी पल्लि ऐसी मिले जहाँ बीच में कोई मुहावरा या लक्षक रूप-प्रयोग न आया हो। प्रेमचन्द के अनेक मुहावरा-प्रयोगों में भी कुछ-का कुछ मिलते हैं जैसे—कतर-झोंट करना पेट-सग काटना उलट-केर करना आदि। इनके बल्लिरिक्त, ‘भीहों पर लिफ्ट पड़ना’ मुह में लाना लगना मुह लगाना आपे से बाहर होना लगाना बीचना कून का बूट पीकर रह जाना पाँव में छमीचर होना बगलें झाँकना पीठ में घूम लगना पाँव सहलाना कसेबा ठप्पा करना बीम में कुजली होना मुह पर झाड़ पड़ना मुह में कामिल लगाना आसन पाना नाक पर मक्खी। बेटे देना किसी क बसते घर में हाथ सँकना बी के चिराग बलाना बगलें बलाना मन में चौर बैठना घरबन पर सवार होना रङ्ग बमाना आदि सँकड़ों मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं। पनाह माँगना तरह देना आठिर जमा रखना आदि उर्दू के दो-चार ऐम मुहावरे भी प्रयुक्त हुए हैं जो हिन्दी में प्रचलित नहीं।

प्रेमचन्द के साहित्यिक प्रयोग तो और भी बल्लिया हैं। भावों का मानकीकरण भी कई स्थानों पर बहुत जम्ब है जैसे—‘होरी का कोष रल्लियी तुड़ा रहा पा’, ‘बूड़ा कोष’ ( विसेषण-विषय ) बहु निर्भङ्गता को लफाये, पानी और मार से भी भयभीत नहीं होती, मल आछा ( विसेषण-विषय ) ‘सिलिया के अन्त-करण की सारी कोमल भावनाएँ इस बल्ल मुह कोले बीठी थीं कि आकाश स अमृत-बर्षा होगी। भावों की यह मूर्तिमत्ता प्रेमचन्द की भाषा में प्रचुरता से पाई जाती है। प्रकृति का मानकीकरण भी ( जैसे ‘उदास और गरम सध्या’ ) कहीं-कहीं लिखाई देता है। स्वाभाविक साहित्यिक प्रयोग स्थान-स्थान पर हैं जैसे ‘होरी का आसन पाकर बाबुफ बमाना’ बिचार में गल्लर हो गया दिल पतले हैं, ‘हार की सज्जा तो पी जाने की बन्नु हैं’ हुए-बी बजन लगाने तक को नहीं मिलता ‘सबस कोष में बोली’ अन्ने कूर की तरह हवा को भोंका करे, ‘ओहरी ने सोहे को लास करके बन बमाया’ ‘भास्त्री मूठा लमी लाता है जब भीठा हो। कसक चाँदी से ही घुमता है। ‘मृदुता पपाव की जाँच में जैसे शुलभ गई आदि।

प्रेमचन्द की भावभावोंपमाए जहाँ एक ओर भाषा को सुन्दर प्रभावशाली बनाती है वहाँ अनेक स्थानों पर वे सुष्ठियाँ बन गई हैं एक-दो उदाहरण देखिए—  
 'और उस कुमार (मोहर) में भी पता चढ़कते ही किसी सोए हुए शिचारी नामक की तरह जीवन बाग उठा 'होरी में अपनी पराजय अपने मन में ही डाली जैसे कोई बोरी से आम तोड़ने के लिए पेड़ पर चढ़े और फिर पड़ने पर भूल साइता हुआ प' चढ़ा हो कि कोई देख न ले' 'जो स्वच्छन्द काम-शीड़ा की तरङ्गों में सोंठों की भाँति बूसरो की हरी-भरी बेसी में मुड़ बालकर अपनी क्षुत्सित मागसामों को लूट करता चाहते हैं' 'जिसे तुम प्रेम कहती हो वह धोखा है उड़ीस सामना का विकृत रूप । उसी तरह जैसे संन्यास केवल भीख माँगने का संस्कृत रूप है' 'उस क्रोध में एक प्रकार की मुहि भी जैसे हम उन बच्चों को कुरसी से गिर पड़ते देखकर, बा बार-बार मना करने पर चढ़े होने से बाज न आते थे धिक्का उठते हैं—जच्छा हुआ बहुत जच्छा तुम्हारा सिर क्यों न धो हो गया (पृ ३८३—३८४) आदि । प्रेमचन्द ने रूपक-उल्लेख अलङ्कारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है जैसे—'सबा ही वह सीमेंट है' । साय रूपक का अत्यन्त बढ़िया साक्ष्य प्रयोग इन प्रसिद्ध पंक्तियों में द्रष्टव्य है—'बाह्यिक जीवन के प्रभाव में सामना अपनी बुलाबी मा' कता के साथ उबस होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से उज्ज्वल कर देती है । फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है क्षण-क्षण-भर बगुन उठते हैं—उसके बाद विधाममम संझा आती है नीतल खीर जाल जब हम चके हुए पक्षियों की भाँति दिन-भर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं तटस्थ भाव से मानो हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे हैं वहाँ नीचे का जन रव हम तक नहीं पहुँचता । जमा रूपक-उल्लेख साक्ष्यिका का यह सुन्दर संगम प्रेमचन्द की प्रौढ़ साहित्यिक अलङ्कृत शैली का सर्वोत्कृष्ट रूप है जिसमें गद्य-काव्य का-सा आनन्द आता है । इस प्रकार के अनेक साक्ष्यिक अनुच्छेद प्रस्तुत किये जा सकते हैं जैसे पृ ३१—३२ पर 'उसके लारील के द्वार पर— दोनों पट मेढ़ लेती हैं ।'

साक्ष्यिकता और मुहावरे-बंदी के साथ व्यंग्य-वक्ता भी प्रेमचन्द की शैली की एक विशेषता है । पात्रों के संवाद में ही यही वह अपनी टिप्पणियाँ देते हुए पात्रों की मनोवृत्तियों की व्याख्या करते हुए व्यंग्य से भी काम लेते हैं । पीछे धनिया मोहर नामकी आदि के संवादों में प्रेमचन्द की व्यंग्य-शैली पर हम प्रकाश डाल चुके हैं समाज की बुराइयों तथा धर्म के पाखण्ड का उद्घाटन करने हुए भी अदरम में प्रेमचन्द की व्यंग्य-वक्ता के उदाहरण दिये जा चुके हैं यहाँ केवल एक उदाहरण प्रस्तुत होता । मोहर जब नहर से कमा कर आता है और बालावीन के आम पीट उड़ाता है तो बालावीन कहता है कि मातावीन को भी यहाँ किसी अच्छे दीते

सम्झाओ। मोर ने दाठाबोन का बगाया—सुम्हारे घर में किस बात की कमी है पहापन त्रिज जबमान के द्वार पर धाकर खड़े हो जाओ कुछ-न-कुछ मार हो लओये। जनम में लो, मरम में लो गमी में लो, बेटी करते हो, सेनबेन करते हो, रनामी कण्ट हो किसी से कुछ सुल-बुल हो जाय तो डाँड सयाकर उसका घर नुट मेटे हो, इसमी कमाई से पेट नहीं भरता ? क्या करोगे बहुत-सा धन खरोर कर ? कि साग ने जलने की कोई खुगुल निकाल ली है ?”

प्रेमचन्द की मूर्च्छियाँ उनकी बेसी में और ही बजा ला देनी हैं। जीवन क नागिक लम्पों का ऐसा मनोरञ्जक प्रकाशन सबे हुए माहित्यकार की ही भूमिका से सम्भव होता है। प्रेमचन्द ने इहान्त उदाहरण बाक्यार्थोपमा अर्चान्तरणाम आदि ठर्कन्वायमूसक बनकूतों के रूप में जीवन के सखों को मूर्च्छि-बद किया है। ऐसी बेकरी मूर्च्छियाँ उनकी रचनाओं से प्रस्तुत की जा सकती हैं। ‘गोदान’ में यह बेसी पूर रचनाओं से अधिक है और अधिक मोड़ भी। एक-दो उदाहरण बेबिए—‘बरनोक शानियों में सत्य की पूँचा हो जाता है। बही सीमेन्ट को इ ट पर चढ़कर पत्थर हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ा दिया जाय तो मिट्टी हो जायगा। (पृष्ठ १०१) इहान्त बनकूत और ‘सत्य यू या’ होने में साक्षयिक प्रयोग भी है। ‘हम बिनके लिए त्याग करते हैं, उनसे किसी बहने की आशा न रखकर भी उनके मन पर साधन चाहते हैं, चाहे वह सामन उन्हीं के हित के लिये हा। (पृष्ठ ४९१) ‘बमझी आदमी प्राय’ शकी हुआ करता है। और जब मन में जोर हो तो बखीपन और भी बढ़ जाता है। (पृष्ठ १९१) पीड़क होने से पीड़ित होना कही थ छ है। सब खाकर अगर हम अपनी आत्मा को पा सके तो यह कोई महीना सोच नहीं है। (पृष्ठ १९८) मोहरी उन औरतों में न थी, जो नेकी करके बरिया में जल बेती हैं।— नेकी न करना बदनामी की बात नहीं।— अगर जब हम नेकी करके उसका एहसान जताने समते हैं तो बही बिस्के साग हमने नेकी की थी हमारा बहू हो जाता है।— बही मकी अगर करने वाले के लिस में रहे तो नेकी है बाहर निष्कस जाय तो बरी है। (पृष्ठ १९८ ९९)। ‘अतरे य हमारी बेतना अन्तमु की हो जाती है। ‘मैं बिना कुछ रस पाये बी, ही जाता था बिड़िया एक बार पत्थर जाती है तभी बूटरी बार जीवन में जाती है। ‘कम अपमान नहीं सह सकता। ‘जब सब जबरन से ज्यादा हा जाता है तो अपने निकास का मार्ग खोजता है। ‘छाटी मकी को जमबते डेर नहीं सगती’ कई बह येहमान है जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता। ‘प्रम हृदय की वस्तु है देह पर उसका अधिकार नहीं। आदि पचासों मूर्च्छियाँ ‘गोदान’ से उठ ल की जा सकती हैं।

इस प्रकार प्रेमचन्द की बापा-बसी अत्यन्त प्रभावशाली है। ‘गोदान’ में



साधारण ही कोई पक्ति हो जिसमें कोई मुहावरा साहित्यिक प्रयोग अन्य समझार अथवा अन्य सशक्त प्रयोग न हो। सरसता समीक्षता और प्रवाहात्मकता प्रेमचन्द की भाषा के मुख है ही। भाषानुरूपता और पातानुरूपता भी सबल रहती है। भाषा पूर्ण स्वभाव पर भाषात्मक खैली विचारपूर्ण स्वभाव पर विचारात्मक घटना-वर्णन में सरस कथात्मक खैली हास्य के प्रसङ्ग पर हास्यपूर्ण घाटा आदि भिन्न-भिन्न रीतियों का सहज समावेश 'गोदान' में पाया जाता है। प्रेमचन्द अपने पहले उपन्यासों में सुसम्मान नागरिक पात्रों की भाषा फारसी-अरबी के शब्दों से उन्मिश्र कर देते थे वह प्रवृत्ति तो 'गोदान' में नहीं रही क्योंकि मिर्जा कुतुब की भाषा में भी फारसी अरबी का कठिन शब्द सामान ही कोई हो किन्तु पात्रों की शिक्षा-बीजा-संस्कार आदि के अनुसार उनकी भाषा में पातानुरूपता अवश्य पाई जाती है। मिर्जा कुतुब तथा आदि की उर्दू खैली भी यहाँ हिन्दी की प्रकृति में घुल-मिल गई है वृक्ष नहीं रही। यह प्रेमचन्द की पुरस्कृतिता और यथार्थ भाषा-वृद्धि का कवरबस्त प्रमाण है। 'गोदान' तक आठे-आठे प्रेमचन्द समझ गए थे कि हिन्दी और उर्दू दो असंग-असंग भाषाएँ नहीं हैं, एक ही भाषा के दो रूप हैं जिनकी दूरी कृत्रिम है। प्रेमचन्द की सफल भाषा-खैली ने उपन्यास की सरसता में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। सामान्य भाषा में बातावरण को समीक्ष बनाया है। अपवाद-रूप में ही कोई एक-आठ शब्द मिले तो भिन्न भाषा अन्यथा भाषा का सर्वथा निर्दोष लक्षितकारी प्रयोग ही प्रेमचन्द ने किया है। कहीं-कहीं 'और' शब्द का अधिक प्रयोग वाक्य में आकृष्ट है जैसे—'एक और बहुत राग और मन-सेवा और उपकार के मन्त्र के तो दूसरी और स्वार्थ और विनाश और प्रभुता के। एकाग्र स्थान पर वाक्य में शेष भी पाया जाता है जैसे—'इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी। शब्द का लघु प्रयोग भी एक-दो स्वभावों पर है, जैसे 'बैठ का पूर्व अपने रजत प्रसाप से ठेक प्रदान करता हुआ'। कहीं-कहीं सर्व-सर्वों की कठिन और अप्रचलित शब्द भी आटकते हैं जैसे 'मशीनमय' 'सरसाम' 'टाऊन' आदि। किन्तु ऐसे शेष अपवाद ही हैं। सामान्यतः प्रेमचन्द की भाषा खली जटिल सफल है।

### ८ आदर्शवाद अथवा अर्थवाद

आदर्शवाद और अर्थवाद साहित्यकार-द्वारा जीवन को चित्रित करने के दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं। आदर्शवादी लेखक अतीत या वर्तमान जीवन में से महान् या मध्य चरित्रों को चित्रित करता है 'प्रकृत जन' के चित्रण से उसकी सरसती ही 'सिर बुझि पछाने' लगती है। महान् (Sublime) की प्रतिष्ठा आदर्शवादी लेखक का उद्देश्य होता है। इसके विपरीत अर्थवादी लेखक जनवादी होता है वह प्रकृत जन का चित्रण ही अपनी रचना का विषय बनाता है। किसी महान् की प्रतिष्ठा के स्थान पर

## यथार्थवाद यथार्थवाद

यह साधारण जीवन का ही यथार्थ व्यवहार करना है। मानव अपनी समस्त बुद्धि शक्तियों और स्वाभाविक सम्मताओं के साथ यथार्थ रूप में यथार्थवादी रचनाओं में व्यक्त पाता है। आदर्शवादी लेखक जीवन के कठिणपण महान् क्षणों से सम्मिश्रित बन जाते हैं। इसके विपरीत यथार्थवादी लेखक जीवन की साधारण घटनाएँ—साधारण व्यक्तियों से सम्मिश्रित प्रस्तुत अपनाता है। आदर्शवादी लेखक का मूलमूल्य होता है—कला में दुराव अपेक्षित है (Art lies in concealment)। यह जीवन की सामान्य दुरावों पर ध्यान नहीं देता या उन्हें जानकर छेड़ देता है। इसके विपरीत यथार्थवादी साहित्यकार किसी प्रकार का दुराव-निवारण नहीं करता वह जीवन की दुरावों को उधार कर रख देता है। आदर्शवादी लेखक की दृष्टि में जीवन की दुरावों को उधार कर रख देता है।

य जीवन पर केन्द्रित रहती है जबकि यथार्थवादी की सामान्य जीवन पर। आदर्शवादी लेखक विशेष या महत् का उपासक होता है—महत् या उदात्त चरित्र ही बनना महत् उद्देश्य महत् या उदात्त (Grand) भाषा सब कुछ विषय या वास्त—यह। यथार्थवादी साधारण का चिन्ता होता है—साधारण मानव चित्रण साधारण बनना साधारण से ही प्रकट उच्च उद्देश्य साधारण बनना—सब कुछ साधारण बनना यथार्थवादी के लिए आवश्यक है। आदर्शवादी की आदर्श-स्थापना उसकी रचना में स्पष्ट रहती है वह 'जीवन में क्या होना चाहिए' यही दिखाना अपना उद्देश्य रखता है 'जीवन में क्या होना चाहिए' 'क्या है और जीवन में क्या हो प्रयोजन नहीं होता। यथार्थवादी की दृष्टि मुख्यतः 'क्या है और जीवन में क्या हो सकता है—इन पर ही रहती है 'क्या होना चाहिए' उनमें प्रायः प्रकट रहता है। आदर्शवादी लेखक के बीच प्रायः उल्लाह और कदम होते हैं यथार्थवादी के बीच प्रायः श्रुति और कर्म होते हैं।

आदर्श और यथार्थवाद दोनों ही ही सीमाएँ हैं। अपनी सीमाओं का प्रतिफल करने पर ये अपनी सीमाओं का देते हैं जिससे साहित्य की भी सीमाएँ बन जाती हैं। आदर्शवाद यदि कल्पना-कल्पना (Utopia) हो जायगा अत्यधिक उच्च अर्थमाध्य होगा तो किसी काम का न होगा और यथार्थवाद भी यदि नज़र दूर की पुनः यथार्थ हो जायगा तो अन्धकार एवं त्याग बन जायगा। स्वतन्त्र कोरे आदर्शवाद के स्थान पर विचारपूर्ण आदर्शवाद ही वांछनीय होता है। इसी प्रकार स्वयं और प्रेरणापुत्र यथार्थवाद ही साहित्यिक सत्य बन सकता है। प्रेमचन्द की स्वयं आदर्शवाद और यथार्थवाद को दो अतिरिक्त मानत है। कोरा या नज़र दूर यथार्थवाद हमें केवल दुराव का समझौता करता है हमारी आँखें खोल देता है पर जीवन में दुराव ही दुराव प्रतीत होने में निराशा की-जो स्वतन्त्र उत्पन्न कर देता है हमनिष्ठ यथार्थवाद है। कोरे काल्पनिक आदर्शवाद को भी प्रेमचन्द व्यर्थ मानते हैं। किसी देवता

कल्पना करना आसान है, पर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करना कठिन ही है। आदर्शवाद हमें किसी अतीन्द्रिय स्वयं सोच में पहुँचा देता है जिससे धरती का स्वर नहीं सुनता। इसी से प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवाद या आवल और यथार्थ के समन्वय के पक्षपाती थे। उन्होंने अपने उपन्यासों को भी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी या यथार्थोन्मुख आदर्शवादी कहा है।

नन्दकुमार बाबोयी ने प्रेमचन्द को आदर्शवादी लेखक माना है। उनका कथन है— 'कोई कमाकार या तो यथार्थवादी हो सकता है या आदर्शवादी ही। ये दोनों परस्पर विरोधी विचार-धाराएँ और कला-सैलियाँ हैं। इनका मिश्रण किसी एक रचना में समझ नहीं। साहित्यिक निर्माण में यथार्थोन्मुख आदर्शवाद या आदर्शोन्मुख यथार्थवाद नाम की कोई वस्तु नहीं हो सकती। 'आदर्श और यथार्थ' को मिलाते वाला कोई पृथक् वाद नहीं है। यह तर्कसङ्गत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि वो परस्पर विरोधी जीवन-वर्तनों और कला-परिपाटियों में एकता की कल्पना ही कैसे की जा सकती है? (प्रेमचन्द साहित्यिक विश्लेषण पृ० १२)। और नन्दकुमार बाबोयी भी निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं 'वास्तव में प्रेमचन्दजी अपने विचार और लेखन में आदर्शवादी हैं।

डा. नरेन्द्र ने भी प्रेमचन्द को आदर्शवादी लेखक ही कहा है। उनका कहना है 'आदर्शवाद और यथार्थवाद में मूल विरोध है। पक्षों का आधार भावगत दृष्टिकोण है और दूसरे के लिए वस्तुगत दृष्टिकोण अनिवार्य है। आदर्शवादी कल्पना-बिलासी और स्वप्न-ग्रहा न होकर व्यावहारिक भी हो सकता है। उसके आवल कल्पना अथवा अतीन्द्रिय सोच के स्वप्न न होकर व्यवहार-वस्तु के नैतिक समाधान भी हो सकते हैं। प्रेमचन्द के आवलवाद का यही रूप है वह रोमानी आदर्शवाद नहीं है, व्यावहारिक आदर्शवाद है। परन्तु यथार्थवाद नहीं है, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि वो रोमानी नहीं है वह यथार्थ ही हो। इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि भावगत दृष्टिकोण तो यथार्थवादी का भी होता है। क्योंकि कोरा वस्तुगत दृष्टिकोण साहित्यिक परिधि में कैसे आ सकता है? हाँ यथार्थवादी भावुकता में नहीं बढ़ता। वह वस्तु-जगत् के यथार्थ चिन्तों को अपनी अनुभूति का विषय बनाता है। आदर्शवाद और यथार्थवाद का अन्तर इसी रूप में समझना चाहिए कि आदर्शवाद वस्तु-वस्तु से परे कल्पना-सोक अथवा इतिहास या वर्तमान के आदर्श जीवन में विचारण करता है जबकि यथार्थवाद वस्तु-जगत् पर ही आकृत है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द-साहित्य पर विचार किया जाय तो 'रानी चँरघा'-जैसी कुछ ऐतिहासिक कहानियों और दो बार आदर्श कथाओं के अतिरिक्त प्रेमचन्द के साहित्य को आदर्शवादी साहित्य नहीं कहा जा सकता। 'भूचकटिक'-जैसी दो बार रचनाओं को

फेकर प्राक् हमारा समस्त प्राचीन संस्कृत साहित्य आदर्शवादी साहित्य ही है। यही हिन्दी साहित्य भी एकदा अपवाद को छोड़कर आदर्शवादी ही कहा जा सकता है। जीवन की जन-ममताओं तथा जन-भावनाओं अर्थात् माधुर्य जीवन कायों का चित्रण आधुनिक युग से ही आरम्भ हुआ। और इन प्रकार प्रेमचन्द का साहित्य एक ओर प्राचीन क्लासिकल संस्कृत साहित्य से भिन्न है दूसरी ओर प्राचीन हिन्दी साहित्य से भी दृष्टि-भेद उसमें स्पष्ट है। प्रेमचन्द ने उपन्यास अपने पूर्व-युग के आदर्शवादी उपदेश-प्रधान उपन्यासों से भी भिन्न हैं। जन प्रेमचन्द को आदर्शवादी लेखक के रूप में नहीं माना जा सकता जिस रूप में वास्वीकि कानिदास तुमसीदास कथीर और वहाँ तक कि जयसङ्करप्रसाद ( 'ककुत्स - जिस एकाग्र अपवाद को छोड़ कर ) बाकि हैं।

हम पीछे देख चुके हैं कि प्रेमचन्द की दृष्टि आरम्भ से ही जीवन के यथार्थ चित्रों पर केन्द्रित रही है। अपने मामा की यथार्थ जीवन घटना पर लिखी गई उनकी पहली रचना इन बात का सबूत है कि प्रेमचन्द आरम्भ से ही यथार्थवादी दृष्टि रखत थे। उनके 'सेवासदन' ने समग्र हिन्दी उपन्यास-साहित्य को सच्ची यथार्थवादी दृष्टि प्रदान की है। इन सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता। साधारण जन-जीवन का जो यथार्थ चित्रण उन्होंने किया है वह आदर्शवादी लेखक की कल्पना से बाहर ही रहता है। कदा प्रेमचन्द को आदर्शवादी लेखक कहना उनकी यथार्थ दृष्टि के मूल्य का कम करना है। प्रेमचन्द को आदर्शवादी साहित्य-परम्परा में नहीं रखा जा सकता।

है प्रेमचन्द की यथार्थवादी यात्रा में कम अवसर पाया जाता है। 'बरदान' 'प्रतिज्ञा' 'सेवा-सदन' 'रङ्गभूमि' 'कायाकल्प' आदि पहली रचनाओं में प्रेमचन्द का मुकाब आदर्शवाद की ओर अपेक्षाकृत अधिक रहा है। इनमें भी आदर्श और यथार्थ के निर्बाह में अन्तर है। 'बरदान' में आदर्शवादी प्रवृत्ति धाम की रचनावा से अधिक है और 'सेवासदन' में यथार्थवादी दृष्टि 'कायाकल्प' बाकि आये की कुछ रचनाओं से कुछ अधिक है। किन्तु कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द अपनी 'यादान'-पूर्व की रचनाओं में यथार्थवादी आदर्शवादी हैं। इनमें प्रेमचन्द ने हृदय-परिवर्तन सुधार सम्पत्तिना बाकि के रूप में आदर्शवादी प्रवृत्ति का साधक अपनाया है। किन्तु इनमें भी यथार्थ दृष्टि बरकर रही है। अधिक सत्य यह है कि प्रेमचन्द यथार्थ से आरम्भ करके प्रायः सभी उपन्यासों की परिधि आदर्श से भर रहे हैं। अन्त तक जाते जाते प्रायः सभी कुरे पानों का हृदय-परिवर्तन हो जाता है या वे हृदय-परिवर्तन से हटा दिए जाते हैं और सत्य की अमर्य पर चित्रण करा हो जाती है। किसी आदर्श प्राय-आध्यम अपवाद बदल के निर्माण में उपन्यास का अन्त होना है। नम अनन्त आदर्शवादी निधि के ही साधारण पर इन रचनाओं को भी आदर्शवादी नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रेमचन्द

बतन या सुधार का आँख भी बह यहाँ छोड़ चुके हैं किन्तु कामि का स्पष्ट भाव भी बह नहीं कर सके हैं। यहाँ आकर शायद उन्होंने कहा है कि जब तक दोष हुए हैं अतः ऊपर से सीधा-साँधी करने या कुछ दान-पात छोड़ने से कुछ न होय सब कुछ बदलना होगा सम्पूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन माना होना चाहे गांधीबाद इन्हें से माया आय एकाह भावसंबाधी पद्धति अपनाई जाए मूल बात परिवर्तन है सामूहिक परिवर्तन की सिद्धि होने तक किन्हीं विभागों में सुधार के प्रयत्न न किये जा सकते हैं पर वह बसती इस नहीं है असली इस है सर्वत्र परिवर्तन और इस दृष्टि में प्रेमचन्द भावभाव की अपेक्षा भारतीय समाजवाद के अधिक निकट नजर आता है। अपने व्यावहारिक ज्ञान और अनुभव से ही वह अनात्मवादी तो नहीं अनीश्वरवादी अवश्य दिखाई देते हैं। मेहुता का व्यावहारिक अन्धात्मवाद इसका प्रमाण है जो प्रेमचन्दजी के वैवेकजी से बड़े पाए बचनों से भी छिड़ होता है। जो अनीश्वरवादी भावना भी भावसंबाधी दृष्टि से नहीं आई है निजी जीवन अनुभवों पर आधारित है। अतः 'गोदान' में प्रेमचन्द को साम्यवादी कहना भी उतना ही आन्ध्रपूर्ण है जितना गांधीवादी मानना। वह भारतीय समाजवाद के अधिक निकट है जिसमें आर्थिक व्यवस्था के लिए भावसंबाधी और सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों के लिए गांधीवादी दृष्टिकोण समन्वित हो जाते हैं। सब तो यह है कि वह साम्यवादी अथवा मानववादी है।

### १० 'गोदान' नामकरण

किसी रचना का नामकरण भी महत्व रखता है। उसमें लेखक की कलात्मक प्रवृत्ति और रुचि का परिचय मिलता है। नामकरण में मुख्यतः इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है। पहली तो यह कि वहाँ तक हो नाम संक्षिप्त—केवल एक-दो शब्दों का होना चाहिए। इस दृष्टि से प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों के नाम अत्यन्त संक्षिप्त हैं। दूसरी बात यह कि नाम ऐसा होना चाहिए जिससे रचना के एक बार पढ़ने के बाद कभी भी नाम सामने आते ही उपन्यास का वह रूप या प्रमुख घटना-वस्तु हमारी स्मृति में लौट जाए। अरिज प्रधान या ऐसी रचनाओं में जिनमें किसी नायक या नायिका का चरित्र महत्व पाता है, उनके नाम पर ही रचना का नाम रख दिया जाता है जैसे 'भूमनवनी' 'सम्प्राप्ति' 'मिर्चमा' आदि। तीसरी बात नामकरण के बारे में यह है कि वह वहाँ तक हो कलात्मक-आकर्षक होना चाहिए। आकर्षक पैदा करने के लिए लेखक प्रायः अविद्या की बजाय सफ़ला का सहारा लिया करते हैं। सीधे नाम विशेष आकर्षक नहीं होते। 'सम्प्राप्ति' का नामक मन्द किञ्चोर है। यदि उस उपन्यास का नाम 'मन्दकिञ्चोर' रखा जाता तो उपमें वह आकर्षण न होता जो 'सम्प्राप्ति' नाम रखने में है। इस व्याख्यात्मक नाम से मोतीजी

न मन्दकिशोर के चारित्रिक ढोंग को स्पष्ट कर दिया है। कहने का अभिप्राय यह है कि नामकरण मार्बक सुश्लिष्ट और बलिष्ठपूर्ण होना चाहिए।

‘मोहन’ नाम सार्बक भी है और सुश्लिष्ट तथा कसारमक भी। इस उपन्यास में होरी के जीवन की विडम्बना बिबाना ही प्रमत्त का उद्देश्य है। होरी एक किसान है—भारतीय किसान। गाय की लालमा भारतीय किसान की स्वाभाविक लालसा है। वह गाय को माता कहता है। ‘गऊ से ही तो द्वार की सोभा है। सबरे सबरे बड़क बर्तन हा धाय तो क्या कहना।’ जीवन ही नहीं भारतीय किसान अपनी मृत्यु भी गोशाला से ही सच्य मानता है। होरी के जीवन की यही विडम्बना है। वह आजीवन जानी यह छोटी-सी साख ही पूरी नहीं कर पाता। मरते-समय उसी होरी से जो जीवन में गाय को अपने द्वार पर नहीं बांध सका—अपनी लालसा का मन में ही लेकर मर गया गोशाला करने की बात कही जाती है। मृत्यु की छाया से प्रस्त होरी की बहुत माख का बिल प्रमत्त ने बहुत मुन्दरता से प्रस्तुत किया है। सारी उमर जीवन से सङ्गुप करता हुआ जो बेने और मनु-से पोट के लिए एक गाय भी नहीं चुना सका उसी की अन्तेतना धनिया को न पहचानकर कहती है—‘गुम का मम साबर, मैंने मङ्गल के लिए गाय से ली है। वह खड़ी है देखो। मृत्यु का यह किन्ता मनोबैधानिक बिग है। ‘धनिया न मौल की मूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे हने-पाँव आते भी देखा था खाँसी की तरह आने भी देखा था।’ जब होरी की बेतला लीटी और धनिया का पहचाना तो क्षीण स्वर में बोला—‘मेरा कहा-मुना माफ करना धनिया। अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गयी।’

धनिया फिर पीट कर रह जाती है। ‘क्या करे, पैसे नहीं हैं नहीं किसी को मजदूर डाक़र बुलाती।’

जीवन की कितनी बड़ी दुःखी है। कई ‘आवाजे आईं हों गो-दान करण को अब यही समय है। और धनिया न आज जो मुनषी देखी थी उसके बीच जान लाकर, पति के टण्ड हाथ में रख सामने खड़े दातादीन को दे दिय और कहा—‘महाराज घर में न गाय है न बछिरा न पसा। यही पैसे हैं यही दमका गोदान है।’ और पछा खा कर फिर पड़ी।

यह है ‘गोशाला की अन्तिम शांति। आरम्भ होता है लालसा से। मध्य है लालसा-पुति का अगच्छ और करण सवर्ण। यह लालसा भी बिजनी लुप्त है। किसी बड़े महान बनान की ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिबान की अपवा पू जीवित बनन की लालसा नहीं है। एक घरीब किसान की एक स्वाभाविक लालसा है जिसके परिवार को पी-पूछ बचन पगान को नहीं मिलना, दवा-दाक़ के अभाव में जिसके तीन-चार

बच्चे जीवन की आँख धोमते ही मृत्यु की अङ्गुली बसे जाते हैं। होरी अपने माता-पिता की चिरोरी करन बसा है क्योंकि इसी कुसामय के प्रसाद से अब तक उसकी जान बची हुई है। अब बूढ़ों के पाँवों तले गर्वन दबी हुई है तो उन पाँवों को सहमाने में ही कुसम है। 'जाते समय रास्ते में पगबन्धी के दोनों ओर ऊँच के पाँवों की सह राती हुई हरियामी देखकर उमने मन में कहा—भगवान कहीं यों से बरखा कर दें और बाँधी भी सुधीये से रहे तो एक गाय लेकर भेगा। ... उसकी भूख सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार-पाँच सेर दूध होना। गोबर दूध के लिए तरस-तरस कर रह जाता है। ... सात घर भी दूध पी से तो बेइने भावक हो जाय। बच्चे भी अच्छे बँत निकले। फिर गऊ स ही तो द्वार की सोभा है। सबरे-सबरे गऊ के बर्तन हो जाय तो क्या कहना। न जाने क्या यह साध पूरी होगी कब-कब सुख-सुख जायगा।'

और सारी कथा गवाह है कि यह साध कभी पूरी नहीं होती। पूरा करने का एक बार का प्रयत्न हजार मुसीबतें दे पया। जमींदार उसका कारिन्दा पटवारी पुमिस महाजन मिस का माता-पिता न जान कितने शोचक उसे उबरने ही नहीं देते। जिसे दो बूढ़े पेट-भर खाने को भी न मिले जिसकी पूरी फलत खेत में ही बँट जाय घर में एक बाना भी बाजार न पड़े जो कौड़ी-कौड़ी के लिए बूढ़ों का मोह ठाव हो वह अपनी गाय की साध जैसे पूरी करता। अन्त में यही सामसा लेकर बरिन कहना चाहिए इसी सामसा की पूर्ति के लिए होरी अपनी जान दे देता है।

गाय की तानता वास्तव में एक प्रतीक है। एक ओर तो यह कृषक की स्वाभाविक सामसा है। दूसरी ओर सेवक का उद्देश्य इनसे यह बताया भी है कि अन्तः सङ्घर्षों के बाद इतनी तुल्य सामसा भी जिस किसान की अङ्गी रह जाती है, उसके जीवन की इससे कल्प द्रुतेजी और क्या हो सकती है। प्रेमचन्दजी ने स्पष्ट कहा है—'हर एक पुरुष की भाँति होरी के मन में भी गऊ की सामसा विकास से उन्नित बनी जाती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बँटू के सुब से चैन करने या अमीन खरीदने या महुन बनवाने की बिनाम आकांक्षाएँ उसके गन्ध-स हृदय में कैसे समातीं। इस सामसा को पूरा करने का विचार गोबर के मन में भी आता है। जब गोबर सुनिया को घर छोड़कर लहर की ओर जाता है तो वह सङ्कल्प करता है कि लहर में भूख कमायेगा मजूरी करेगा। 'सबसे पहले वह एक पछईं गाय सायेगा जो चार-पाँच सेर दूध देनी और बाबा (होरी) से कहेगा तुम गऊ माता की सेवा करो। इनसे मुझ्दारा सोक भी बनेगा और परसोक भी। इस प्रकार गोबर भी पिछा की गाय की सामसा पूरा करने की सोचता है, पर कर नहीं पाता। अन्त में ठंकेदार की मजबूरी करते हुए भी होरी अपने गाय मजूस के लिए गाय देने की सोचता है। क्या अपनी संसुप्त में पहुँच

का पूर्व-स्मृति में पाया है— 'उसके बाबा की यह सामंसा ( गाय की ) बभो पूरी न हुई । बिना दिन यह गाय बायीं की उन्हें किन्ना पछाह हुमा बा—तब से फिर उन्हें इसकी समझ ही न हुई कि बोरी दूसरी गाय भाते पर यह जानती भी बाज भी यह जानता होरी के मन में उतनी ही सजय है । अतः गाय की मातमा और उसकी कल्प कर्तुति उपमाय की भूष संवेदना बनी हुई है ।

इस प्रकार 'गोदान' नामकरण से मन्त्रिक का उद्देश्य, मुख्य-कथा का मर्म और उपमाय की भूष संवेदना स्पष्ट हो जाती है । यह नाम अत्यन्त उपयुक्त एवं सार्थक है । अर्थात् कि पहले कहा जा चुका है 'गोदान' नामकरण व्यञ्जनापूर्ण भी है । मरते हुए होरी से गोदान की सीधे एक बड़ा सामाजिक व्यंग्य है । फिर यह दान भी बातावरण पवित्र होता है, जो सारी उमर होरी का आश्रय करता रहा । अनिया के घर में कबल बीम खाने के और यह उन्हें ही वातावरण को बेकर होये का गोदान करा देती है ।

✓ 'गोदान' भूमी प्रेमचन्द का भी गो-दान ही सिद्ध हुआ । यह उनकी अन्तिम भूष रचना है । यद्यपि उन्होंने 'मङ्गलमय' नामक एक और उपमाय आरम्भ किया हुआ था, पर यह अधूरा ही रहा मानों बिना को 'गोदान' ही उनके गोदान रखता था । यह समाज की बिना गयी प्रेमचन्द का अन्तिम दान है । इस दृष्टि से भी यह नामकरण बहुत ही उपयुक्त रहा ।

## ११ 'गोदान' का होरी और 'सम्यासी' का मन्त्रिकशोर

गोदान तथा 'सम्यासी' हिन्दी उपमाय-काव्य की दो विजातरकारी रच नार्थ है । एक सामाजिक उपमायों की चरम प्रगति की चोत्क है दूसरी चरित प्रदान मनोवैज्ञानिक उपमायों की । दोनों के चरित-भाषक अपने-अपने लक्ष्यों के दृष्टि भेद के परिभाषक हैं । होरी सामाजिक उपमाय का भाषक होने के कारण मयाज-भाषक है । यह परिस्थिति का दान है । उसकी कहानी समाज की कहानी है । एक में बाह्य दृष्टि की प्रधानता है तो दूसरे में अन्तर्दृष्टि की । एक का अन्तर्दृष्टि केवल चेतन-स्तर का दायी 'कर्म' या न कर्म का ही लक्ष्य है । दूसरे (मन्त्रिकशोर) के चेतन और अचेतन दोनों स्तरों पर ज्ञान और अज्ञान योग्य दृष्टि चरते हैं । होरी एक सीधा-साधा भीमा-भाषा किसान है जिसमें कोई कृष्ण नहीं कोई मान निक बुद्ध या भुषक नहीं कोई अतिमता नहीं । इसके विपरीत मन्त्रिकशोर अपने सदा की मनोवैज्ञानिक दृष्टि के कारण भुष्ण-मस्त अटिल पात्र है जिसका अचेतन बड़ा प्रबल है । एक साधारण प्रतिनिधि पात्र है जिसका चरित-चित्रण उसके वर्ग की मनोवृत्तियों के प्रकाशन हेतु हुआ है भूषक अन्तिम असाधारण वैयक्तिक पात्र है



बिमका चरित्र चित्रण पहले स्तर की मनोवैज्ञानिक एक्स-किरणों (X Rays) के द्वारा अवचेतन की घनियों को मुद्राज्ञान के लिये हुआ है।

प्रेमचन्द सामाजिक उपन्यासकार है। उनका उद्देश्य समाज की समस्याएँ चित्रित करना है। उनकी मायमा है कि समाज की कुराहियों भौतिक विषमताओं और जमींदारी-यु जीवाजी पद्धतियों को समाप्त करने से ही समाज का कल्याण हो सकता है। इसके विपरीत जोजीजी की धारणा है कि केवल बाह्य ढाँचे का बदलने भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा सामाजिक कुराहियों को दूर करने से कुछ न होमा। मनुष्य के अवचेतन में दबी हुई पशु-प्रवृत्तियों को उबार कर जब तक उनका परिशोधन नहीं किया जायगा समाज का कल्याण नहीं हो सकता। इसी दृष्टि में के कारण प्रेमचन्दजी न होरी की बाह्य सामाजिक कहानी कही है तो जोजीजी ने अपने नायक की आन्तरिक मनोवैज्ञानिक कहानी प्रस्तुत की है। प्रेमचन्द निम्नवर्ग के—विशेषकर ग्रामीण कृषक-वर्ग के चितेरा है जोजीजी वर्तमान मिश्रित बहु-वस्तु आत्मकामी पातों की बीर-फाट कर रहे हैं। दोनों कथाकारों के दृष्टि भेद से ही उनके कथानक चरित्र चित्रण आदि सब तत्वों में अन्तर उपस्थित हो गया है। लोगों के चरित्र-नामक अपने-अपने कथाओं की भिन्न-भिन्न उपन्यास-शिल्प और जीवन-दृष्टि द्वारा संभूत हुए हैं। होरी का चरित्र कृषक-संस्कृति की लोक-परम्परा का प्रतीक है मन्दकिशोर में मानव की बहु और समृद्ध की आदिम वृत्तियों के प्रकाशन का उद्देश्य रखा है। 'गोदान' सीधी सामाजिक कथा का उपन्यास है। संघर्षों में वैयक्तिक चेतना से सामाजिक धारणा बचाने का प्रयत्न पाया जाता है।



